ISSN 2277-5587
Impact Factor 5.025
Indexed in ULRICH, ISIFI, SJIF & DOJI
UGC Valid Journal (The Gazette of India,
Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Referred Journal)

शोध श्री

Issue - 4 October-December 2021 RNI No. RAJHIN/2011/40531

CHIEF EDITOR
Virendra Sharma

EDITOR
Dr. Ravindra Tailor

shodhshree@gmail.com
www.shodhshree.com

Shodh Shree Issue - 4 Volume-41 October-December 2021

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Referred Journal)

Virendra Sharma
Chief Editor
Government Girls P.G. College,
Ajmer

Dr Ravindra Tailor
Editor
Shodh Shree,
Jaipur

Editorial Board

Prof. H.S. Sharma (Retd.)
University of Rajasthan, **Jaipur**

Prof. T.K. Mathur (Retd.)
M.D.S. University, **Ajmer**

Prof. Ravindra Kumar Sharma (Retd.)
Kurukshetra University, Kurukshetra **(Haryana)**

Sarah Eloy
Museum The House of Alijn, **Belgium**

Prof. B.P. Saraswat (Retd.)
Dean of Commerce, M.D.S, University, **Ajmer**

Prof. Pushpa Sharma
Kurukshetra University, Kurukshetra **(Haryana)**

Dr. Manorama Upadhayay
Principal, Mahila P.G. Mahavidyalaya, **Jodhpur**

Dr. Veenu Pant
Associate Professor & Head, Department of History, Sikkim University, Gangtok **(Sikkim)**

Dr. Rajesh Kumar
Director (Journal, Publicaiton & Library), I.C.H.R., **New Delhi**

Dr. Pankaj Gupta
Assistant Professor, Department of College Education, **Jaipur**

Dr. Rajendra Singh
Archivist, Rajasthan State Archives, **Jodhpur Division**

Dr. Avdhesh Kumar Sharma
Assistant Professor, Department of College Education, **Jaipur**

Advisory Board

Prof. S.N. Tailor (Retd.)
S.D. Government P.G. College, **Beawar**

Prof. S.P. Vyas
Jainarain Vyas University, **Jodhpur**

Dr. Kate Boehme
University of Leicester, **United Kingdom**

Dr. Mahesh Narayan
Archivist (Retd.), National Archives of India, **New Delhi**

ISSN 2277-5587
Impact Factor 5.025
Indexed in ULRICH, ISIFI, SJIF & DOJI
UGC Valid Journal (The Gazette of India,
Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Referred Journal)

शोध श्री

Volume-41 Issue-4 October-December 2021 RNI No. RAJHIN/2011/40531

Published by
DR. S. N. TAILOR FOUNDATION
(A Tribute to Late Shri Paras Hemendra G Tailor)

Prof. (Dr.) S. N. Tailor
Managing Director

Chief Editor
Virendra Sharma

Editor
Dr. Ravindra Tailor

ISSN 2277-5587
RNI No. RAJHIN/2011/40531

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Referred Journal)

Editors take no responsibility for inaccurate misleading data, opinion and statement appeared in the articles published in the journal. It is the sole responsibility of contributors.

©Editors also hold of the copyright of the Journal

Published By
Dr. S. N. Tailor Foundation
Munot Nagar, Beawar (Rajasthan)

To be had from
Shri Virendra Sharma
54-A, Jawahar Nagar Colony
Tonk Road, Jaipur (Rajasthan)

Printed at
Ganesh Printers, Jaipur

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Referred Journal)

Contents

Volume-41 **Issue-4** **October-December 2021**

1. **नई सदी के जनजातिमूलक हिंदी उपन्यास** 1–6
   प्रो. संजय नाईनवाड, बार्शी (महाराष्ट्र)

2. **सामाजिक आन्दोलन लोकतन्त्र के दर्पण में** 7–11
   डॉ. दिनेश गुप्ता, खाजूवाला (बीकानेर)

3. **गाँधी जी और पं. दीनदयाल उपाध्याय का आर्थिक चिन्तन** 12–14
   डॉ. संजीव कुमार लवानियां, बिलासपुर (छत्तीसगढ़) एवं डॉ. ऋता दीक्षित, एटा (उत्तरप्रदेश)

4. **भारतीय लोकतंत्रः एक नई दिशा में गमन** 15–19
   चन्द्रभान सिंह, जालौन (उत्तरप्रदेश)

5. **शुष्क क्षेत्र में स्थायी फसल उत्पादन के लिए जल प्रबंधन – एक भौगोलिक** 20–25
   डॉ. गौरव कुमार जैन एवं नरसीराम, जोधपुर

6. **औपनिवेशिक काल में बीकानेर रियासत का सैन्य संगठन** 26–31
   डॉ. रजनी मीणा, राजगढ़ (अलवर)

7. **समकालीन हिंदी कविताओं में जनवादी स्वर** 32–35
   प्रो. अच्युत साधू शिंदे, पुणे (महाराष्ट्र)

8. **डॉ. भीमराव अम्बेडकर का मानवतावादी चिन्तन : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन** 36–41
   हेमाराम तिरदिया, भोपालगढ़

9. **नगरो का सुनियोजित विकास ''जयपुर नगर पर संक्षिप्त प्रतिवेदन''** 42–46
   डॉ. अशोक कुमार मीना, जयपुर

10. **मालवा की लोकसंस्कृति में – महानुभाव पंथ** 47–50
    डॉ. मनीष कुमार दासौंधी, बडवानी (मध्यप्रदेश)

11. **कुरुक्षेत्र एक विवेचन** 51–54
    डॉ. सन्तोष कुमार, फलोदी

12. **मानव संसाधन विकास : कुमाऊँ की ग्रामीण महिलाओं के विशेष संदर्भ में** 55–60
    डॉ. सीता मेहता, ऊधमसिंह नगर (उत्तराखण्ड)

13. **क्षेत्रवाद : भारतीय लोकतंत्र के संदर्भ में** 61–66
    डॉ. राजेश कुमार रावत, जयपुर

14. **वैश्वीकरण की प्रक्रिया का भारत के जनजातीय समाज पर प्रभाव** 67–70
    डॉ. भारती दीक्षित, मेरठ (उत्तरप्रदेश)

15. **गांधी चिन्तन में राज्य एवं लोककल्याण** 71–76
    डॉ. पंकज भारद्वाज, रायपुर (पाली)

16. **बाड़मेर जिले के बालोतरा उपखण्ड की आधारभूत सुविधाओं का विकास : एक भौगोलिक एवं पर्यावरणीय अध्ययन** 77–83
श्री पाल, जोधपुर

17. **राजस्थान की साँभर झील में पक्षी त्रासदी** 84–87
रामकिशन माली एवं डॉ. डी. सी. डूडी, साँभर लेक

18. **प्रमुख आदिवासी समुदाय एवं उनकी वेशभूषा** 88–93
रेखा जौरवाल, अलवर

19. **स्वामी दयानन्द का शैक्षिक दृष्टिकोण व प्रासंगिकता** 94–98
डॉ. चित्रा आचार्य, फलौदी

20. **सैंधव सभ्यता कालीन भारतीय आभूषण परम्परा का अध्ययन** 99–103
अंकिता मीना, जयपुर

21. **मध्यकालीन राजस्थान के शिलालेखों में राजस्व व्यवस्था : एक अध्ययन (1200 से 1526 ईस्वी तक)** 104–107
कीर्ति कल्ला, जोधपुर

22. **बौद्ध धर्म में दिक् देवता एवं दिशा पूजा संकल्पना** 108–112
सौरभ कुमार मीना, जयपुर

23. **महाराजा मानसिंह की पड़दायत बड़ा चपलराय की बही में वर्णित ''बावड़ी एवं बाग से प्राप्त आय और व्यय का विवरण''** 113–116
डॉ. अनिला पुरोहित, बीकानेर

24. **राणा राजसिंह के सांस्कृतिक अवदान का ऐतिहासिक अध्ययन** 117–119
डॉ. भगवान सिंह शेखावत, जोधपुर

25. **भारत में महिला सशक्तिकरणः– यथार्थ या मिथक** 120–131
डॉ. आशुतोष मीना, नांगल राजावतान (मीणा हाईकोर्ट)

26. **Renuka Ray: An Unwavering Nationalist and a Crusader of Rights and Equality** 132-137
Dr. Manisha Pandey Tiwari, New Delhi

27. **Vaishnavism in Northern India (First - Third Century AD): A Historical Survey** 138-140
Arshad, Aligarh (Uttarpradesh)

28. **SHG Movement of RAJEEVIKA : An Critical Analysis** 141-147
Dr. Seema Pareek, Kaladera

29. **Kisan Credit Card: New money Lender of Farmers (A Study on Utilisation of KCC in light of Farmer's Debt trap problem in Rajasthan)** 148-154
Dr. Sunita Sharma, Jaipur

30. **Groundwater Resource Potential of Luni River a Hydrogeological Study** 155-159
Dr. Asha Rathore, Jodhpur

31. **Study of Models of Urbanisation Relevant to The Growth of Cities in Rajasthan** 160-166
Dr. Jaya Bhandari, Jodhpur

32. **A Study of Sports Psychology of Players** 167-170
Jugnu Khan & Dr. G.S Chouhan, Udaipur

33. **A Comparison of Self Concept, Mental-toughness and Mood Status Players** 171-173
Purohit Sheetal Satish & Dr. Preeti Kachhava, Udaipur

नई सदी के जनजातिमूलक हिंदी उपन्यास

प्रो. संजय नाईनवाड
सहयोगी प्राध्यापक, एस.बी. झाडबुके महाविद्यालय, बार्शी (महाराष्ट्र)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

भारतीय संविधान में 'आदिवासी' के लिए 'जनजाति' शब्द का प्रयोग हुआ है। आज जनजातीय जीवन को केंद्र में रखकर लिखे जा रहे उपन्यासों ने हिंदी साहित्य में अपनी स्वतंत्र पहचान बनायी है। इनमें जनजातीय समाज-जीवन की संवेदनाओं को यथार्थ के व्यापक धरातल पर लिखा जाने लगा है। मौजूदा दौर में हिंदी साहित्य के क्षेत्र में जनजातीय जीवन पर गैर-आदिवासी और आदिवासी दोनों साहित्यकारों द्वारा लिखा जा रहा है। जहाँ तक उपन्यास लेखन का मुद्दा है तो उपन्यास लेखन में आदिवासी उपन्यासकारों की अपेक्षा गैर-आदिवासी उपन्यासकारों की भागीदारी अधिक है। आदिवासी साहित्य जगत में आदिवासी साहित्य को लेकर मुख्य तीन अवधारणाएँ चर्चा में हैं - आदिवासी विषय पर लिखा साहित्य आदिवासी साहित्य है, जन्मना आदिवासियों द्वारा स्वानुभूति के आधार पर लिखा गया साहित्य ही आदिवासी साहित्य है और जिसमें 'आदिवासीयत' के तत्वों का निर्वाह हुआ है, वही आदिवासी साहित्य है। आज यह तीसरी अवधारणा आदिवासी साहित्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण मानी जा रही है। नई सदी में लिखे जा रहे जनजातिमूलक हिंदी उपन्यासों में आदिवासी व गैर-आदिवासी, दोनों रचनाकारों ने इसी तीसरी अवधारणा 'आदिवासीयत' के तत्वों का ध्यान रखकर आदिवासी उपन्यास रचे हैं, जिसकी अनुभूति नई सदी में अब तक लिखे गए उपन्यासों को पढ़ने के उपरांत होती है।

संकेताक्षर : *जंगलसेना, बगावत का बिगूल, संथाल हुल, लगान, मार्शल लॉ, आपराधिक जनजाति अधिनियम, एन.जी.ओ. जरायम-पेशा, मिथक, सम्पसभा, धूणी-धाम, मालगुजारी, प्रदूषण, विकीरण, विस्थापन, लेमुरिया महाद्वीप, सिंगबोंगा, सोना लेकन दिसुम, इकिर बोंगा, भूमंडलीकरण, सेज, उलगुलान, खनिज, खदान।*

जनजातियों को केंद्र में रखकर लिखे जा रहे उपन्यासों ने अब हिंदी साहित्य में अपनी स्वतंत्र पहचान बनायी है। आज जनजातीय समाज जीवन की व्यापक संवेदनाओं यथार्थ के धरातल पर लिखा जाने लगा है। इन उपन्यासों में आदिवासीयत के दर्शन होते हैं। डॉ. डी.एन. मजूमदार ने जनजाति को परिभाषित करते हुए लिखा है, ''एक जनजाति परिवारों या परिवार समूहों का एक संकलन होती है, जिसका एक नाम होता है, जिसके सदस्य एक निश्चित भू-भाग पर रहते हैं, सामान्य भाषा बोलते हैं, विवाह, व्यवसाय उद्योग के विषय में कुछ नियमों का पालन करते हैं तथा एक निश्चित तथा उपयोगी परस्पर आदान-प्रदान की व्यवस्था का विकास करते हैं।''[1] प्रस्तुत पत्र में 2000 से 2014 तक प्रकाशित जनजातिमूलक उपन्यासों पर प्रकाश डाला गया है।

राकेश कुमार सिंह ने 2003 में 'पठार पर कोहरा' उपन्यास झारखंड़ के जनजातीय जीवन पर लिखा है। उपन्यासकार ने शोषण, उत्पीड़न व अत्याचार की दलदल में धँसे संथाल व मुण्डा जनजातियों की दुर्दशा को उजागर किया है। आजादी के बाद झारखंड़ में जनजातीय इलाकों में शोषण की साहू, बाबू और बंदूक की नई संस्कृति का उदय हुआ था। उपन्यास का बेचू तिवारी, जंगल सेना, फॉरेस्ट अफसर इसी संस्कृति के प्रतीक हैं। ''जंगलसेना और बेचू तिवारी का तिरेसठ का आँकड़ा हर खेल में बेचू तिवारी का साथ देता.....वैसे तो क्षेत्र के वन-विभाग के सारे कर्मचारी, ब्लाक अफसर, थाना-पुलिस-सभी जानते हैं कि समस्त कारोबार ढँके तौर पर बाबा गऊँवॉ यानी बेचू तिवारी के ही है''[2] यह स्थितियाँ आज भी बदस्तूर विद्यमान हैं। आतंक, शोषण, दमनचक्र और हिंदू धर्म की उपेक्षा के शिकार आदिवासी

ईसाई मिशनरियों के झाँसे में आकर धर्म परिवर्तन कर लेते हैं। ''बनासकाँठा के लगभग सारे मुण्डा क्रिस्तान बन गये है। गले में क्रास पहिरने लगे हैं।''[3] उपन्यास में एक ओर शोषण, उत्पीड़न व अत्याचार के नये–नये दुश्चक्रों के जाल में फँसे जनजातीय मानस को जागृत करते हुए, उनमें अस्मिता व चेतना को जगानेवाले एक संवेदनशील, दुर्दम्य आत्मविश्वास और इच्छाशक्तिवाले नायक, अध्यापक संजीव सान्याल की संघर्षगाथा है। तो दूसरी ओर हताशा में घिरी आदिवासी युवती रंगेनी के आत्मसंघर्ष, अस्तित्व की रक्षा और नारीमुक्ति की कहानी है।

मधुकर सिंह द्वारा लिखा 'बाजत अनहद ढ़ोल' उपन्यास 2005 में प्रकाशित है। झारखंड के संथाल जनजाति की ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ किए गए संग्राम की पृष्ठभूमि में लिखी यह महागाथा है। भारत में ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ बगावत का बिगुल सर्वप्रथम झारखंड में ही बजा था। इस बगावत के पुरोधा संथाल हुल के नायक सिद्धो, कान्हो, चाँद, भैरो थे। इनके नेतृत्व में संथाल परगना में व्यापक जनांदोलन चलाया गया। आदिवासियों में देशप्रेम, स्वाधीनता की चेतना, अपने जल–जंगल–जमीन के लिए मर मिटने का जज्बा इन नायकों ने जगाया। सिद्धो, कान्हो, चाँद, भैरो, वीरसिंह माझी के नेतृत्व में आदिवासी संगठित हुए। इन जननायकों के कारण ही ब्रिटिशों को देश से खदेड़ने की चेतना और हौसला बुलंद हुआ, ''हमारी धरती खाली कर अपने देश चले जाओ। पहाड, नदी, झरना, खेत सब कुछ हमारा हैं–पूरा संथाल परगना हमारा है। पहाड़ काटकर, जंगल साफ कर हमने खेत बनाए हैं। उन खेतों पर लगान–मजूरी तय करने का काम तुम्हारा नहीं है।''[4] संथालों ने तत्कालीन कंपनी सरकार की शासन व्यवस्था, अर्थ व्यवस्था और न्याय व्यवस्था के विरुद्ध मोर्चाबंद होकर हथियार उठाये थे किंतु ब्रिटिश हुकूमत ने इसे विद्रोह करार दिया। आदिवासियों ने परंपरागत छापामारी युद्ध, तीर–धनुष्य, भालों से आधुनिक हथियारों से लैस आततायी अंग्रेजों का बड़े साहस से मुकाबला करते हुए वीरभूमि तक कब्जा जमाया इससे ब्रिटिश बौखलाये। छल और कपट का सहारा लेते हुए–''ब्रिटिश शासन फौजियों ने जुल्म का नंगा नाच शुरू कर दिया। हजारों संथाल जवान, बच्चे, औरतें और बूढ़े मार दिए गए संथाल बस्तियाँ वीरान कर दी गयी।''[5] अंग्रेजों ने खून की नदियाँ बहायी, बर्बरता को पराकाष्ठा पर पहुँचाया, कत्ल का सिलसिला चलाया। बूढ़ें, बच्चों, महिलाओं, जवानों पर मुकदमें चलाए कारागृहो में बंद किया। सिद्धो को पकडकर फाँसी दे दी गयी। फिर भी संथालियों की आजादी और अस्मिता की भावनाएँ कम नही हुई। अंततः सरकार ने पूरे संथाल परगना में 14 नवंबर 1855 में मार्शल लॉ लागू कर निर्ममता से संथाल विद्रोह को दबा दिया।

शरद सिंह का 'पिछले पन्ने की औरतें' उपन्यास 2005 में प्रकाशित है। बुंदेलखंड़ की बेड़ियाँ जनजाति उपन्यास के केंद्र में है। बेड़नियाँ जिस समाज से आती हैं, उस समाज का जीवन जीने का मुख्य साधन नाच–गाना है। उपन्यास में लेखिका ने बेड़ियाँ समुदाय की उत्पत्ति से लेकर उनके वर्तमान तक का विस्तृत लेखा–जोखा रखा है। स्त्री–विमर्श पर आधारित इस उपन्यास में सदियों से दलित, उत्पीड़ित, शोषित एवं उपेक्षित स्त्रियों की जीवनदशाओं एवं उनसे जुड़ी समस्याओं को बेबाक रूप में प्रस्तुत किया है। समाज में बेडियाँ औरतों की उपस्थिति तो है, किंतु इनके प्रति संवेदना यदा कदा ही नजर आती है। अधिकतर लोगों के लिए यह औरतें नाचने–गाने वाली बेड़ीनें मात्र हैं, उन्हे हर कोई भोग्या के रूप में भोग सकता है। उपन्यास की नचनारी ठाकुर के बच्चे की माँ बनने वाली है, वह जब ठाकूर से इसके बारे में बतियाती है तब ठाकुर उदासीन भाव से उसके हाथ में कुछ पैसे थमाते हुए कहता है, ''जब पैदा हो जाए तो सूचित करना.... जब आवश्यकता हो तो और खर्चा पानी माँग लेना।''[6] ब्रिटिश सरकार ने आपराधिक जनजाति अधिनियम के तहत कई जनजातियों को जरायमपेशा करार दिया, जिनमें से एक बेड़ियाँ जनजाति भी है। आजादी के बाद भारतीय संविधान ने इस अधिनियम को हटा दिया किंतु कई जनजातियाँ आज भी उस कलंक को ढो रही हैं। समाज के पूर्वाग्रह ने उन्हें अपराधपूर्ण कार्यों के लिए प्रेरित किया।

रामनाथ शिवेंद्र द्वारा लिखा 'तीसरा रास्ता' उपन्यास 2008 में प्रकाशित है। उपन्यास में रचनाकार ने विस्थापन, शोषण, उत्पीड़न व व्यवस्था के दमनचक्र में पीसती सोनपुर जनपद के आदिवासियों की नियति को उजागर किया है। आज गैर सरकारी संगठन कुकुरमुत्ते की भाँति ऊग आये हैं, उनकी कार्यप्रणाली व भूमिका पर उपन्यासकार सवालिया निशान उठाता है। वर्तमान में गैर सरकारी संगठन देश–विदेश से जनकल्याणकारी योजनाओं के लिए बेहिसाब धनराशि प्राप्त करते हैं, जिसका बहुत बड़ा हिस्सा इन संगठनों के कर्ताधर्ता अपनी ऐश–आराम की जिंदगी पर खर्च कर देते हैं। उपन्यास में 'मानवाधिकार जन समिति' नामक गैर

सरकारी संगठन का कर्ताधर्ता और उसकी सहायक मधु निहलानी ऐसे ही शातिर और बदमाश हैं, जो एन.जी. ओ. के माध्यम से विकास का भ्रम पैदा कर रहे हैं। वास्तविक उनके हाथ में समाज को बदलने की ताकत व साधन दोनों हैं, लेकिन वे शोषक व भक्षक के रूप में ही कार्य करते हुए दिखाई देते हैं। उपन्यास के माध्यम से रचनाकार ने आदिवासियों की अपने जल, जंगल व जमीन के लिए, अपने मौलिक अधिकारों के लिए किए जा रहे संघर्ष को उजागर किया है। सरकार की नीति भी आदिवासियों के प्रति निष्क्रिय एवं उदासीन है। सरकार सोनपुर जनपद में 'मानवाधिकार जन समिति' सुधा के नेतृत्व में बांध की परियोजना बनाती है। जहाँ बांध निर्माण प्रस्तावित है, उस प्रस्तावित क्षेत्र में आदिवासी पीढ़ी-दर-पीढ़ी निवास करते आए है। वह इलाका आदिवासियों का ही है लेकिन, ''सरकार ने मान लिया था कि जंगल में इन आदिवासियों के रहवास ही अवैधानिक हैं, इन्हे कोई विधिक अधिकार नहीं कि ये यहाँ रहवास करें।''[7]

भगवानदास मोरवाल का 'रेत' 2008 में प्रकाशित जरायम-पेशा कंजर जनजाति पर लिखा उपन्यास है। लेखक में तथाकथित सभ्य समाज ने तिरस्कृत करार दिए कंजरों के जीवन के अंतरंग को परत-दर-परत खोलकर समाज के सामने रखा है। ब्रिटिश शासनकाल भारतीय जनजातियों के लिए क्रूर काल कहा जाता है। ब्रिटिशों ने अपराधी जनजाति अधिनियम 1871 में संशोधन कर 1924 में उसे कठोर से कठोर बनाया जिसका अंजाम आज भी जरायम-पेशा जनजातियाँ भूगत रही हैं, जिसमें से कंजर एक है। इस अधिनियम के कारण ही उनका जीना मुहाल हो चुका है। उपन्यास की कमला बुआ कहती है, ''दरोगा जी एक बात कहुँ। इस मुलक में हम तो आज भी वैसे ही हैं, जैसे फिरंगियों के जमाने में थे। पहले फिरंगियों और उनके दलाल पिट्ठुओं ने हमारा जीना मुहाल कर रखा था और अब इन देसी फिरंगियों ने।''[8] जरायम-पेशा कंजर समाज में सबसे अधिक दुर्दशा उस स्त्री की होती है जो विवाह कर 'भाभी' बन जाती है। इसके विपरित सुखमय जीवन उसका है जो 'बुआ' बनकर देह-व्यापार करती हुई खिलावड़ी कहलाती है। कंजरों में देह-व्यापार को खुले आम स्वीकृति है। जो देह-व्यापार करती है वह घर की खरी मालकिन होती है। भाभियों को यहाँ कोई महत्व और स्थान नहीं है न उनका कोई भविष्य होता है न वर्तमान। जीवन-भर खिलावड़ी, ननंदों, भतीजियों यहाँ तक कि बेटियों की तिमारदारी में लगे रहो और भावी खिलावड़ियों को पैदा करना ही उनका कर्तव्य और जीवन की उपयोगिता माना जाता है। ऐसे समूचे जीवन को तथाकथित सभ्य समाज कलंकित, घृणित और निंदनीय मानता है। पर इसमें अपराध किसका है ? समूचे उपन्यास में सामाजिक अन्याय बोध, उससे उत्पन्न वेदना, विद्रोह और प्रतिक्रिया दिखती है, उसे रचनाकार ने उजागर किया है।

'ग्लोबल गाँव के देवता' रणेंद्र द्वारा लिखा, 2009 में प्रकाशित उपन्यास है। झारखंड की असुर जनजाति उपन्यास के केंद्र में है। असुरों का अपने अस्तित्व, आत्मसम्मान एवं अस्मिता के लिए चल रहा अनवरत दीर्घकालीन संघर्ष व सतत मिटते जाने की प्रक्रिया का दिल दहला देने वाला चित्रण इस उपन्यास में है। उपन्यास का रूमझूम असुर कहता है, ''हजार साल में कितने इंद्रों, कितने पांडवों, कितने सिंगबोंगा ने कितनी-कितनी बार हमारा विनाश किया, कितने गढ़ ध्वस्त किए, उसकी कोई गणना किसी इतिहास में दर्ज नहीं है। केवल लोककथाओं और मिथकों मे हम जिंदा हैं।''[9] उपन्यासकार लिखता है, ''बदहाल जिंदगी गुजारती, संस्कृति विहीन, भाषाविहीन, साहित्यविहीन, धर्मविहीन। शायद मुख्यधारा पूरा निगल जाने में ही विश्वास करती है.....छाती ठोंक-ठोंककर अपने को अत्यंत सहिष्णू और उदार कहने वाली हिंदुस्तानी संस्कृति ने असुरों के लिए इतनी भी जगह नहीं छोडी थी। कोई साहित्य नहीं कोई इतिहास नहीं, कोई अजायबघर नहीं। विनाश की कहानियों के कहीं-कोई संकेत मात्र भी नहीं''[10] उपन्यास में देवराज इंद्र से लेकर टाटा, शिंडाल्को, वेदांग जैसे ग्लोबल गाँव के देवताओं तक फैले शोषण और दमनचक्र को उजागर किया है। रणेंद्र ने सदियों से उपेक्षित, हाशिए का जीवन जीते असुर समुदाय का सुख-दुःख, व्यथा प्रस्तुत करते हुए असुरों के लोकजीवन के पक्ष को भी स्पर्श किया है।

हरिराम मीणा ने राजस्थान के भील सूरमाओं की शहादत पर 'धूणी तपे तीर' उपन्यास लिखा है, जो 2008 में प्रकाशित हुआ। दक्षिणी राजस्थान के बांसवाड़ा जिले में गोविंद गुरू के नेतृत्व में भीलों ने अंग्रेजी एवं देशज सामंती शासकों विरूद्ध लंबी लड़ाई लड़ते हुए मातृभूमि को स्वाधीनता दिलाने हेतु प्राणों की आहुति दी। जिसमें डेढ़ हजार से अधिक आदिवासियों की शहादत हुई। गोविंद गुरू ने मानगढ़ आंचल में सम्प सभा गठित कर आदिवासियों में चेतना जगायी। गोविंद गुरू दक्षिणी राजस्थान के गाँव-गाँव सम्प

सभाओं के माध्यम से धूणी–धाम स्थापित कर देशज रियासतों के शासक व फिरंगियों के द्वारा किए जाने वाले अत्याचार, दमनचक्र, शोषण, उत्पीड़न से तंग आए अभाव, गरीबी, भुखमरी, महामारी के अघाये–सताये आदिवासियों को मुक्ति दिलाकर स्वराज्य के अकांक्षी थे। ''गोविंद गुरू.....भूरेटिया अर्थात फिरंगियों को अपना असली दुश्मन मानते थें चूँकि उन्हीं के कारण देसी राजाओं ने आदिवासी विरोधी नीतियाँ लागू की थीं.....अंग्रेजों का सत्ता–केंद्र दिल्ली था.....गोविंद गुरू का अंतिम लक्ष्य दिल्ली की गद्दी था। अर्थात अंग्रेजी राज का खात्मा। उनका सपना था भविष्य में आदिवासी पंचायत राज करें। उनकी विचारधारा का केंद्रीय भाव आदिवासियों को कष्टों से मुक्ति दिलाना था।''[11] गोविंद गुरू का आंदोलन अपने चरम लक्ष्य की ओर बढ़ता देख राजस्थान, गुजरात की रियासतें व ब्रिटिश सरकार बौखला गयी। 1913 में कैप्टीन स्टोक्ले, कैप्टीन पीटरसन, मेजर वेली के नेतृत्व में भूरेटिया तथा देशी रियासती फौजी टुकड़ियों ने संयुक्त अभियान चलाकर मानगढ़ पर्वत पर हो रही आदिवासी पंचायत के जमावडे पर अचानक धावा बोल दिया। मानगढ़ पर्वत पर हुए बर्बरतापूर्ण नर–संहार में डेढ़ हजार से अधिक आदिवासियों की शहादत हुई। किंतु इतिहासकारों ने इस शहादत की ओर अनदेखा किया, यह खेदजनक है।

राकेश कुमार सिंह का 'हुल पहाडिया' आजादी के लिए प्राणों की आहुति देने वाले आदि विद्रोही वीर तिलका मांझी पर लिखा ऐतिहासिक उपन्यास है। उपन्यास 2012 में प्रकाशित है। आजादी की पहली लडाई लडने वाले तथा क्रांति के प्रथम अग्रदूत तिलका ने ईस्ट इंडिया कंपनी की साम्राज्यवादी नीतियों के खिलाफ नगाडा बजाकर शुरूआत की थी। परंतु इस महानायक को इतिहास में वह स्थान नहीं दिया गया, जिसका वह हकदार था। राकेश कुमार सिंह ने शोध व तथ्यों के आधार पर तिलका की मुक्तिकामी चेतना उजागर की है। पहाडिया शासक जनजाति थी। इनके राज्य की स्थापनाओं के कई ऐतिहासिक साक्ष्यों का जिक्र उपन्यास में है। भले ही पहाडिया राज्यों की स्थापना का लिखित इतिहास नहीं है। पर ''मुगल व ब्रिटिशकालीन इतिहास गवाहियाँ देते हैं कि पहाडिया राज्यों का बहिरागतों द्वारा विध्वंस किया था। हंडवा, गिद्धौर, लकड़ागढ, लक्ष्मीपुर, समरूगढ, खड़गपुर, महेशपुर, पाकुड, सनकारा...एक एक कर ये राज्य पहाडियाँ लोगों के हाथों से निकलते गए थे।''[12] पहाडियों को अपने पुरखों द्वारा स्थापित राज्यों पर दीकुओं का वर्चस्व स्वीकार न था। तिलका के नेतृत्व में ''पहाडियों ने कंपनी की हडपनीति का विरोध किया.... पहाडियों का मानना था सीमित जरूरतों संग जीने वाले चिर स्वाधीन पहाडिया जब कृषिकर्म में विश्वास ही नहीं रखते थे तो फिर किसी भूमि की मालगुजारी उनसे कैसे वसूल सकती थी कोई कंपनी ? तिलका ने हुल शंखनाद करके ब्रिटिश अधिकारियों पर हमले और लूटपाट शुरू की तो ब्रिटिशों ने तिलका को डकैत करार दिया। ब्रिटिशों ने जंगल कब्जे में लिए। उन्होंने नए–नए जमींदार जन्म दिए। इन्हें कंपनी की ओर से निजी सेनाएँ पालने की छूट दी। गाँवों में पुलिस थाने स्थापित किए। ब्रिटिशों ने सेना व पुलिस को आदेश ही दिए थे 'हिलमेन! शूट एट साईट'। तिलका इन स्थितियों से व्यतित हुए। उनका विचार था, हम जीएँ या मरें, कोई बात नहीं। मर गए तो अपने पुरखों के बीच गर्व के साथ जा बैठेंगे। जी, बच गए तो माथा ऊँचा करके जीएँगे पहाडिया....अब विजय या वीरगति। पर दुर्भाग्य तिलका को गिरफ्तार कर फाँसी पर लटकाया गया।''

महुआ माजी का 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' 2012 में प्रकाशित है। विस्थापन, प्रदूषण एवं विकीरण से जूझते जनजातीय समुदायों पर लिखा उपन्यास है। वर्तमान में झारखंड के सिंहभूम इलाके में जहाँ यूरेनियम की खदानें हैं, वहाँ रेडियोधर्मिता का कहर लगातार जारी है। इसी इलाके में अपने ढंग का बेहद अनूठा सारंड़ा का घना जंगल है, जो सात सौ पहाड़ों, उसके पठारों और मैदानी इलाकों में पसरा है। यह इलाका आदिम प्रकृति, ताजगी, कीमती खनिजों व साल वृक्षों के लिए मशहूर है। लेकिन कुदरत की यह सौगात आदिवासियों के लिए खतरा बन गयी है। खासतौर से आज़ादी के बाद तो सारंड़ा के जंगल का विनाश लगातार जारी है। इस बरबादी का सीधा संबंध सरकार की उपभोक्तावादी नीति से है, जहाँ अपने ही लोग पर्यावरणीय संसाधनों को नष्ट कर रहे हैं। लेखिका ने उपन्यास को झारखंड के सिंहभूम के आदिवासियों तक ही सीमित नहीं रखा, अपितु जापान, अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया तथा विश्व के विभिन्न खंडों में निवास करनेवाले आदिवासी समुदाय से भी जोड़ा है। परमाणु उर्जा के लिए जरूरी यूरेनियम प्राप्त करने के लिए आदिवासी इलाकों में यूरेनियम खदानें व परमाणु उर्जा संयंत्र स्थापित किए गए। इन खदानों, परमाणु उर्जा संयंत्रों और उसके कचरे से होनेवाला विकीरण गंभीर जानलेवा समस्या है। आज भारत में ही नहीं बल्कि पुरी दुनिया में ऐसी कई

यूरेनियम खदानें एवं परमाणु भट्टियाँ विकास के नाम पर स्थापित हुई हैं, कई स्थानों पर इसका काम भी चल रहा है किंतु इन भट्टियों से निकलनेवाला परमाणु कचरा बेहद गंभीर खतरा बन गया है। लेखिका यूरेनियम के विकीरण की भयानकता को बयान करते हुए लिखती है, ''परमाणु संयंत्रों में एक हजार मेगा वाट बिजली पैदा करने से करीब 27 किलोग्राम रेडियोधर्मी कचरा उत्पन्न होता है और उसे निष्क्रिय होने में एक लाख साल से भी ज्यादा लग जाते हैं।''[13]

रणेंद्र का 'गायब होता देश' उपन्यास झारखंड के आदिवासी मुंडा समुदाय के उत्पीडन, विस्थापन, संस्कृति विहीन एवं भूमिहीन हो जाने की त्रासदी चित्रित करता है। प्रस्तुत उपन्यास 2014 में प्रकाशित है। उपन्यास में लाखों साल पहले दक्षिणी-प्रशांत महासागर के मध्य लेमुरिया महाद्वीप पर लेमूरियन सभ्यता की नीव रखने वाली प्रजातियों में से एक मुंडा प्रजाति के वर्तमान में बेहद दयनीय दशा तक पहुँचने के विविध कारणों एवं घटनाओं का ब्योरा है। कथित सभ्य समाज भूमंडलीकरण और बाजारवाद के मौजूदा दौर में प्राकृतिक संसाधनों का असीम दोहन करते हुए भौतिक औद्योगिक विकास की धुन में मूलनिवासी जातियों एवं उनकी दुनिया को नष्ट करने की प्रक्रिया को अंजाम दे रहा है। विकास की अंधाधुंध दोहन प्रक्रिया में कथित सभ्य मानव ने अतिरिक्त समझदारी का परिचय देते हुए - आदिवासियों ने हजारों हजार सालों से सिंगबोंगा की व्यवस्था को बनाये रखा था, उसका विनाश करना शुरू किया। नतीजा आदिवासियों का सोना लेकन दिसुम गायब होता जा रहा है। ''सरना-वनस्पती गायब हुआ, मरांग बुरू, बोंगा, पहाड देवता गायब हुए, गीत गाने वाली धीमे बहने वाली, सोने की चमक बिखरने वाली हीरों से भरी सारी नदियाँ जिसमें इकिर बोंगा-जल देवता का वास था, गायब हो गई। मुंडाओं की बेटे-बेटियाँ भी गायब होने शुरू हो गए। सोना लेकन दिसूम गायब होने वाले देश में तब्दील हो गया।"[14] भूमंडलीकरण के दौर में अन्य एक नयी अवधारणा ने जन्म लिया है। विशेष आर्थिक क्षेत्र अर्थात सेज। कल तक जिस भूमि की सिंचाई के लिए बांध बनाकर हजारों आदिवासियों को उजाडा गया, उस दर्द के घाव अभी भरे ही थे, बांध के पानी से खेत सिंचित होना शुरू ही हुए थे कि उसी क्षेत्र को सेज बनाने के नीति। अभी-अभी आदिवासी किसान पानी से धान, आलू, गेहूं की खेती कर रहा था, उसकी स्थिति में थोडा बहुत सुधार हो रहा था, इसी बीच सरकार को सपना आ जाता है कि जनहित में सेज जरूरी है। ये कैसा सपना? जनहित वाले ये सपने सरकार के मंत्रियों, अधिकारियों एवं पूँजीपतियों को नोटों से भरे तोशक-गद्दे पर सोने से आते हैं। ऐसे कथित विशेष आर्थिक क्षेत्रों के खिलाफ उपन्यास की सोनामनी आंदोलन चला रही है, पर सरकार की नजर में ये हरकत राष्ट्रद्रोह है। वास्तव में यह राष्ट्रद्रोह नही है क्योंकि मुंडाओं का जल, जंगल एवं जमीन को लेकर संघर्ष का इतिहास देश के स्वतंत्रता आंदोलन में लगभग दो ढाई सौ साल पुराना है। 1765 में बंगाल की दीवानी अंग्रेजों को मिलने की घटना के बाद 1766-67 में संघर्ष शुरू हुआ था। जिसकी आग बंगाल के मेदीनापुर के जंगलमहाल से फैली थी। यह उलगुलान था अंग्रेजों की जल-जंगल-जमीन पर कब्जा करने की नीति तथा अतिरिक्त कराधान के खिलाफ। आज देश में विदेशी आक्रांताओं एवं अंग्रेजों की सत्ता नही है। किंतु देशज सत्ता भी मूलनिवासियों संग अंग्रेजों की तरह ही बरताव कर रही है। "आज भी हमारी जमीनें छीनी जा रही हैं। कल उन्हें बांध के लिए जमीन चाहिए थी। फिर सेज के लिए जमीन छीनी। अब रियल इस्टेट के लिए। अंग्रेजों के जमाने का भूमि जब्ती कानून अपने स्वार्थ में अभी तक लागू किए हुए हैं। हम क्या करें? चुपचाप ताकते रहें। हाथ पर हाथ धर के बैठे रहें। लेकिन हमारी परंपरा संघर्ष की, हमारे पूर्वज संघर्ष करने वाले। हमारा इतिहास, हमारा मिथक, हमारा दर्शन सब संघर्ष का....सो अब हम लडेंगे। सब लडेंगे। हमारे साथ प्रकृति, इतिहास, मिथक,-पूर्वज-पुरनिया सब के सब मिल कर लडेंगे। उलगुलान....हो उलगुलान।"[15]

राजीव रंजन प्रसाद लिखित उपन्यास 'आमचो बस्तर' 2014 में प्रकाशित है। प्रस्तुत उपन्यास बस्तर के अतीत व वर्तमान की त्रासदियों को केंद्र में रखकर लिखा है। 'आमचो बस्तर बस्तर' बस्तर के इतिहास, भूगोल, समाजशास्त्र, अर्थनीति, भाषा, धर्म, कला, संस्कृति, संगीत, जीजिविषा, परंपराएँ, लोकजीवन आदि तमाम रूपों से न पाठक को परिचित कराता है बल्कि पाठक को संवेदनाओं के स्तर पर गहरे रूप से जोड भी देता है। उपन्यास पढने के दौरान पाठक बस्तर की कई समस्याओं से जुड जाता है। उपन्यास में आदिवासी इलाकों में कई सालों से निर्मित माओवाद एवं नक्सलवाद जैसी ज्वलंत समस्या ने किस तरह अपना जाल फैलाया है, इस पर भी पर्याप्त प्रकश डाला गया है।

बस्तर एक से एक प्राकृतिक संसाधनों व खनिज संपदाओं से अटा पडा है। बस्तर में कारंडम, टिन, डाइमंड, बक्साईट, लाइमस्टोन, आयरन से लेकर यूरेनियम तक है किंतु इतना सब कुछ होने के बावजूद बस्तर कंगाल है। चूँकि ये सारी संपदाएँ बस्तर से निकल कर विकास के नाम पर अन्य स्थानों पर निवेश की जा रही हैं और बदले में बस्तर को क्या मिल रहा है? शोषण, उपेक्षा, गरीबी, बदहाली, प्रदूषण व बीमारियाँ। आज भी बस्तर के अधिकांश गाँवों में पक्की सडक की तो बात दूर कच्ची सडक तक नहीं पहुँच पायी है। कोई गाँव में बीमार पडता है और यदि उसे अस्पताल ले जाना हो तो मरीज को बाँस के सहारे खटिया को रस्सियों से बांधा जाता है जिसे दो व्यक्ति पालकी की तरह उठाकर ढोते हैं, यही बस्तर की एम्बुलेंस है और ये एम्बुलेंस दुर्गम पहाडियों, कच्ची पथरीली पगडंडी से जिस तिस तरह अस्पताल पहुँचती है। यदि मरीज जीवन की डोर लंबी रही तो बचता है, वरना कहना मुश्किल है। बस्तर के ये हालात हैं। ये वही बस्तर है जो देश विकास के लिए लौह आयस्क, कोयला, कोरंडम, लाइमस्टोन, बक्साईट, कोयला, यूरेनियम आदि को पहुँचाता है। पर यहाँ न सडकें हैं, न बिजली है, न पानी है, न अस्पतालों में ढंग की सुविधाएँ हैं, और न यहाँ के युवाओं को रोजगार। यहाँ लगी खदानों में बाहर के राज्यों से मजदूर बुलाए जाते हैं, अधिकारी नियुक्त किए जाते हैं पर स्थानीय बाशिंदों को रोजगार नहीं मिल पाता। यहाँ के लोगों की मांग है कि बस्तर को शेष दुनिया से काट देने से बस्तर का विकास नहीं होगा। यहाँ परियोजनाएँ आनी चाहिए, कल-कारखाने लगने चाहिए। सरकारी नौकरी से केवल कुछ व्यक्तियों का जीवन सुधर सकता है परंतु यदि परियोजनाएँ यहाँ लग जाए तो इसके चलते सहायक व्यापार और रोजगार भी जन्म लेते हैं। एक बात सही है कि यहाँ अंधाधुंध औद्योगिकरण नहीं होना चाहिए परंतु कुछ परियाजनाएँ तो आनी चाहिए। बस्तर में जब कोई परियाजना शुरू होने की बात उठती है तब विरोध का स्वर ठोस होने लगता है। उपन्यास का पात्र मरकाम कहता है, ''बस्तर में विकास और रोजगार की एक उम्मीद जगी नहीं कि हमारे मसीहा जहाँ-तहाँ से पैदा हो जाते हैं.....इसलिए तो नक्सलवादी पनप रहे हैं.. ...विकास होगा नहीं, रोजगार रहेगा नहीं तो क्या होगा।"[16]

देश आजाद हुए 74 वर्ष बीत चुके हैं। इसके बाद भी इस तरह की पीडा भरे सवाल भारतीय आज़ादी लिए चुनौती बन कर उभर आते हैं। यदि बस्तर स्वतंत्र भारत का हिस्सा है तो वहाँ विकास की धारा क्यों नहीं पहुँच रही है। क्या कारण हैं इसके? ऐसे कई सारे सवाल उपन्यास पढते समय मन में निर्मित होते हैं।

संदर्भ गंथ सूची

1. *उमेश कुमार वर्मा, जनजातीय समाजशास्त्र, जानकी प्रकाशन, पटना सं. 2008, पृ.6*
2. *राकेश कुमार सिंह, 'पठार पर कोहरा', भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली 110003, सं. 2003 पृ.71*
3. *वहीं, पृ.67*
4. *मधुकर सिंह, 'बाजत अनहद ढ़ोल', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 110002, संस्करण, 2005 पृ. 73*
5. *वहीं', पृ.113*
6. *शरद सिंह, 'पिछले पन्ने की औरतें', सामायिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण, 2007, पृ.27*
7. *रामनाथ शिवेंद्र, 'तीसरा रास्ता', पिल्ग्रीग्स पब्लिशिंग, वाराणसी, 221010, सं. 2008 पृ. 107*
8. *भगवानदास मोरवाल, 'रेत', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 110002, सं. 2008, पृ.35*
9. *रणेंद्र, 'ग्लोबल गाँव के देवता', भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली 110003, पृ.43*
10. *वहीं, पृ.33*
11. *हरिराम मीणा, 'धूणी तपे तीर', साहित्य उपक्रम, हरियाणा, सं. 2008, पृ. 30*
12. *राकेश कुमार सिंह, हुल पहाड़िया सामायिक बुक्स, नई दिल्ली, 110003, सं. 2012, पृ. 24*
13. *महुआ माजी, मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2012, पृ.380*
14. *रणेंद्र, गायब होता देश, पेंगुइन बुक्स, इंडिया, दिल्ली, सं. 2014, पृ.103*
15. *वहीं पृ. 243*
16. *प्रसाद राजीव रंजन, आमचो बस्तर, यश पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 110032, सं. 2014 पृ. 109*

सामाजिक आन्दोलन लोकतन्त्र के दर्पण में

डॉ. दिनेश गुप्ता
सहायक आचार्य, राजकीय महाविद्यालय, खाजूवाला (बीकानेर)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र वर्तमान लोकतान्त्रिक व्यवस्था में सामाजिक आन्दोलन का सामाजिक ऐतिहासिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है साथ ही सामाजिक आन्दोलनों को लोकतन्त्र का सुरक्षा यन्त्र भी मानता है। किसी भी लोकतान्त्रिक व्यवस्था में सामाजिक आन्दोलन लोकतन्त्र को मजबूत बनाने वाली ईकाई होते है। भारतीय समाज व्यवस्था की विशिष्ट सामाजिक संस्थाओं ने भारत में विकास के पश्चिमी प्रारूप में अवरोधक का कार्य किया है। कृषक आन्दोलन की विवेचना के माध्यम से भारत में सामाजिक आन्दोलनों की लोकतन्त्र में उपयोगिता को रखा है।

संकेताक्षर : *सुरक्षा यन्त्र, उपनिवेशवाद, विशिष्ट सामाजिक संस्थाऐं।*

आन्दोलनों का नाम सुनते ही कि एक विचार जनमानस के मन में तुरन्त प्रकट होता है कि कोई एक ऐसी घटना या प्रघटना, राजनीतिक व्यवस्था में घटित हुई है जिसके कारण एक समूह विशेष के अधिकारों का हनन हो रहा है या अधिकारो से वंचित किये जाने की प्रक्रिया अमल में लाई गई है। ''सामाजिक आन्दोलन शब्द यूरोपीय साहित्य में उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षो मे प्रचलन में आने लगा था। उस समय सम्पूर्ण यूरोप में सामाजिक–सास्कृतिक, आर्थिक एवं राजनीतिक उथल–पुथल का समय था"[1]। समाजशास्त्र विषय में तो आन्दोलन का समाजशास्त्र नामक एक शाखा ही स्थापित हो गई है, जिसका कार्य आन्दोलनों के परिप्रेक्ष्य में वास्तविक ज्ञान विभिन्न शोध एवं अध्ययनों को समाज के सामने रखना है। समाजशास्त्र में आन्दोलनों को सामाजिक आन्दोलन के अन्तर्गत रखकर उनका वर्गीकरण किया जाता है इस अर्थ में कोई भी आन्दोलन सामाजिक परिधी से अछूते नहीं रह जाते है।

सामाजिक आन्दोलनों का अध्ययन, विश्लेषण एवं अनुसंधान, परिवर्तन की प्रक्रियाओं को भी समझाने में सहायक होता है, जिसका मूल कारण यह होता है कि आन्दोलन या तो सामाजिक व्यवस्था में नकारात्मक परिवर्तन का विरोध करने के लिए घटित होते है या परिवर्तन लाने के लिए अस्तित्व में आते है। राजशाही एवं सामन्तवादी समाजों में आन्दोलन अस्तित्व में तो आते है परन्तु उन्हे क्रान्ति की संज्ञा दे दी जाती है। लोकतान्त्रिक समाजों में आन्दोलन लोकताऩ्त्रिक प्रक्रियाओं के लिए सेफ्टी वॉल्व की तरह होते है जो किसी भी लोकतान्त्रिक समाज को बनाये रखने का काम करते है यदि आन्दोलनों को किसी भी लोकतान्त्रिक प्रक्रियाओं में दमित करने का प्रयास किया जायेगा तो ऐसे मे लोकतन्त्र के अस्तित्व को खतरा होना तय है।

भारत में विभिन्न सामाजिक आन्दोलनों का एक लम्बा इतिहास रहा है यह लम्बा इतिहास भारत में इसलिए भी है क्योंकि भारत तीन शताब्दियों तक ब्रिटिश उपनिवेश रहा था। ''उपनिवेशवादी भारत में ब्रिटिश दमनकारी गतिविधियों के विरोध में कई आन्दोलन घटित हुए है जिसका विवरण हमें डी.पी.मुकर्जी, एम.एस.ए.राव, आन्द्रे बेतई और धनश्याम शाह के साहित्य में देखने का मिलता है। सामाजिक आन्दोलनों का वर्गीकरण समाज विज्ञानों में विभिन्न वर्गो के अन्तर्गत किया गया है।

1. कृषक आन्दोलन
2. जनजातीय आन्दोलन
3. दलित आन्दोलन
4. पिछड़ी जाति आन्दोलन
5. महिलाओं के आन्दोलन
6. औद्योगिक आन्दोलन या श्रमिक आन्दोलन
7. विधार्थी आन्दोलन
8. मध्यम वर्ग आन्दोलन
9. मानव अधिकार आन्दोलन
10. पर्यावरणवादी आन्दोलन
11. सुधारवादी आन्दोलन[2]"

आन्दोलनों का वर्गीकरण यह समझाने में सहायता करता है कि लोकतान्त्रिक प्रकियाओं में आन्दोलन हमेशा कमजोर वर्ग के द्वारा ही अपने हितों की रक्षा के लिए किये जाते है ऐसे में आन्दोलन का समाजशास्त्र नामक शाखा मानवीय परिप्रेक्ष्य की परिधी में आ जाती है। सामान्य शब्दों में हम कहेगें कि आन्दोलन समाज की कमजोर ईकाई का अपने हितो की रक्षा के लिए या समाज में अपनी प्रस्थिति में सुधार करने के लिए शासक वर्ग के खिलाफ एक सामूहिक कार्य है, जिसमें वर्गीय चेतना के तत्त्व विद्यमान होते है।

भारत में आन्दोलनों का अपना एक विशिष्ट ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य रहा है, भारत में सामाजिक आन्दोलनों को समय अवधि के आधार पर दो भागों में वर्गीकृत करना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

1. उपनिवेशवादी भारत में सामाजिक आन्दोलन
2. उत्तर उपनिवेशवादी भारत में सामाजिक आन्दोलन (स्वतन्त्र भारत में सामाजिक आन्दोलन)

1. उपनिवेशवादी भारत में सामाजिक आन्दोलनः– उपनिवेशवादी भारत में सामाजिक आन्दोलन का विश्लेषण करने की आवश्यकता इसलिए भी है कि हमें उत्तर उपनिवेशवादी भारत में सामाजिक आन्दोलनों का चरित्र समझने मे सहायता प्राप्त होती है। एक तथ्य और भी है जो भारतीय समाज में आन्दोलन के चरित्र को उजागर करता है वह यह कि उपनिवेशवादी भारत में आन्दोलन के लिए विद्रोह शब्द का प्रचलन अधिक रहा है । ऐसे में आन्दोलनों को ब्रिटिश प्रभाव के विरुद्ध विद्रोह की संज्ञा दी जाती है ऐसा करने में भारत के उन विद्धवानों का हाथ रहा है जो ब्रिटिश प्रभाव को भारत के लिए अच्छा मानते थे।

उपनिवेशवादी भारत में सभी इस ऐतिहासिक तथ्य से परिचित है कि ब्रिटिश शासकों ने फूट करो और राज करों कि नीति अपनायी थी और शासन व्यवस्था में दीवानी अधिकार अपने पास रखे थें। दीवानी अधिकारों से आशय उन अधिकारो से है जो आर्थिक नीति से सम्बधित होते है। ''प्रसिद्ध भारतीय समाजशास्त्री ए. आर.देसाई ने उन सभी परिस्थितियों की विवेचना अपनी पुस्तक 'भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि' में की है जो ब्रिटिश शासकों के आर्थिक शोषण के कारण उत्पन्न हुई थी तथा भविष्य में यही परिस्थितिया कृषकों को भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के साथ जोड़ती थी। देसाई महोदय ने अपनी पुस्तक में लिखा कि भारत एक कृषि प्रधान संस्कृति वाला देश अपनी ऐतिहासिकता से रहा है, उपनिवेशवादी शासकों ने सम्पूर्ण दोहन भारतीय कृषि का किया तथा एक वर्ग को उत्पन्न किया जिसे जमींदारी वर्ग की संज्ञा दी गई यह वर्ग भारतीय ग्रामीण संस्कृति का शोषण करने वाला वर्ग था और ब्रिटिश शासको के हितों के अनुरूप कार्य करता था"[3]। इसी सन्दर्भ में दादा भाई नेरोजी की ड्रेन थ्योरी जिसका विवरण उनकी पुस्तक 'पार्वटी एन्ड अन–ब्रिटिश रूल इन इंडिया' मे मिलता है के सिद्धान्त का सार भी यही था कि ब्रिटिश शासको द्वारा एक ऐसी नीति बनाई गयी जिसके कारण भारतीय अर्थव्यवस्था की मुद्रा का निकास ब्रिटेन देश की ओर होने लगा तथा भारत में निर्धनता की समस्या में तेजी वृद्धि होने लगी। निर्धनता के कारण भारत में विकास के पैमाने कमजोर हो गये तथा भयंकर भूखमरी और कुपोषण की समस्या भारत में देखने कों मिली। एक रोचक तथ्य यह भी था कि जिस देश के नागरिको का शोषण उपनिवेशवादी शासको और उनके द्वारा बनाई गई व्यवस्था ने किया उसी देश के नागरिकों के साथ उपनिवेशवादी शासकों ने रंगभेद की नीति भी अपनायी साथ ही भूखे, नंगे, और गंवार शब्दों से भी नवाजा जो कि उनकी शोषण आधारित व्यवस्था का परिणाम थी।

उपनिवेशवादी भारत में विभिन्न आन्दोलनों में से कृषक आन्दोलनों की चर्चा की जाए तो कृषक आन्दोलनों के सन्दर्भ में भी दो तरह के विचार देखने को मिलते है जिनमें एक वर्ग का मानना है कि भारत में कृषक आन्दोलनों का प्रभाव उन आन्दोलन की तरह नहीं रहा जो चीन या यूरोपीय देशों में कृषक आन्दोलनों का था इस वर्ग ने उन कारको की भी विवेचना की है, पहला तो यह कि भारतीय कृषि प्रधान

संस्कृति जाति व्यवस्था एवं जजमानी व्यस्था के प्रभाव में थी, दूसरा भारत में एक सामूहिक नेतृत्व का अभाव था जिसके कारण कृषक समाज में सामूहिक चेतना संगठित नहीं हो सकी। इन विद्धवानों के अन्तर्गत बैरिंगटन मूर तथा ऐरिक स्ट्रोक्स मुख्य थे।

''कैथलिन गफ, ए.आर.देसाई, डी.एन.धनागरे और रणजीत गुहा ने मूर और स्ट्रोक्स की धारणाओं को चुनौती दी है। इन सभी का कहना था कि इतिहासकारों ने ब्रिटिश शासन के पहले और उनके काल में हुए कृषक आन्दोलन या विद्रोह की अनदेखी की है।

कैथलिन गफ कहती है कि वर्तमान भारत में प्रत्येक राज्य में पिछली दो शताब्दियों में कृषक आन्दोलन या विद्रोह एक सामान्य घटना रही है । गफ भारत में ऐसे 77 विद्रोह की गणना भी प्रस्तुत करती है।

ए.आर.देसाई ने भी कहा कि ब्रिटिश काल में और उसके बाद सम्पूर्ण भारतीय ग्रामीण परिदृश्य विरोध, विद्रोह और वृहत स्तर पर संघर्षो से भरा रहा है जिसमें सैकड़ो गांवो ने भाग लिया और कई वर्षो तक चला।

रणजीत गुहा भी कहते है कि विभिन्न प्रकार और मात्रा में कृषिहर विरोध ब्रिटिश शासन के प्रथम तीन चौथाई काल अर्थात 19 वीं शताब्दी के अन्त तक छाई रहीं है, 117 वर्षो में ज्ञात 110 विद्रोहों के उदाहरण देखने को मिलते है"[5]।

डी.एन धनागरे कहते है कि मूर के निष्कर्ष किसी ''व्यवस्थित सिद्धान्त पर आधारित नहीं है अपितु ये भारतीय कृषकों और समाज के बारे में फैली हुई रूढ़िवादी धारणाओं का मात्र और उनके अनुभवपरक सामान्यीकरण प्रश्नों के धेरे में है। अतः भारतीय कृषकों के बारे में भारत के विभिन्न कृषक प्रतिरोध आन्दोलनों और विद्रोह के अधिक विस्तृत सर्वेक्षण के प्रकाश में उनकी धारणाओं पर पुनर्विचार किए जाने की आवश्यकता है"[6]।

भारतीय कृषक विद्रोह या आन्दोलन के परिणाम उस रूप में प्राप्त नहीं हो पाये जिस रूप में चीनी और यूरोपीय कृषकों ने प्राप्त किये है। यह कथन सही प्रतीत होता है भारतीय समाज की विजातीयता और जाति के आधार पर समाज का खण्डात्मक विभाजन भारतीय समाज में सामूहिक प्रयासों पर या सामूहिक चेतना को कमजोर करता है, सहीं है। भारतीय समाज में सम्पूर्णता तभी प्राप्त की जा सकती है जब सम्पूर्ण भारतीय सामाजिक समूहों को ही खतरा महसूस हो। इसके अतिरिक्त भारतीय कृषक साहूकारों और महाजनों के चंगुल में भी फंसा रहा जिसके कारण वह संगठित नहीं हो सका।

उपनिवेशवादी भारत में कृषक आन्दोलनों के अन्तर्गत केरल में मोपला आन्दोलन, के सामाजिक परिप्रेक्ष्य को रखने की आवश्यकता है इस आन्दोलन के साथ भी ब्रिटिश राज ने वहीं किया जो अन्य कृषक आन्दोलनों के साथ किया अर्थात साम्प्रदायिक रूप देकर प्रचारित किया गया जिससे अधिकतर कृषक आन्दोलनों की तीव्रता को कम किया जा सके।

मोपला विद्रोह जिसका सम्बन्ध केरल से है मुख्यतः भूस्वामियों और काश्तकारों के बीच के खेतिहर संघर्षो से सम्बधित रहा है यह भी एक अजीब संयोग था कि मोपला आन्दोलन भूस्वामियों के खिलाफ थ तथा भूस्वामी हिन्दू थे तथा काश्तकार मुस्लिम थे अतः ब्रिटिश राज ने इसे सरलता से साम्प्रदायिक रूप दे दिया परन्तु इस आन्दोलन के कुछ नेता हिन्दू भी थे जिसकी अवहेलना इतिहासकारों ने की है। ऐसा ही एक उदाहरण बंगाल के बहावी और फराजी आन्दोलन के साथ भी जुड़ता है इस आन्दोलन का लक्ष्य जमींदार थे जो कि कुछ मुस्लिम थें परन्तु इसे भी साम्प्रदायिक रंग दे दिया गया। अतः ब्रिटिश राज ने फूट डालने के उद्देश्यय से इन्हें साम्प्रदायिक रंग दिया (इन उदाहरणों की चर्चा इसलिए करना महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि भारत में 2020 से तीन कृषि कानूनों को लेकर चल रहे कृषक आन्दोलनों को भी धार्मिक आधार देकर कमजोर करने का प्रयास किया जा रहा है, तथा एक लोकतान्त्रिक भारत में ब्रिटिश नीतियों की पुनरावृत्ति देखने को मिलती है।)

उपनिवेशवादी भारत में आन्दोलनों के सन्दर्भ से सर्वसम्मति से इन कारकों की चर्चा को स्वीकार किया गया कि कृषक आन्दोलनों में तीन कारकों की भूमिका महत्त्वपूर्ण रहीं है।

1.मूल्य वृद्धि, प्राकृतिक विपदा (अकाल, बाढ़) के कारण कृषकों की आर्थिक दशा के खराब होने से तथा ब्रिटिश शासकों से सहायता के अभाव में आन्दोलन हुए।

2.संरचनात्मक परिवर्तन जिसके कारण कृषकों के शोषण में बढ़ोतरी होती हैं परिणामतः उनकी दशा बिगड़ती है और आन्दोलनों को बल मिलता है।

3. कृषकों का अपनी दशा सुधारने जिसमें सामाजिक, सास्कृतिक और आर्थिक दशा महत्त्वपूर्ण है हेतु बढ़ती

आकांक्षा के कारण आन्दोलन के लिए प्रेरित होना।

कृषकों के आन्दोलनों के कारकों में सभी विद्धवानों ने एक मत से यह स्वीकार किया है कि जब कभी किसानों की आर्थिक दशाएं इतनी खराब हुई है कि जीवन पर संकट आ गया है तब कृषकों ने आन्दोलन किये है। राजस्थान में कृषकों की आर्थिक दशाओं को नुकसान पंहुचाने में बेगार अर्थात बलात श्रम जैसे कारक प्रभावी रहे है और कृषक आन्दोलन हुए है। बलात श्रम और भूमि सुधार को लेकर उत्तर उपनिवेशवादी भारत में कृषक आन्दोलन हुए है अर्थात हिन्दूवादी संस्कृति की प्रथाएं भी कृषक आन्दोलन के कारको में अपना स्थान बनाती है।

उपनिवेशवादी भारत में ब्रिटिश राज द्वारा विकसित जंमीदारी वर्ग कृषक आन्दोलनों का प्रमुख कारक रहा है जिसके कृषको का आर्थिक शोषण किया तथा यह आर्थिक शोषण आगे चलकर कृषक आन्दोलनों में परिवर्तित हुआ है।

एक अन्य कारक जिसकी यहा चर्चा करना इसलिए भी जरूरी हो जाता है क्योकि यह सामाजिक परिवर्तन से जुडी प्रक्रिया का भाग है, कृषि के उत्पादन के तरीकों में परिवर्तन, ने पारम्परिक खेतिहर सम्बन्धों को अस्त–व्यस्त कर दिया इससे कृषक समाज में असन्तोष उत्पन्न हुआ। ब्रिटिश राज में भूमि विक्रय की वस्तु बन गयी तथा आगे चलकर कृषि का व्यापारीकरण कर दिया गया जिससे भी कृषको की आर्थिक दशाऐं दयनीय हो गयी फलतः बड़ी संख्या में कृषक आन्दोलन हुए। मूर, धनागरे ओर माजिद सिद्दीकी ने इस तरह के विचारों को अपने अध्ययनों में रखा है।

2. उत्तर उपनिवेशवादी भारत में सामाजिक आन्दोलनः– उत्तर उपनिवेशवादी भारत में कृषक आन्दोलनों का प्रभाव रहा है साथ में विभिन्न आन्दोलन भी होते रहे है। कृषक आन्दोलन के सन्दर्भ में यह तथ्य भी विवेचित किया जाना आवश्यक है कि भारत और इंडिया दोनों शब्दों का प्रभाव भी आन्दोलनों के सन्दर्भ में किया गया। ग्रामीण भारत के लिए भारत शब्द तथ शहरी भारत के लिए इंडिया शब्द का प्रयोग किया जाता है चूंकि कृषक आन्दोलन ग्रामीण संस्कृति और जीवन से जुड़े है अतः यहां भारत शब्द का प्रयोग किया गया और इंडिया शब्द का प्रयोग औद्योगिक संस्कृति के अन्तर्गत किया जाता है।

उत्तर उपनिवेशवादी भारत में 1960 के दशक का तेलंगाना आन्दोलन, तेभाग आन्दोलन,नक्सलवादी आन्दोलन, भूमि हड़पो आन्दोलन प्रमुख आन्दोलन है। इन सभी आन्दोलनों को एक रणनीति के तहत राजनीतिक दलों द्वारा संगठित किया गया था, उपनिवेशवादी भारत में आन्दोलनों के सन्दर्भ में व्यापक रणनीति एवं सगंठन का अभाव था।

वर्तमान परिदृय में भारत में महामारी कोविड–19 के समय ही तीन कृषि कानूनों को भारत सरकार ने निर्मित किया । जिसको लेकर विशाल पैमाने पर कृषक आन्दोलनरत है। इक्कीसवीं शताब्दी का यह एक अनूठा आन्दोलन बनकर उभरता है जिसने राज्य एवं केन्द्र के मध्य भी शक्ति सम्बन्धों की बात की है।

1. **कृषक उपज व्यापान और वाणिज्य (सवंर्धन और सरलीकरण) विधेयक 2020:–** जिसका विरोध इस तथ्य को लेकर किया जा रहा है कि इस विधेयक से बड़े कारपोरेट्स का दखल कृषि क्षैत्र में बढ़ेगाा तथा बड़ी मछली छोटी मछली को निगल जाती है का सिद्धान्त कृषकों के लिए दास की प्रस्थिति उत्पन्न कर देगा
2. **कृषि (सशक्तिकरण और संरक्षण) कीमत अश्रासन और कृषि सेवा करार विधेयक 2020 :–** इस विधेयक का विरोध इस तथ्य के साथ किया गया कि यह विधेयक कान्ट्रेक्ट फार्मिग को बल देगा जिसका सीधा प्रभाव किसाने पर यह होगा कि वह बंधुआ मजदूर बन कर रह जायेगे।
3. **आवश्यक वस्तु संशोधन विधेयक 2020:–** इस विधेयक का विरोध इस आधार पर किसान संगठनों के द्वारा किया गया है कि इस विधेयक से जमाखोरी और कालबाजारी को खुली छूट मिलेगी, सरकारी नियंत्रण कमजोर होगा।

केन्द्र सरकारों द्वारा इन तीनों कृषि विधेयकों को जल्दबाजी में संसद में पास कराया गया। कोविड–19 महामारी की विषम परिस्थितियों में भी कानून बनाना और इस कानून का संवैधानिक प्रक्रिया के तहत नहीं बनाया जाना(संसद में चर्चा नहीं की जाकर इसे सीधे ही पास करा लेना), भारत के लगभग 40 से भी अधिक श्रम संघों को उचित नहीं लगा जिसका परिणाम

उत्तर उपनिवेशवादी भारत में इक्कीसवीं सदी का सबसे लम्बा कृषक आन्दोलन के रूप में सामने आया। केन्द्रीय सरकार द्वारा धार्मिक, राष्ट्रवादी, जातिवादी सभी प्रकार के उपायों द्वारा इसे असफल और दमित करने का प्रयास किया गया। भारतीय कृषक संगठनों का कहना है कि केन्द्रीय सरकारें हमारे विकास के लिए जो कानून बनाती है उसमें हमसे चर्चा करे हमसे बिना चर्चा के बिल बना दिया जाता है और वह हमारें विकास से सम्बधित हो स्वीकार किया जाना उचित प्रतीत नहीं होता है।

प्रस्तुत शोध पत्र में लेखक इसी विचारधारा से प्रेरित है कि उपनिवेशवादी भारत में ब्रिटिश शासको ने जमींदारी वर्ग को निर्मित कर भारतीय कृषक संरचना का दोहन किया और वर्तमान में सरकारें कारपोरेट संरचना को मजबूती देते हुए उनके अनुरूप कृषक संरचना को निर्मित कर रहीं है। यह सर्वविदित है कि जब निजी अर्थात कारपोरेट क्षैत्र पर संकट आता है तो वे राज्य की तरफ भागते है अर्थात जो अपने क्षैत्र के संकट को नहीं बचा सकते है यदि उनके अनुरूप कृषक संरचना को परिवर्तित कर दिया गया तो कृषक संरचना पर आने वाले संकट से कैसे निपटा जायेगा। कारपोरेट क्षैत्र केवल और केवल तत्कालीक लाभ के लिए वर्तमान का अत्यधिक दोहन करता है भविष्य को लेकर योजना की कमी इस क्षैत्र में होती है अतः कृषक संस्कृति और संरचना को कारपोरेट क्षैत्र से दूर रखते हुए विकसित किये जाने की आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1 *शाह, घनश्यामः "भारत में सामाजिक आन्दोलन'', रावत पब्लिकेशन,जयपुर, 2009. पेज न.– 5*

2. *वहीं पेज न.–16*

3. *देसाई, अक्षय रमणः "भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि (चतुर्थ संस्करण)'',राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1985. पेज न.–1–5,*

4. *देसाई, अक्षय रमणः पीजेन्ट स्ट्गल इन इन्डिया",आक्सफोर्ड यूनिवर्सिट प्रेस, नई दिल्ली 1985. पेज न. –24*

5. *वहीं पेज न.–24–25*

6. *धनाग्रे, डी.एन.: "पीजेन्ट मूवमेन्ट इन इंडिया 1920–50'', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1950. पेज न.–5*

गाँधी जी और पं. दीनदयाल उपाध्याय का आर्थिक चिन्तन

डॉ. संजीव कुमार लवानियां
विभागाध्यक्ष, पण्डित सुंदरलाल शर्मा (मुक्त) विश्वविद्यालय, बिलासपुर (छत्तीसगढ़)

डॉ. ऋता दीक्षित
सहायक आचार्य, एल.एम.एस. पी.जी. कॉलेज, सकीट, एटा (उत्तरप्रदेश)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

महात्मा गांधी एवं पं. दीनदयाल उपाध्याय के आर्थिक चिन्तन में नैतिकता, पवित्रता एवं भारतीयता का समावेश बहुत महत्वपूर्ण है। दोनों ने जीवन में अर्थ को साधन रूप में स्वीकार किया है, साध्य रूप में नहीं। औद्योगिकीकरण एवं मशीनों के सीमित उपयोग के पक्षधर दोनों महानुभावों का सहज एवं स्वाभाविक लगाव भारत के कुटीर उद्योगों की महत्ता के प्रति रहा। भारत एवं भारतीयों के उत्कर्ष हेतु वे भारतीय कलात्मक वैभव के समुन्नयन को अपरिहार्य मानते थे। दोनों विभूतियों के आर्थिक–चिन्तन के सन्दर्भ में सर्वोदय एवं अन्त्योदय की अवधारणाओं का भी विशेष महत्व है। महात्मा जी ने रस्किन के ''अंटू द लास्ट'' ग्रन्थ से प्रभावित होकर भारत में ''सर्वोदय'' जैसे आंदोलन का प्रवर्तन किया, तो पं. दीनदयाल जी ने उसे और विराट आभा से मण्डित कर ''अन्त्योदय'' की महिमा प्रदान की। इस रूप में भारत उनके आर्थिक चिन्तन का सदा ऋणी रहेगा।

संकेताक्षर : *कुटीर उद्योग, सर्वोदय, अन्त्योदय, कला–कौशल, औद्योगिकीकरण, गांधी, दीनदयाल उपाध्याय, आर्थिक चिन्तन।*

जिस अर्थ में हम ऍडम और मार्शल को अर्थशास्त्री कहते हैं, महात्मा गाँधी उस अर्थ में अर्थशास्त्री नहीं थे। फिर भी उनके समीप अपने निर्धन देशवासियों की सहायता करने के लिए एक व्यावहारिक आर्थिक कार्यक्रम था। यद्यपि महात्मा गाँधी ने अर्थशास्त्र पर कोई स्वतंत्र पोथी नही लिखी है, पर जब हम उनकी प्रकीर्ण रचनाओं का अनुशीलन करते हैं तब हमारे सम्मुख उनकी आर्थिक विचारधारा का एक सजीव चित्र उपस्थित हो जाता है। यह सत्य है कि गाँधीवादी अर्थशास्त्र अभी शैशवावस्था में ही है, और समय–समय पर उसकी 'शव परीक्षा' भी होती रही है। इतने पर भी भारत के आर्थिक जीवन में उसका जो महत्वपूर्ण स्थान बन गया है, वह प्रचलित नपे–तुले आर्थिक सिद्धांतों की मूलभूत धारणाओं को ही खुली चुनौती देता है।

महात्मा गाँधी की अर्थशास्त्र सम्बन्धी मान्यता पश्चिम के 'क्लासिकल' कहे जाने वाले अर्थशास्त्रियों से बिलकुल अलग थी। ''प्रो. मार्शल ने अर्थशास्त्र को जीवन के सामान्य व्यवहार में मानव जाति का अध्ययन माना है। कीन्स ने अर्थशास्त्र को उन साधारण कारणों की व्याख्या माना है, जिन पर मानव जाति का भौतिक कल्याण निर्भर हैं। गाँधी जी ने अर्थशास्त्र की इन दोनों धारणाओं को संकीर्ण माना है।''[1] उनकी आर्थिक विचारधारा का मूलाधार नैतिकता सम्बन्धी भावना है। वे अर्थशास्त्र व नैतिकता के मध्य कोई विभाजन रेखा नही खींचते थे। अर्थशास्त्र और नैतिकता के प्रगाढ़ सम्बन्धों का विवेचन करते हुए उन्होंने लिखा था, वह अर्थशास्त्र जो नैतिक मूल्यों की उपेक्षा और अवहेलना करता है, झूठा है।''[2] सच्चा अर्थशास्त्र नैतिक मापदण्डों के कम विरूद्ध नहीं होता, ठीक उसी प्रकार जैसे कि समस्त सच्चे नीतिशास्त्र का श्रेष्ठ अर्थशास्त्र होना भी आवश्यक है।

यद्यपि महात्मा गाँधी अपने लिए निर्धनता को ही श्रेयस्कर मानते थे, पर उनकी यह अहर्निश इच्छा रहती थी, कि जनसाधारण का दारिद्रय मिटे। वे इसके लिए कठिन परिश्रम भी करते थे। आज समाज में धन का जो विषम विभाजन है, महात्मा गाँधी उसे एक गहरी सामाजिक बुराई के रूप में देखते थे। उनके अनुसार ''किसी स्वस्थ समाज के अंदर चन्द आदमियों में धन का केन्द्रित हो जाना और लाखों का बेकार होना एक महान सामाजिक अपराध या रोग है

जिसका इलाज अवश्य होना चाहिए।''[3] एक तरफ तो जिन मुट्ठी भर धनाढ्यों के हाथ में राष्ट्र की सम्पत्ति का अधिकांश भाग एकत्रित हो गया है, वे नीचे को उतरें और करोड़ों नंगे–भूखे हैं, उनकी भूमिका ऊँची उठे।

भारत जैसे महादेश के लिए जिसकी अधिकांश जनसंख्या गाँवों में बसती है, गाँवों को उपेक्षा की दृष्टि से देखना आत्मघात के समान ही है। प्राचीनकाल में भारतीय गाँव जीवन की प्रारम्भिक आवश्यकताओं में स्वाश्रयी होते थे। पंचायती प्रथा के द्वारा अपना शासन स्वयं करते थे और देश के आर्थिक व सांस्कृतिक जीवन के मेरूदण्ड बने हुए थे। भारत के गाँव अशिक्षा, अन्धपरंपरा और संकीर्ण दृष्टिकोण जैसी असंख्य व्याधियों से पीड़ित हैं। गाँधी जी ने लोगों को बताया कि संवेदनामय हृदय लेकर गाँवों में जायें, वहाँ के निवासियों के सुख–दुःख में एकरस होकर घुलें–मिले, उनकी समस्याओं को सहानुभूति से समझें और उनके समाधान में प्रवृत्त हों।

भारत की आर्थिक अधोगति में कल कारखानों की मार का बहुत बड़ा हाथ रहा है। मैनचेस्टर की मार ने भारत को जो हानि पहुँचाई है, उसकी कोई हद नहीं। भारत के हस्तकला कौशल, जो प्रायः समाप्त हो गये, यह मैनचेस्टर की ही कृपा है। गाँधी जी के अनुसार ''भारत में मिलें खड़ी करने से यह अधिक अच्छा होगा कि हम मैनचेस्टर को पैसा दें और उसका रद्दी माल इस्तेमाल करें क्योंकि ''उसका कपड़ा काम में लाने से तो हमारा केवल पैसा ही जायेगा' जबकि हिन्दुस्तान में मैनचेस्टर बनाने से हमारा पैसा तो हिन्दुस्तान में रहेगा पर वह हमारा खून लेगा क्योंकि वह हमारे चरित्र का नाश करेगा''।[4]

गाँधी जी की आर्थिक विचारधारा में कुटीर उद्योगों के जीर्णोद्धार को बहुत महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है उनके अनुसार ''अहिंसा और केन्द्रित उद्योगों का एक साथ निर्वाह नहीं हो सकता। विशाल स्तर पर उत्पादन प्रकृति और मनुष्य दोनों का शोषण है। फलतः गाँधी जी भारत के उद्योगीकरण के विरोधी थे। इस सम्बन्ध में उन्होंने स्पष्ट लिखा था, जब भारत का उद्योगीकरण होगा तब वह दूसरे राष्ट्रों के लिए एक अभिशाप और संसार के लिए खतरा बन जाएगा।''[5]

महात्मा गाँधी के आर्थिक विचार उनके आध्यात्मिक, नैतिक मनोवैज्ञानिक और राजनीतिक, विचारों की भांति उनके गहन धार्मिक विश्वासों से प्रेरित है। गाँधी जी आज की प्रतिस्पर्धा प्रधान और उपभोग–केन्द्रित भौतिक सभ्यता के विरोधी है तथा ग्रामों, पारस्परिक सहयोग और कुटीर उद्योगो के आधार पर पनपने वाली अहिंसा तथा सत्यमीय सभ्यता के पुरोधा हैं।

आर्थिक विचारों को श्रृंखला में गाँधीवादी विचारधारा पर ध्यान देने के पश्चात पं. दीनदयाल उपाध्याय जी की आर्थिक विचाराधाराओं पर ध्यान देना भी आवश्यक है। काम पुरूषार्थ की प्राप्ति के लिए आवश्यक विविध साधन जुटाना अर्थ पुरूषार्थ है। शरीर के केवल सुख के लिए ही नहीं, अपितु उसकी धारणा के लिए अन्य वस्तुओं की आवश्यकता होती है और इनकी प्राप्ति अर्थ पर निर्भर रहती है। इसका अर्थ यह हुआ कि अपरिहार्य भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए तो अर्थ की साधना जीवन में आवश्यक हो जाती है।

अर्थ के दो महत्वपूर्ण भाग है –मुख्य अर्थ गौण अर्थ/ जो वस्तु जीवन का आधार होती है अथवा जीवनावश्यक वस्तु का और निर्माण करती है उसे मुख्य अर्थ या धन कहा गया है। उदाहरणार्थ भूमि, पशुधन, वस्त्र इत्यादि। इन जीवनाश्यक वस्तुओं का लेनदेन किसी अन्य वस्तु के माध्यम से होता हो तो उन विनिमय के साधन को गौण अर्थ या द्रव्य कहा गया है। इस दृष्टि से धन गौण अर्थ है सुख के सन्दर्भ में आजीविका का विचार करते समय कुछ तथ्यों को ध्यान में रखना आवश्यक है। आजीविका का व्यवसाय यथासंभव व्यक्ति की रूचि का एवं सरलता से साध्य होने वाला होना चाहिए। पं. दीनदयाल जी कहते है –''कमाई करने के साधनों का स्वरूप ऐसा निश्चित करना चाहिए कि व्यक्ति के काम और प्रत्यक्ष जीवन के मध्य कोई दीवार खड़ी न हो।''[6]

फिर भी व्यवसाय मात्र आजीविका उपलब्ध कराने वाला साधन नहीं होता। मनुष्य अपने कार्यो के द्वारा स्वयं की अभिव्यक्ति भी करता है। वह उसके आत्मा एवं समूचे जीवन की अभिव्यक्ति होती है। यह भी आवश्यक है कि ऐसी आजीविका भी किसी की कृपा के कारण नही, अपितु कर्त्तव्याभिमुख अधिकार के रूप में प्राप्त हुई हो आर्थिक स्वतंत्रता से वंचित मनुष्य मन से दबा हुआ बन जाता है और इस प्रकार मन से दबे हुए मनुष्य की बुद्धि में विवशता छा जाती है।

अर्थ का अभाव व्यक्तिधर्म और समष्टि धर्म दोनों के लिए हानिकारक होता है। सदैव अर्थ की किल्लत में रहने वाला मनुष्य न तो अपने तन–मन और बुद्धि की समुचित धारणा कर पायेगा, न ही समष्टि के घटक के

नाते अपने कर्त्तव्य को ठीक से निभा सकेगा। ऐसा व्यक्ति न केवल जीवन धर्म का यथोचित पालन नही कर सकता, अपितु अधर्म करने के लिए प्रवृत्त हो जाता है। शास्त्रों में भी कहा गया है। ''बुभुक्षित किं न करोति पापम्।''[7] मूलतः पापशीरू प्रकृति के लोग भी घूसखोरी, चोरी, डाकाजानी, जुआ जैसे अपराधों की ओर मुड़ते पाये जाते है या अच्छे संस्कारों वाले परिवार में पली बहिनें भी अनीति के मार्ग पर चलने लगती है। इसके अन्य कारण भी हो सकते है, किन्तु एक प्रमुख कारण अर्थ का अभाव भी होता ही है।

तथापि यह नहीं कि केवल अर्थ का अभाव ही धर्म के लिए हानिकारक होता है। 'अर्थ का प्रभाव' भी धर्म के लिए उतना ही हानिकारक होता है। सम्पत्ति के प्रति अत्यधिक आसक्ति होना, अर्थ साध्य नहीं, एक साधन ही है। इसका विस्मरण होना और अधिकतम धनार्जन ही जीवन का लक्ष्य बन जाना, अर्थ के प्रभाव के लक्षण है। कोरी आसक्ति के कारण नहीं, अपितु अर्थ के द्वारा प्राप्त हो सकने वाले भौतिक सुखों के लोभ के कारण ही रहता है। प्रारंभ में मनुष्य जीवन की नितांत आवश्यकता पूरी करने के लिए, और बाद में न्यूनतम सुख भोगने के साधन प्राप्त करने के लिए अधिक धन अर्जित करने में जुट जाता है। अर्थ के इस प्रभाव के विषय में दीनदयाल जी कहते है – ''सम्पत्ति और उसके द्वारा प्राप्त होने वाले भोगविलासों में आसक्ति पैदा हो जाए, तब कहना चाहिए कि सम्पत्ति का प्रभाव उत्पन्न हो गया है। ऐसा व्यक्ति जिस पर केवल पैसे की धुन सवार हो गयी हो, देश धर्म और जीवन के सुख आदि सब बातों को भुला बैठता है। उसी प्रकार विषयासक्त मनुष्य पौरूषहीन होकर अपने एवं दूसरों के विनाश का कारण बन जाता है। पौरूषहीनता के कारण अर्थोत्पादन की उसकी क्षमता भी उत्तरोत्तर कम होती जाती है।''[8]

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *महात्मा गाँधी : व्यक्ति और विचार, पृ. सं. 168*
2. *वही, पृ. सं. 168*
3. *वही, पृ. सं. 169*
4. *वही, पृ. सं. 169–170*
5. *वही, पृ. सं. 171*
6. *राष्ट्र चिंतन पृ. सं. 89*
7. *पं. दीनदयाल उपाध्याय : विचार–दर्शन, पृ. सं. 42*
8. *वही, पृ. सं. 44*

भारतीय लोकतंत्रः एक नई दिशा में गमन

चन्द्रभान सिंह
सहायक आचार्य, कालपी कॉलेज, कालपी, जालौन (उत्तरप्रदेश)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

अमेरिका में 6 जनवरी 2021 को अमेरिकी संसद द्वारा नए राष्ट्रपति जो बाइडन के निर्वाचन पर अंतिम औपचारिक मुहर लगाने की प्रक्रिया के दौरान एवं 20 जनवरी 2021 को सत्ता परिवर्तन (राष्ट्रपति द्वारा शपथ ग्रहण) के दौरान घटी घटनाओं ने यह दिखा दिया कि अगर दुनिया में लोकतंत्र का सबसे सशक्त एवं जीवन्त प्रमाण यदि कोई देश है तो वह भारत ही है। स्वतंत्रता के समय तमाम लोगों ने संदेह व्यक्त किया था कि इतने गरीब और अशिक्षित देश में लोकतंत्र का टिके रहना असंभव होगा। इसके उलट सत्य यही है कि भारत आज भी एकजुट है। भारतीयों ने दिखा दिया कि राजनीतिक परिपक्वता का साक्षरता से कोई संबंध नहीं है। भारतीय नागरिक वर्ष 1952 में हुए पहले आम चुनाव से ही अपनी इच्छा और अपने हितों की समझ के हिसाब से राजनीतिक बुद्धिमत्ता का प्रदर्शन करते आए हैं। न केवल उन्होंने, बल्कि राजनीतिक वर्ग ने भी चुनावी नतीजों को हमेशा पूरी गरिमा के साथ स्वीकार किया। यही कारण है कि भारत में ऐसा कोई वाकया कभी नहीं दिखा, जैसा विगत 6 जनवरी को अमेरिकी संसद में देखने को मिला। यह दर्शाता है कि न केवल भारतीय लोकतंत्र सशक्त है बल्कि वह विभिन्न सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, तकनीकी आदि से जुड़ी समस्याओं से बखूबी पार पाते हुए एक स्वर्णिम भविष्य की ओर गमन करता हुआ दिख रहा है।

संकेताक्षर : *संसदीय लोकतंत्र, सहभागी लोकतंत्र, सहकारी संघवाद, संपन्न संघवाद, पाचवां स्तम्भ।*

अमेरिका के भूतपूर्व राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन ने कहा था ''प्रजातंत्र जनता के लिए, जनता द्वारा और जनता की सरकार है।''[1] प्रजातंत्र केवल राजनीतिक–सामाजिक प्रणाली ही नहीं है, बल्कि शासन और जीवन की एक लोकजयी अवधारणा भी है। प्रजातंत्रात्मक व्यवस्था व्यक्तिवाद से समुदाय की ओर अग्रसर होती है, इसलिए प्रजातंत्र में व्यक्ति का महत्व सर्वोपरि है। प्रजातंत्रात्मक व्यवस्था एकमात्र शासन चलाने की व्यवस्था ही नहीं है, वह तो एक विकासशील दर्शन है और जीने की एक गतिशील पद्धति भी। जैसा कि मैक्सी ने लिखा है– ''इक्कीसवीं सदी में लोकतंत्र से तात्पर्य एक राजनीतिक नियम, शासन की विधि व समाज के ढांचे से नहीं है, वरन यह जीवन के उस मार्ग की खोज है जिसमें मनुष्यों की स्वतंत्र और ऐच्छिक बुद्धि के आधार पर उनमें अनुरूपता और एकीकरण लाया जा सके।''[2] इस प्रकार, संक्षेप में लोकतंत्र एक विशेष प्रकार का शासन है; एक सामाजिक व्यवस्था है; एक विशेष प्रकार का आर्थिक तंत्र है; एक जीवन पद्धति या जीने का ढंग है; एक विशेष प्रकार की मनोवृति है तथा एक नैतिक अथवा आध्यात्मिक आदर्श है।

मानव समाज ने अपने राजनीतिक जीवन में जिन सबसे संभावनाशील और समकालीन विचार पद्धतियों एवं प्रक्रियाओं को जन्म दिया उनमें 'लोकतंत्र' (Democracy) सबसे अधिक प्रासंगिक और दीर्घकालिक है। विभिन्न समाजों में 'लोकतंत्र' अपने अलग–अलग नामों से इतिहास के प्रत्येक काल में मौजूद रहा। प्राचीन यूरोपीय समाज एवं छठीं शताब्दी ईसा पूर्व भारत में लोकतंत्र के विविध रूप विद्यमान थे। आधुनिकता के विकास के साथ जब यूरोप में राजनीतिक व्यवस्थाओं में परिवर्तन होना शुरू हुआ था तब वहीं पर उदारवादी लोकतंत्र का जन्म हुआ था। ब्रिटेन एवं फ्रांस की क्रांतियों के बाद उदारवादी लोकतंत्र कुछ हद तक स्थापित हुआ। हालांकि फ्रांस में जल्द ही तानाशाही व्याप्त हो गई। फिर भी उदारवादी लोकतंत्र को पुष्ट करने में पश्चिमी देशों का विशेष हाथ रहा है।

भारत में तत्कालीन परिस्थितियों के दृष्टिगत संघात्मक एवं संसदात्मक शासन व्यवस्था (Federal & Parliamentary type of Government) को अपनाया गया है। भारत में संघात्मक शासन प्रणाली को अपनाते हुए भारतीय संविधान में शक्तियों का विभाजन दो स्तरों पर किया गया है– संघ सरकार और राज्य सरकार। दूसरे शब्दों में, संघात्मक शासन एक ऐसा शासन है जिसमें पूरे देश का राजनीतिक संचालन मुख्य रूप से दो स्तरों पर किया जाता है– केंद्र स्तर पर और राज्य स्तर पर। इन दोनों के बीच शक्तियों के विभाजन को स्पष्ट रूप से भारतीय संविधान में परिभाषित किया गया है। फिर भी भारतीय संविधान में 'संघ' शब्द का प्रयोग कहीं नहीं किया गया है। इसके स्थान पर भारतीय संविधान के अनुच्छेद एक में 'भारत को राज्यों का समूह' (lndia as a Union of States)[3] कहा गया है।

वास्तव में अमेरिकी संघात्मक शासन के विपरीत भारतीय संघात्मक शासन किसी समझौते का परिणाम नहीं है, यहां भारतीय राज्यों को संघ से अलग होने का अधिकार भी नहीं है। भारतीय राजनीतिक प्रणाली की लगभग सात दशकों की गतिकी के दौरान संघवाद की कई प्रवृत्तियां देखने को मिलीं। प्रो. के.सी. व्हीयर ने भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त शासन व्यवस्था को अधिक से अधिक अर्द्धसंघीय कहा है।[4] इसी मत का समर्थन करते हुए जेनिंग्स ने लिखा है कि भारत एक ऐसा संघ है जिसमें केंद्रीयकरण की तीव्र प्रवृत्ति पाई जाती है।[4] जबकि डी.डी.बसु के शब्दों में 'भारत का संविधान न तो पूर्णरूप से एकात्मक है और न ही पूर्णरूप से संघात्मक, बल्कि दोनों का सम्मिश्रण है।'[5] वहीं जी.एन. जोशी कहते हैं कि, भारतीय संघ वास्तव में संघीय राज्य नहीं बल्कि एक अर्द्ध–संघात्मक राज्य है जिसमें बहुत से एकात्मक तत्व हैं।[5] चाहे यह आकार में संघीय लगता हो, तब भी समय, परिस्थितियों तथा आवश्यकतानुसार यह संघात्मक तथा एकात्मक दोनों ही है। इसके अतिरिक्त केंद्र व राज्य की कार्यप्रणाली के अनुसार भारत में अब तक संघवाद के जो प्रचलित रूप रहे हैं, वे क्रमशः केंद्रीकृत संघवाद, एकात्मक संघवाद, सौदेबाजी संघवाद, अधीनस्थ संघवाद व सहकारी संघवाद हैं। इसमें ग्रेनविल आस्टिन द्वारा भारतीय संघवाद को 'सहकारी संघवाद' (Co-operative Federalism)[6] की संज्ञा दी गई है। जिसका अर्थ है कि शासन में दोनों का अर्थात केंद्र व राज्यों का आपस में सहयोग करना।

भारत की राजनीति में केंद्र व राज्यों के मध्य टकराव का लंबा इतिहास रहा है। ऐसे अनगिनत अवसर देखे जा सकते हैं जहां केंद्रीय सरकार ने राज्य सरकार की स्वायत्तता को बाधित या समाप्त करने का प्रयास किया है। लेकिन वर्तमान भूमंडलीकरण के दौर में खासकर पिछले बीस वर्षों में भारतीय शासन प्रणाली की प्रवृत्ति सहकारी संघवाद की तरफ उन्मुख हुई है। इसके पीछे मुख्य कारण यह है कि वैश्विक प्रतिस्पर्धा के इस युग में जब सभी देश विकासशील से विकसित होने की राह पर हैं तो भारत जैसे संघ के लिए उसके राज्यों का महत्व बढ़ गया है, क्योंकि विकास के कार्य तो राज्यों की परिसीमा के भीतर होने तथा दूसरे राज्यों को भी अनुदान व वित्तीय सहायता के लिए केंद्र पर निर्भर होना पड़ता है। इसलिए 'केंद्र के लिए राज्यों का महत्व बढ़ना' तथा 'राज्यों के लिए केंद्र का महत्व बढ़ना' जैसी प्रवृत्ति के माध्यम से 'सहकारी संघवाद' की अवधारणा को बल मिल रहा है।

दूसरी ओर 'संसदात्मक शासन व्यवस्था' शासन की वह व्यवस्था है जिसके अंतर्गत व्यवस्थापिका और कार्यपालिका परस्पर संबंधित होती हैं और कार्यपालिका व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी होती है। गार्नर के शब्दों में ''संसदात्मक शासन वह शासन प्रणाली है जिसमें वास्तविक कार्यपालिका अर्थात मंत्रिमंडल व्यवस्थापिका अथवा उसके लोकप्रिय सदन के प्रति, तथा अंतिम रूप में निर्वाचक मंडल के प्रति, अपनी राजनीतिक नीतियों तथा कार्यों के लिए कानूनी रूप से उत्तरदायी होती है और राज्य का प्रधान नाममात्र का तथा अनुत्तरदायी होता है।''[7] इस शासन व्यवस्था के अंतर्गत कार्यपालिका शक्ति किसी एक व्यक्ति में निहित न होकर मंत्रिमंडल या कैबिनेट नामक एक समिति में निहित होती है, इसलिए इसे 'मंत्रिमण्डलात्मक शासन' कहते हैं। इसके अतिरिक्त इसमें कार्यपालिका व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी होने के कारण इसे 'उत्तरदायी शासन' के नाम से भी पुकारा जाता है।

संसदीय लोकतंत्र (Parliamentary Form of Democracy) को एक श्रेष्ठ लोकतांत्रिक प्रणाली माना गया है, क्योंकि इसमें पारदर्शिता एवं सुशासन की गुंजाइश ज्यादा रहती है। इसमें एक जीवंत विपक्ष होता है जो कि सत्ता को प्रतिसंतुलित करने का काम करता है। संभवतः संसदीय लोकतंत्र की श्रेष्ठता एवं इसके अधिक उत्तरदायी स्वरूप को ध्यान में रखकर ही हमारे संविधान निर्माताओं ने संसदीय लोकतांत्रिक प्रणाली को उपयुक्त समझा और इसे अंगीकार किया। संसदीय

लोकतंत्र में जहां संसदीय प्रक्रियाओं को फलने–फूलने का पर्याप्त अवसर मिलता है वहीं इस व्यवस्था में नियत अवधियों के उपरांत चुनाव होते हैं, जिनमें विभिन्न राजनीतिक दल अपने उम्मीदवार खड़ा करते हैं। मतदाताओं को इस बात की स्वतंत्रता होती है कि वे जिस उम्मीदवार को चाहें अपना मत प्रदान करें। इसे संसदीय लोकतंत्र की उत्कृष्टता ही कहेंगे कि इसमें देश की नीतियों, मुद्दों आदि पर खुली बहस होती है और सार्थक निर्णय लिए जाते हैं तथा महत्वपूर्ण कानून बनाए जाते हैं। देश को उस संसद में बैठकर चलाया जाता है, जहां जनता द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि पहुंचते हैं। सत्ता का इससे अच्छा स्वरूप भला और क्या हो सकता है।

यकीनन संविधान निर्माताओं ने जब भारत में संसदीय लोकतंत्र की परिकल्पना की होगी, तब उन्होंने एक खुशहाल भारत का सपना देखा होगा जो कि साकार न हो सका। जिस संसदीय लोकतंत्र की परिकल्पना एक खुशहाल व प्रगतिशील भारत के लिए की गई थी, वह आज न सिर्फ अनेक विषम परिस्थितियों से गुजर रहा है, बल्कि तमाम तरह के दबावों के कारण चरमरा उठा है। कहना असंगत न होगा कि अनेकानेक गति–अवरोधकों के कारण संसदीय लोकतंत्र प्रभावहीन व क्षीण पड़ता दिखाई दे रहा है। उसकी गति और लय सुप्त पड़ गई है। स्थितियां ऐसी बन पड़ी हैं कि कभी–कभी तो ऐसा लगता है कि हम एक 'छद्म' (Fake) संसदीय लोकतंत्र में जी रहे हैं।

जिस उत्साह के साथ हमने संसदीय लोकतंत्र को अंगीकार किया था, वह अब कमजोर पड़ने लगा है, क्योंकि मौजूदा स्थितियां उत्साहवर्धक नहीं लगतीं। अब तो यह महसूस होने लगा है कि क्या लोकतंत्र की यह प्रणाली हमारी जरूरतों, आकांक्षाओं एवं पृष्ठभूमि के अनुरूप है भी या नहीं ? मौजूदा संसदीय लोकतंत्र में जहां मूल्यों का भारी ह्रास देखने को मिल रहा है, वहीं चारित्रिक मानक, मान्यताएं व आदर्श गूलर के फूल बन गए हैं। हमारे यहां विद्यमान संसदीय लोकतंत्र के बरक्स अनेक ऐसी विद्रूपताएँ उभर कर सामने आई हैं जिन्होंने इस व्यवस्था को प्रश्नगत कर दिया है। इन विद्रूपताओं के रूप में क्षेत्रवाद, प्रादेशिक संकीर्णता, उप–राष्ट्रीयता, अलगाववाद, सांप्रदायिकता, जातिवाद, अपराधीकरण (राजनीति और जनजीवन दोनों का), भ्रष्टाचार, हिंसा, आतंकवाद, चुनावों में बाहुबल व धनबल का प्रयोग, सांसदों द्वारा संसद में प्रश्न पूछने के लिए रिश्वत लेना तथा पद के दुरुपयोग, अस्थिर सरकारें, जनप्रतिनिधियों का अपने उत्तरदायित्वों से विमुख होना आदि ने जहां संसदीय लोकतंत्र की मर्यादा का क्षरण किया है, वहीं गरीबी, भ्रष्टाचार, अशिक्षा, बेरोजगारी, कुपोषण, भुखमरी जैसी समस्याओं से संसदीय लोकतंत्र के सत्तर वर्षों से भी अधिक के सफर में हम उबर नहीं पाए। इन वजहों से अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी हमारी छवि धूमिल हुई है। यही वे अवयव हैं जिन्होंने गति–अवरोधकों की भूमिका निभाकर संसदीय लोकतंत्र को इस हद तक प्रभावहीन बना दिया है कि स्थिति 'तंत्र की विफलता' (System Failure) जैसी देखने को मिल रही है।

कैसा विरोधाभास है, जिन खूबियों को ध्यान में रखकर हमने संसदीय लोकतंत्र को अंगीकार किया, हम खुद उन पर खरे नहीं उतरे। संसदीय लोकतंत्र की प्रमुख विशेषता होती है– जनता के प्रति जवाबदेही और उत्तरदायित्व। ये दोनों ही बातें आज दुःसाध्य हैं। जनप्रतिनिधि न तो अपने उत्तरदायित्वों का निर्वहन ही पारदर्शिता से कर पा रहे हैं और न ही जवाबदेही के स्तर पर संतोषजनक भूमिका निभा पा रहे हैं। स्थिति अत्यंत त्रासद होती जा रही है। सत्ता में महत्वपूर्ण पदों पर बैठे हुए मंत्रियों के दायित्वों के सिद्धांत में जनता के प्रति दायित्व प्रमुख होते हैं, किंतु मौजूदा परिदृश्य को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि लोकतंत्र की निष्ठाएं बदल गई हैं। जनता के प्रति दायित्व हाशिए पर चला गया है। यही कारण है कि 'जन' से 'तंत्र' विलग हो गया है। 'तंत्र' अपने हित साधने में लगा है और 'जन' राम–भरोसे है।

जिस उत्तरदायित्व की अवधारणा को ध्यान में रखकर देश में संसदीय लोकतंत्र की स्थापना की गई, इससे बड़ी विडंबना और त्रासदी क्या होगी कि उसकी खिल्ली संसद में ही उड़ाई जाती है। संसद चलती कम है, वहां हंगामे ज्यादा होते हैं। संसदीय लोकतंत्र का सबसे बड़ा गतिरोध तो संसद में ही दिखाई देता है। संसद देश की सर्वोच्च संस्था है, जहां से कार्यपालिका पर नियंत्रण किया जाता है। संसद मंत्रिपरिषद की चूक और वचनबद्धता की जवाबदेही तय करते हुए उस पर अपने नियंत्रण के अधिकार का प्रयोग करती है। मंत्रिपरिषद तभी तक काम कर सकती है, जब तक उसे लोक सभा का विश्वास प्राप्त है। इस तरह एक जवाबदेह शासन को सुनिश्चित करना संसद की सर्वोच्च प्राथमिकता होती है। कानून बनाना भी संसद के प्रमुख कार्यों में से एक है। हमारी संसद 'संघ सूची' और 'समवर्ती सूची' में सम्मिलित विषयों पर कानून बनाती है। संसद ही

वह जगह है जहां से वित्त का नियंत्रण होता है तथा सभी महत्वपूर्ण प्रशासनिक नीतियों पर चर्चा होती है। भारतीय संविधान के अंतर्गत संसद ही वह एकमात्र निकाय है जो संविधान में संशोधन के लिए कोई प्रस्ताव पेश कर सकता है। संसद में बैठने वाले सांसद जहां राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के चुनाव में भाग लेते हैं, वहीं संसद अपनी समितियों के विभिन्न सदस्यों, पीठासीन पदाधिकारियों और उप–पीठासीन अधिकारियों को भी चुनती है। संसद ही वह एकमात्र संस्था है जिसे राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, सर्वोच्च न्यायालय व उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों, सीएजी तथा संघ एवं राज्य लोक सेवा आयोगों के अध्यक्षों पर महाभियोग चलाने का अधिकार प्राप्त होता है। जिस संसद के कंधे पर इतने महत्वपूर्ण दायित्व टिके हों, वह चले ही नहीं, इससे ज्यादा दुर्भाग्यपूर्ण और क्या होगा? ऐसे में संसदीय लोकतंत्र की सर्वोच्च विशिष्टता 'उत्तरदायित्व' को बरकरार रख पाना मुश्किल हो गया है। जवाबदेही रही ही नहीं, वरना इतनी महत्वपूर्ण संस्था के नुमाइंदे संसद के गति–अवरोधकों का बायस न बनते।

भारत में विद्यमान संसदीय लोकतंत्र को लेकर बेशक स्थितियां बेहद निराशाजनक हैं, किंतु ऐसा भी नहीं है कि इन स्थितियों में सुधार लाकर संसदीय लोकतंत्र की गरिमा को वापस न लाया जा सके। यह थोड़ा मुश्किल काम अवश्य है, किंतु असंभव नहीं है। उचित प्रयासों की आवश्यकता अनेक स्तरों पर है– सबसे पहली जरूरत यह है कि लोकतंत्र के 'पांचवे स्तंभ' के रूप में जाना जाने वाला जनमत जनप्रतिनिधियों पर जवाबदेही और उत्तरदायित्वों के निर्वहन के लिए दबाव बनाए। लोकतंत्र में जनमत ही सर्वशक्तिशाली होता है और इस दिशा में वह प्रभावी भूमिका निभा सकता है। इसके लिए जनमत को खुद भी जागना होगा। जैसा कि हम जानते हैं तमाम धनिकों व आपराधिक छवि के लोगों को हम ही तो चुनकर भेजते हैं। इनसे जनहित व गरीब की लड़ाई लड़ने की अपेक्षा नहीं की जा सकती और न ही ये राजनीति के अपराधीकरण को ही दूर कर सकते हैं, क्योंकि ये खुद अपराधों में आकंठ डूबे हैं। संसदीय लोकतंत्र के उच्च प्रतिमानों को स्थापित किए जाने की अपेक्षा भी इनसे नहीं की जा सकती। ऐसे में कुसूरवार हम भी हैं, किंतु हमारे पास विकल्प नहीं है। प्रायः सभी राजनीतिक दलों द्वारा ऐसी ही छवि के प्रत्याशियों को चुनाव में उतारा जाता है और इन्हीं के बीच से हमें अपना प्रतिनिधि चुनना पड़ता है। इस स्थिति से बचाव के लिए यदि 'राइट टू रिजेक्ट' एवं 'राइट टू रिकॉल' जैसे कानून केंद्रीय स्तर पर लागू हों, तो स्थिति बहुत कुछ संभल सकेगी, साथ ही संसदीय लोकतंत्र की श्रीवृद्धि भी इस प्रकार होगी। हमारी न्यायपालिका ने ईवीएम में 'नोटा बटन' के प्रावधान का निर्णय देकर 'राइट टू रिजेक्ट' (Right to Reject) का रास्ता साफ भी कर दिया है।

यह भी जरूरी है कि देश में स्वस्थ जनादेश सामने आए। इसके लिए निर्वाचन पद्धति व प्रक्रिया में और अधिक सुधारों की जरूरत है। हमें ऐसे ठोस उपाय सुनिश्चित करने होंगे जिनसे चुनाव में जातिवाद, सांप्रदायिकता, धनबल, बाहुबल आदि का तनिक भी लाभ राजनीतिज्ञ न उठा सकें। दल–बदल आदि पर प्रभावी अंकुश लगे। स्वस्थ जनादेश के लिए यह भी जरूरी है कि विजय पाने वाले उसी प्रत्याशी को जनप्रतिनिधि होने की मान्यता दी जाए जिसे 50% या उससे अधिक मत मिले हों, ताकि यह साबित हो कि वास्तव में वह जनता का प्रतिनिधि है। स्वस्थ जनादेश के लिए हमें मतदान के प्रतिशत को भी बढ़ाना होगा। स्वस्थ प्रजातंत्र की स्थापना के लिए यह आवश्यक है कि अपराधियों एवं भ्रष्टाचारियों को चुनाव लड़ने से रोका जाए। इस कड़ी में उच्चतम न्यायालय ने एक अच्छा प्रयास किया। 10 जुलाई, 2013 को उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया था कि किसी भी अदालत से दोषी करार दिए जाने और दो वर्ष या उससे ज्यादा की सजा मिलने के साथ ही सांसद और विधायक सदस्यता के अयोग्य हो जाएगें। वास्तव में राजनीतिक शुचिता और पारदर्शिता के लिए ऐसे प्रावधान की आवश्यकता कानूनन महसूस की जा रही थी, चूंकि सांसद और विधायक स्वयं अपने ही पैर पर कुल्हाड़ी मारने का कार्य नहीं कर सकते थे। अतः न्यायपालिका को ही आगे आना पड़ा और न्यायिक–सक्रियता का यह प्रयास अब देश की राजनीति, चुनाव सुधार और विधि शासन की प्रणाली में 'एक मील का पत्थर' साबित होता हुआ नजर आ रहा है।

संसदीय लोकतंत्र के गति–अवरोधकों को हम तभी निष्प्रभावी बना सकेंगे, जब संसद के लिए चुने गए लोग योग्य, ईमानदार, चरित्रवान और निष्ठावान हों। यही वह सूरत है जो संसदीय लोकतंत्र की खोई गरिमा को लौटा सकती है। इसके लिए एक सुदृढ़ राजनीतिक इच्छाशक्ति की जरूरत है। यहां पर उल्लेखनीय है कि 'शुचिता की राजनीति' ही संसदीय लोकतंत्र के गति–अवरोधकों को हटाकर खुशहाल भारत के उस स्वप्न को साकार कर सकती है, जो संसदीय लोकतंत्र

की परिकल्पना के साथ संविधान निर्माताओं ने देखा था।

यह सच है कि देश में संसदीय लोकतंत्र का क्षरण हुआ है, किंतु इसके बरक्स दूसरा सच यह भी है कि तमाम दबावों एवं विषम परिस्थितियों के बावजूद यह टूटा नहीं है। सूचना का अधिकार जैसा महत्वपूर्ण एवं जनोपयोगी कानून जनता को देने वाली संसद ही है। इसके अलावा भी संसद ने अनेक रचनात्मक पहलों से सकारात्मक दृष्टि का परिचय दिया है। कभी उसने हमें खाद्यान्न सुरक्षा प्रदान की, तो कभी काम के अधिकार का अधिनियम। यह संसदीय लोकतंत्र की एक बड़ी उपलब्धि है कि प्रायः सभी जटिल समस्याओं को व्यवस्था के भीतर सुलझा लिया जाता है। वस्तुतः कोई भी प्रणाली पूर्णतः दोषरहित नहीं होती, फिर संसदीय लोकतंत्र से हम यह अपेक्षा कैसे कर सकते हैं? आवश्यकता दोषों के निवारण और सुधार की है। हम संसदीय लोकतंत्र के गति–अवरोधकों को हटा कर इसकी खोई गरिमा को वापस ला सकते हैं। इसकी शुरुआत जनमत को करनी होगी और राजनेताओं को भी आगे आना होगा। इंतजार उस नई सुबह का है जिसमें संसदीय लोकतंत्र में गति भी होगी और लय भी।

अंततः हम यह कह सकते हैं कि भारत में 'सहभागी लोकतंत्र' (Participatory Democracy) एवं 'सहकारी संघवाद' (Co-operative Federalism) की प्रवृत्ति लगातार बढ़ रही है, जो कि एक 'जीवंत लोकतंत्र' के लिए बहुत आवश्यक है। सहभागी लोकतंत्र की प्रकृति वास्तव में जनपक्षधर व जनता के हितों को साथ लेकर चलने वाली है। और इसलिए यह वर्तमान की अनिवार्यता प्रतीत होती है। दूसरी ओर सहयोगी संघवाद की दिशा में हो रहे प्रयास राज्यों को सक्षम और प्रतिस्पर्धी बनाने के अनुकूल हैं। अब राज्यों को अपनी प्राथमिकता तय करने के लिए वित्तीय अधिकार प्राप्त हैं, जिससे वे विकासशील से विकसित होने की राह पर आगे बढ़ेंगे। देश के पहले प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने सत्ता को बुनियादी स्तर पर लागू होने की बात की थी जिससे भारतीय संघवाद की व्यावहारिक पृष्ठभूमि तैयार हुई थी, तब से लेकर भारतीय संघवाद विभिन्न चरणों से गुजरता हुआ वर्तमान में 'सहयोगी संघवाद' की स्थिति तक आ पहुंचा है। वर्तमान प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी जी का सपना एक कदम और आगे बढ़कर सहयोगी से ''संपन्न संघवाद'' तक पहुंचने का है। वर्तमान समय में केंद्र व राज्यों की सरकारों का एक ही पार्टी के द्वारा शासित होने की बढ़ती प्रवृत्ति के बाद यह कहा जा सकता है कि आने वाले समय में केंद्र व राज्यों के बीच सहयोग और मजबूत होगा।

इस तरह अपनी तमाम खामियों के बावजूद यह लोकतांत्रिक व्यवस्था के परिपक्वता का ही परिणाम है कि हमारे देश में सत्ता परिवर्तन बिना किसी खून–खराबे के हो जाता है। सत्ता पक्ष और विपक्ष में सहनशीलता की भावना पल्लवित हो रही है। अधिकांश राजनीतिक दल आर्थिक–विकास और सामाजिक–न्याय को अपने घोषणापत्र में शामिल कर रहे हैं। जनता अब जागरूक हो रही है। अपनी समस्याओं पर खुलकर चर्चा कर रही है। राष्ट्र निर्माण और विकास की बात करने के लिए राजनीतिक दल बेबस किए जा रहे हैं। भारतीय प्रजातांत्रिक व्यवस्था ने न सिर्फ एक शासन प्रणाली को जन्म दिया है बल्कि एक नए समाज और संस्कृति के निर्माण में भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। निःसंदेह भारत विश्व के सफल प्रजातांत्रिक देशों में से एक है और भविष्य में यह अपेक्षा की जा रही है कि भारत नित नए–नए आयामों को छूते हुए एक विकसित देश बनने की तरफ अग्रसर हो रहा है। इस प्रकार भारत एक स्वर्णिम भविष्य की ओर गमन करता हुआ दिख रहा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *जगदीश जौहरी तथा सीमा जौहरी, आधुनिक राजनीति विज्ञान के सिद्धांत (नई दिल्लीः स्टर्लिंग पब्लिशर्स प्रा.लि., 2002), 400.*
2. *डॉ. जैन एवं डॉ. फड़िया, तुलनात्मक शासन और राजनीति (आगराः साहित्य भवन पब्लिकेशंस, 1994), 261.*
3. *बेयर एक्ट, भारत का संविधान (इलाहाबादः सेंट्रल लॉ पब्लिकेशंस,1999),1.*
4. *एस. सईद, भारतीय राजनीतिक व्यवस्था(लखनऊ : सुलभ पब्लिकेशंस, 2003),71.*
5. *डॉ. जैन एवं डॉ. फड़िया, भारतीय शासन एवं राजनीति (आगराः साहित्य पब्लिकेशंस, 2002), 88.*
6. *सी. गेना, तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थाएं (नई दिल्लीः विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा.लि, 1997), 523.*
7. *डॉ. जैन एवं डॉ. फड़िया, तुलनात्मक शासन और राजनीति (आगराः साहित्य भवन पब्लिकेशंस, 1994), 241.*

शुष्क क्षेत्र में स्थायी फसल उत्पादन के लिए जल प्रबंधन – एक भौगोलिक अध्ययन

डॉ. गौरव कुमार जैन
सहायक आचार्य, जयनारायण विश्वविद्यालय, जोधपुर
नरसीराम
शोधार्थी, जयनारायण विश्वविद्यालय, जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

भारत भौगोलिक विविधताओं से युक्त एवं कृषि प्रधान देश है। इसके उत्तर पश्चिमी शुष्क क्षेत्र में मिट्टी एवं जल दोनों के संदर्भ में जैविक दबाव अधिक है और जल संसाधन की स्थिति विकट है, तथा यहाँ पर फसल विकास की अवधि लम्बी है। इस तरह की परिस्थितियों के तहत स्थायी फसल उत्पादन को समझना एक कठिन कार्य है इस शोध पत्र में प्रयास किया गया है कि स्थायी फसल प्राप्त करने के लिए जल संसाधनों का प्रबंधन कैसे किया जाये। भू–जल संचय के माध्यम से खेतों में सिंचाई हेतु जल प्रबंधन की आवश्कता है जिसमें खेती के लिए जल–संग्रहण प्रणाली के रूप में खड़ीन इस क्षेत्र में अद्धितीय है फसल पानी और पोषक तत्वों का प्रबंधन तथा मानसिक रणनीतियों के साथ–साथ स्थानीय जरूरतों के लिए वैकल्पिक भूमि उपयोग प्रणाली पर विस्तार से चर्चा की गई है। जल संसाधन में गिरावट लाने वाले कारकों के प्रभाव को कम करने के ठोस उपाय करने की चर्चा की गई है तथा नमी संरक्षण जैसे मुद्दो पर भविष्य के लिए अनुसंधान की जरूरतों, मृदा संरक्षण, पोषक तत्व प्रबंधन, फसल प्रणाली, जल प्रबंधन की विधियॉ और वैकल्पिक भूमि उपयोग जैसे सुझाव दिये गये है।

संकेताक्षर : *जल प्रबंधन, जल संरक्षण, मृदा नमी, फसल प्रणाली, पोषक तत्व प्रबंधन, वैकल्पिक भूमि उपयोग, जल संचयन।*

भारत में जलवायु की दृष्टि से असमानताऐं ही भौगोलिक विषमताऐं पैदा करती है इस कारण शुष्क क्षेत्रों में उच्च तापमान, उच्च वायुवेग, उच्च संभावित वाष्पीकरण और वाष्पशील वनस्पति जैसी विशेषताएं शुष्क क्षेत्र में अनुभव की जाती है जो लगातार सूखे की ओर इशारा करती है। जल स्त्रोतो की कमी भोजन और चारे की उपलब्धता को बहुत प्रभावित करता है और मानव व पशुओं के प्रवास का कारण बनता है। शुष्क भूमि पर जैविक दबाव ने मरूस्थलीकरण को बढ़ाया है जिसके परिणामस्वरूप फसल उत्पादकता प्रभावित है। और प्रति व्यक्ति भू–जोत आकार कम हो रहे हैं जिससे भोजन व चारा की मांग बढती जा रही है और शुष्क क्षेत्रों में अधिकांश कृषि वर्षा आधारित है इसीलिए स्थायी फसल उत्पादन के लिए सिंचाई स्त्रोतों का विकास किया जाना आवश्यक है।

तथा बहत्तर जल प्रबंधन से शुष्क क्षेत्रों में सिंचाई हेतु जल उपलब्ध हो सकता है। और स्थायी फसलो का उत्पादन करके भोजन व चारे की कमी को दूर किया जा सकता है।

अध्ययन क्षेत्र का परिचयः–भारत में शुष्क क्षेत्र 317090 वर्ग कि.मी. में फैला हुआ है जिनमें से 17300 वर्ग कि. मी. शीत शुवक क्षेत्र में वर्गीकृत किया गया है तथा शेष गर्म शुष्क क्षेत्र है जिनमे से पश्चिमी राजस्थान में भारत का 61%शुष्क क्षेत्र पड़ता है। और 20 प्रतिशत गुजरात 10 प्रतिशत पंजाब व हरियाणा तथा 9 प्रतिशत आन्ध्रप्रदेश व कर्नाटक में स्थित है। यहां वर्षा 150 मिमी. से 400 मिमी तक बदलती रहती है वार्षिक वर्षा की विविधता 37–50%तक होती है। राजथान के 61 प्रतिशत भाग पर शुष्क व अर्द्धशुष्क मरूस्थलीय क्षेत्र है जिनमें कुल 12 जिले शामिल है[1]

सारणी

राज्यवार शुष्क क्षेत्रों का ब्यौरा

क्र.स.	राज्य	शुष्क क्षेत्रों का क्षेत्रफल (मिलियन हेक्टेयर)	देश के कुल शुष्क क्षेत्रीय क्षेत्रफल में हिस्सा (प्रतिशत)
1	राजस्थान	19.6	62.00
2	गुजरात	6.0	20.00
3	पंजाब	1.5	5.00
4	हरियाणा	1.3	4.00
5	महाराष्ट्र	0.13	0.40
6	कर्नाटक	0.85	3.00
7	आन्ध्रप्रदेश	2.15	7.00
	कुल	31.73	100.00

स्त्रोतः कृषि चयनिका (अक्टूबर–दिसम्बर, 1996)

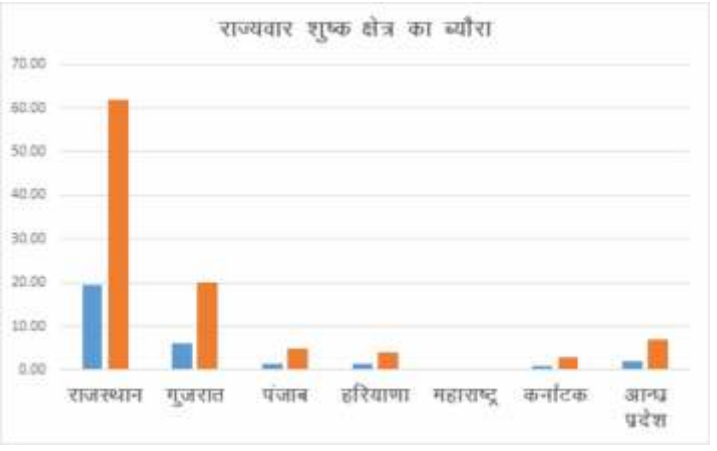

उद्देश्यः– शुष्क क्षेत्रों में स्थायी फसल उत्पादन हेतु जल प्रबंधन के द्वारा सिंचाई सुविधाओं का विस्तार करना है। विभिन्न सिंचाई पद्धतियों से चारा फसलों का उत्पादन बढ़ाना। भू–उपयोग प्रबंधन एवं जल संरक्षण द्वारा स्थायी फसली उत्पादन करके भोजन व चारा की कमी को दूर किया जा सकता है। इस शोध पत्र में प्रयास किया गया है कि परम्परागत एवं आधुनिक जल संरक्षण की विधियों द्वारा शुष्क क्षेत्रों में स्थायी कृषि उत्पादन का विकास किया जा सकता है।

विधि तंत्र – यह शोध कार्य मुख्य रूप से प्राथमिक एवं द्वितीयक सूचनाओं पर आधारित है और इन्हीं सूचनाओं के आंकड़ों से ही निष्कर्ष निकाले गए। इस शोध कार्य हेतु द्वितीयकसमंक केन्द्रीय शुष्क अनुसंधान संस्थान, कृषि विभाग, सिंचाई विभाग, जल अभियांत्रिक विभाग, भू–अभिलेख विभाग कार्यालय से प्रकाशित एवं अप्रकाशित सामग्री व स्त्रोतों से प्राप्त किये गये है। तथा दैनिक, साप्ताहिक, पक्षिक, मासिक पत्र–पत्रिकाओं से सूचनाऐं प्राप्त की गयी है।

वर्षा और पानी की उपलब्धताः– वर्षा जल की पुनः पूर्ति का प्रमुख स्त्रोत है लेकिन शुष्क क्षेत्र में यह न्यून और अनिश्चित है। वार्षिक वर्ष की विविधता या वर्षा परिवर्तिता 37 – 50 प्रतिशत तक होती है। अधिकांश वर्षा लगभग 78 से 96% जुलाई से सितम्बर माह के दौरान दक्षिण–पश्चिम मानसून से होती है। जबकि शेष सर्दियों में उ. पूर्व मानसून से प्राप्त होती है। क्षेत्र की वार्षिक वर्षा 150 मिमी से 400 मिमी तक होती है। प्रतिवर्ष शुष्क क्षेत्र लगभग 62.2623 मिलियन घन मीटर पानी प्राप्त करता है जिसमें से 89% बारिश के माध्यम से होता है। शुष्क क्षेत्र की कुल धरातलीय जल क्षमता 1361 जोन एमसीएम है इसमें भूमिगत जल का भण्डार 3,355 एमसीएम के साथ 4545 एमसीएम होने का अनुमान है। और 2957 एमसीएम का उपयोग सिंचाई के लिए वार्षिक पुनर्भरण में हो रहा है। सिचांई का क्षेत्र कुल शुष्क क्षेत्र का लगभग 10.8% है। लेकिन अति–शोषण के कारण भू–जल सामान्य लेवल से नीचे चला गया है।

गर्म शुष्क क्षेत्र राजस्थान में सिंचाई निम्न स्त्रोतों से होती है।

1. नहर –56.4%
2. ट्यूबवेल एवं कुऐं –40.7%
3. टैंक –2.9%

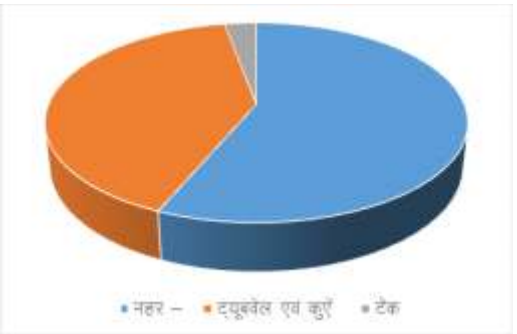

वर्षा जल प्रबंधन – शुष्क क्षेत्र में कृषि के लिए पानी सबसे अमूल्य संसाधन है यहां सतही जल संसाधनों की उपलब्धता बहुत सीमित है विकट जलवायु परिस्थितियों के कारण इस क्षेत्र में रेतीले भाग का विस्तार अधिक है। भूमिगत जल बहुत गहरा व सीमित है और ज्यादातर प्रकृति में लवणीय है। इसलिए सिंचाई के स्रोतों एवं फसलों की उचित किस्मों के विकास की आवश्यकता है। शुष्क क्षेत्र में अच्छी गुणवत्ता वाले जल का स्त्रोत वर्षा है इसलिए इसका उचित संरक्षण, वितरण और उपयोग स्थायी फसल उत्पादन लिए परम आवश्यक है। कुशल वर्षा जल प्रबंधन एक बीमा के रूप में कार्य करता है। कुशल प्रबंधन तकनीकी वर्षा की कमी के समय फसलो में पानी की आवश्यकता को पूरा करती है तथा मृदा में नमी और जल भंडारण को बढ़ता है। ऐसा ही महाराष्ट्र के अहमद नगर जिले में रालेगन सिद्धि एक छोटा सा गांव है यह पुरे देश में जल संभर विकास का एक अच्छा उदाहरण है[2]।

परम्परागत जल संरक्षण की विधियाँ

(1) **खड़ीन** – खड़ीन खेत के किनारे सिद्ध–पाल बांधकर वर्षा–जल को कृषि भूमि पर संग्रह करने तथा इस प्रकार संग्रहीत जल से कृषि भूमि में पर्याप्त नमी पैदाकर उसमें फसल का उत्पादन करने की एक परम्परागत तकनीकी है। पश्चिमी राजस्थान के जल विशेषज्ञ भी इस तकनीकी को जल–संग्रह की महत्वपूर्ण तकनीकी के रूप में देखते है। खड़ीन राजस्थान के जैसलमेर जिले में प्राचीन व मध्यकाल में पालीवाल ब्राह्मणों द्वारा जल संरक्षण तथा जल प्रबंधन हेतु अपनाई गई है इस तकनीकी को शुष्क क्षेत्रों में खेती और पानी के लिए सर्वाधिक उपयुक्त माना गया है। इस तकनीकी के तहत पहाड़ी भागो में वर्षा ऋतु में बहते हुए पानी को ढलवा भागों पर कच्ची अथवा पक्की दीवार बनाकर रोक दिया जाता है अतिरिक्त पानी को दीवार के एक तरफ निकाल दिया जाता है ताकि दूसरी खड़ीन भूमि को पानी मिल सके। इस तकनीकी से भूमिगत के जल के स्तर में वृद्धि होती है ओर मिट्टी में नमी भी बनी रहती है इसके फलस्वरूप प. राजस्थान के शुष्क क्षेत्र में स्थायी फसलो का उत्पादन को बढ़ावा मिलता है[3]।

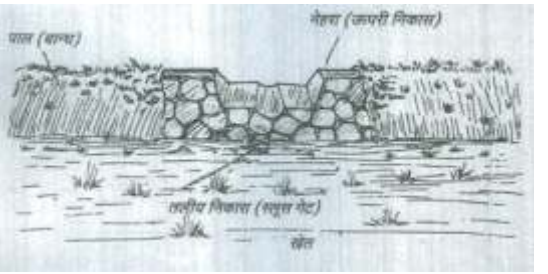

(2) **खेत तालाब–** इसका उपयोग से अपवाह जल का संग्रहण किया जाता है। तालाब खेत में जलग्रहण का जलाश्य है यह पानी के बने गहरे कुंड के समान होते है। इसके एक द्वार पर तटबंध का निर्माण किया जाता है जो अपवाह और वाष्पीकरण द्वारा पानी की हानि को कम करता है, वाष्पीकरण कम हो जाने पर मृदा में नमी की मात्रा फसलो में पानी की जरूरता को पुरा करती है। शुष्क क्षेत्र में उच्च अपवाह तीव्रता पायी जाती है जिसके कारण रेतीली मिट्टी में नमी बनाये रखने की क्षमता ओर बिगड़ती है। वर्षा जल संचयन एक चुनौती पूर्ण कार्य है। फिर भी मिट्टी की उर्वरता एवं वनस्पति संरक्षण करने तथा उपलब्ध कुल पानी की आपूर्ति को बढ़ाना लाभप्रद सिद्ध होगा जिससे कम वर्षा अवधि में फसलों का उत्पादन किया जा सकता है[4]।

आधुनिक जल संरक्षण की विधियाँ

1. अंतर-भूंखड जल संचयन प्रणाली

इन्टर रॉ प्रणाली के तहत लगभग 30-40 सेमी. चौडाई व 15 सेमी. गहराई वाले कुंड बनाये जाते है दो चोटियॉ (ऊपर वाला पृष्ठ) के बीच 60-90 सेमी. की दूरी रखी जाती है। चोटियॉ को ढलान क्षेत्र में समकोण स्थिति में रखी जाता है ताकि अपवाह को कम किया जा सके। इस पद्धति से एक ही समय में पानी केन्द्रित होता है और बाढ़ के पानी की बेहत्तर उपलब्धता का कारण बनती है। गहरी से मध्यम मिट्टी में इस प्रकार की बनावट की जा सकती है दक्षिण-पश्चिम से उत्तर-पश्चिम तक की प्रचंड हवा की दिशा में यह प्रणाली नमी की उपलब्धता बढ़ाने के लिए प्रभावी पायी गयी है। शुष्क क्षेत्र में अंतर-भूंखड जल संचयन प्रणाली फसलो वाले क्षेत्रों के दोनों किनारो पर की जाती है जिसका 2/3 क्षेत्र उपयोग फसल हेतु व 1/3 भाग कैचमेंट के रूप में होता है[5]।

मानसून काल में इसमें जल का भराव होता है संग्रहीत पानी का उपयोग पूरक सिंचाई के लिए किया जाता है। यह निम्न और अनियमित वर्षा में वर्षा आधारित फसलों के लिए जीवन रक्षक उपकरण या विधि है।

2. वैकल्पिक भूमि उपयोग प्रणाली

अनियमित व अनिश्चित वर्षा के कारण स्थिरता बनाये रखने के लिए पेड़ और घास अधिक विश्वसनीय है फसलो के साथ पेड न केवल स्थिरता दर्शाते है बल्कि मिट्टी की उर्वरता में सुधार व नमी को बनाये रखने में विशेष सिद्ध होते है। शुष्क क्षेत्रों में खेजड़ी बबूल रोहिड़ा पशुओं के पोषण के साथ-साथ हवा व पानी के कटाव को नियंत्रण करते है।

सुजलाम-सुफलाम जल अभियानः- गुजरात राज्य में प्राकृतिक जल स्त्रोतों को संरक्षण करने और बरसाती पानी के अधिकाधिक संचयन का लाभ नागरिकों और लाखों किसानों को उपलब्ध कराने के उद्देश्य से इस राज्यव्यापी अभियान की शुरूआत की गई है। इस अभियान के पिछले दो वर्षो में जल संग्रह क्षमता में 23,553 लाख घन फीट की बढ़ोतरी हुई है। जिनमें तालाबों को गहरा किया है जिससे भू-जल स्तर 5 से 7 फीट तक ऊँचा उठा है इस जल संचयन के परिणामस्वरूप किसानों की सिंचाई, नागरिकों के पेयजल, घरेलू उपयोग का पानी और पशुओं के लिए पानी की समस्या काफी हद तक कम हो गई है इन उपलब्धियों के परिणामस्वरूप ही गुजरात ने जल प्रबंधन के क्षेत्र में पूरे देश में अपना नाम सुनहरे अक्षरों में अंकित है[6]।

सिंचाई जल प्रबंधन- शुष्क क्षेत्र में सिंचित क्षेत्र बहुत कम है। (लगभग 10.8%) इंदिरा गांधी नगर परियोजना से कृषि उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। स्थानीय आबादी की सामाजिक-आर्थिक स्थितियों में बदलाव आया है जलभराव व खेतो में पानी अनियंत्रित उपयोग से मिट्टी क्षारीय व लवणीय होने लगी है। इसलिए तत्काल ध्यान देने की आवश्यकता है कि व्यापक या गहन सिंचाई का उपयोग की बजाये ड्रिप और स्प्रिंकलर सिंचाई प्रणाली अपनाना चाहिए। भू-जल का अत्यधिक दोहन और अकुशल सिंचाई से मृदा व फसल उत्पादन प्रभावित होता है[7]।

निष्कर्ष और सुझावः- अध्ययन स्पष्ट करता है कि भारत के शुष्क क्षेत्रों में स्थायी फसल उत्पादन के लिए जल प्रबंधन एक प्रभावी कदम है पिछले कई दशकों के दौरान प्रभावी जल संरक्षण की विधियां फसल उत्पादन व मृदा नमी संरक्षण में कारगर साबित हुई है वर्षा जल का प्रबंधन एक चुनौती भरा कार्य है। फिर भी विभिन्न तकनीकी से इसका उपयोग सिंचाई के साथ-साथ अन्य कार्यो में किया जा सकता है। वर्षा की अनिश्चितता व अनियमितता शुष्क क्षेत्रों में फसल उत्पादन को प्रभावित करती है। इस शोध अध्ययन से यह सिद्ध होता है कि शुष्क क्षेत्रों में प्रभावी जल प्रबंधन के द्वारा निरन्तर सिंचाई की जा सकती है। और फसलों का स्थायी उत्पादन किया जा सकता है फिर भी भविष्य में वर्षा जल का संग्रहण करके मृदा में नमी, वैकल्पिक भूमि उपयोग, फसल प्रणाली में सुधार व पोषक तत्वों का प्रबंधन से स्थायी उत्पादन में वृद्धि की जा सकती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *Faroda, A.S. 1998, Arid Zone research- An overview. In: Fifty years of Arid Zone Research in India, PP. 1-16. CAZRI Jodhpur.*
2. *सिंह, दशरथ और सिंह, धर्मेन्द्र यशोना खेती मासिक फरवरी–2019, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, कृषि अनुसंधान भवन, पूसा गेट नई दिल्ली.*
3. *Mamoria, Chaturbhuj and Singh komal Geography of India 2020 PP. 80-88 S.B.P.P Publication, Agra*
4. *Mishra, Anupam, Aaj Bhi khare Hain Talab. Published Prabhat Prakashan, New Delhi-2*
5. *Garg, B.K. Kathju, S- Vyas, S.P. and Lahiri, A.N. 1993. Effect of plant density and soil fertility under drought and good rain full situation. Annals of Arid Zone Vol. 32 , PP .15-20*
6. *E-Patrika India Water Portal Hindi*
7. *Dhir, R.P. 1977. Soil degradation due to over exploitative human efforts. Annals of Arid ZoneVOl 16,PP 321-330*

औपनिवेशिक काल में बीकानेर रियासत का सैन्य संगठन

डॉ. रजनी मीणा
सहायक आचार्य, राजकीय महाविद्यालय, राजगढ़ (अलवर)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

बीकानेर का सैन्य इतिहास गौरवशाली रहा है। बाबर के विरुद्ध खानवा के युद्ध में राणा सांगा के साथ राजपूताना की बीकानेर सेना भी लड़ी। ब्रिटिश सरकार एवं वायसराय लॉर्ड डफरिन की 'इम्पिरियल सर्विस ट्रूप्स' योजना के तहत बीकानेर सेना का तत्कालीन महाराजा गंगासिंह (1880–1943 ई.) के समय आधुनिकीकरण शुरू हुआ। हालांकि राज्य के 500 वर्षों के इतिहास में सेना के ऑर्डर और प्रशिक्षण में कोई बदलाव नही आया था। यह घुडसवार, ऊंटसवार, तोपखाना, पैदल सेना और अंगरक्षक सेना का समूह थी। प्रत्येक इकाई की अपनी निर्धारित वर्दी एवं कार्य थे। राज्य की नियमित सेना में 380 घुडसवार (अंगरक्षक भी शामिल), 500 इन्फैन्ट्री (बैंड भी शामिल), 60 तोपची और कुल 1440 आदमी थे। 1907 ई. में यह संख्या 1368 सैन्यबल थी। सेना का कुल व्यय 3,51,677 रूपये था। 94 तोपें थीं जिनमें से 33 कार्यशील थी। महाराजा गंगासिंह पारम्परिक राजपूत सैन्य कौशल (घुडसवारी, बंदूकबाजी) में निपुण थे। उन्होंने भारतीय सेना की देवली रेजीमेन्ट में लेफ्टिनेंट कर्नल जे.डी. बेल के नेतृत्व में आधुनिक सैन्य शिक्षा प्राप्त की। उन्होंने राज्य की सेना के आधुनिकीकरण पर बल दिया। इनके नेतृत्व में बीकानेर सेना देश–विदेश के अनेक सामरिक अभियानों पर गई। 1889 ई. बीकानेर इम्पिरियल सर्विस ट्रूप्स गंगा रिसाला (ऊंट सेना) का गठन किया, इसने प्रथम व द्वितीय विश्वयुद्धों में युद्ध के विभिन्न मोर्चों पर अपने अदम्य साहस और शौर्य का परिचय दिया तथा लगातार सफलताएं अर्जित की। इसके अलावा बीकानेर सादुल लाईट इन्फैन्ट्री ने भी इम्पिरियल सर्विस ट्रूप्स की सैन्य इकाई के रूप में बीकानेर राज्य की ओर से अनेक अभियानों में भाग लिया।

संकेताक्षर : *साम्राज्यवाद, औपनिवेशिक, विश्वयुद्ध, रियासत, इम्पिरियल सर्विस ट्रूप्स।*

राजपूताने के इतिहास में बीकानेर राज्य के राठौडों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। जोधपुर शासक राव जोधा के ज्येष्ठ पुत्र राव बीका (1465–1504 ई.) ने बीकानेर राज्य की स्थापना की। मुगलकाल में केन्द्रीय सत्ता के साथ बीकानेर शासकों के मैत्रीपूर्ण संबंध रहे। जिसके फलस्वरूप विभिन्न अवसरों पर महाराजा अनुपसिंह, महाराजा गजसिंह तथा महाराजा रत्नसिंह को मुगल बादशाहों की तरफ से 'माही मरातिब' का सर्वोच्च सम्मान मिला। मुगल शक्ति के अवसान और मराठा पिंडारियों के अभ्युदय के समय बीकानेर शासक सूरतसिंह ने शक्ति और नीति चातुर्य से बीकानेर राज्य को उनके आक्रमणों और प्रभावों से अछुता रखा।[1] 1818 ई. में बीकानेर और ईस्ट इंडिया कम्पनी के मध्य संधि स्थापित हो जाने से यहां के शासकों को ब्रिटिश साम्राज्यवाद के प्रसार में सैन्य सहयोग देने का अवसर मिला। महाराजा गंगासिंह (1887–1943 ई.) ने स्वयं व्यक्तिगत रूप से ब्रिटिश सैन्य अभियानों में अपनी सेना का प्रतिनिधित्व किया। इस कार्य में बीकानेर की गंगा रिसाला (ऊंट सेना) की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही। राज्य की सेना नियमित और अनियमित सैन्य इकाइयों में विभक्त थी। शासक अपनी सामन्ती सेना पर निर्भर था। ब्रिटिशकाल में संधि स्थापित होने से इसका प्रभाव सेना विभाग पर भी पडा।[2]

लार्ड डफरिन की इम्पीरियल सर्विस ट्रूप्स योजना के तहत बीकानेर में 1889 ई. में 'गंगा रिसाला' अस्तित्व में आई। इसकी स्थापना महाराजा गंगासिंह जी ने की महाराजा ने 500 सैनिकों की टुकडी साम्राज्य की सेवा में देने का प्रस्ताव ब्रिटिश सरकार के समक्ष रखा, जिसे स्वीकार किया गया। परिणामस्वरूप 'बीकानेर कैमल कोर' की स्थापना

की गई, जिसे 'गंगा रिसाला' के नाम से भी जाना जाता है। प्रारम्भ में इसकी सैन्य शक्ति 527 थी जो समय-समय पर बदलती रही। 1923 ई. में इण्डियन स्टेट फॉर्सस् योजना से इसका पुनर्गठन हुआ।[3] गंगा रिसाला के सैनिकों की वर्दी क्रीम और लाल रंग की थी।[4] सेना के लिए ऊंटो की आपूर्ति बीकानेर, भाद्रा, चुरू, हनुमानगढ, लूणकरणसर, नोहर, राजगढ (सादुलपुर), रतनगढ, रैणी, सरदारशहर, सूरतगढ, सुरपुरा तथा गोगामेडी मेला भाद्रपद माह (अगस्त-सितम्बर), कोलायत मेला कार्तिक मास (नवम्बर) आदि से होती थी।[5]

गंगा रिसाला बीकानेर रियासत की प्रमुख सैन्य इकाई थी। इसके अतिरिक्त बिजय बैटरी, कैमल बैटरी, डूंगर लांसर्स, सादुल लाईट इन्फैन्ट्री, मोटर मशीनगन सैक्शनस, स्टेट बैंड, फोर्ट आर्सेनल आदि अन्य प्रमुख सैन्य टुकडियां कार्यरत थी।[6]

1894-95 ई. में कविराज भैरोदान के पास राज्य सेना का नेतृत्व था।[7] 1894-95 तथा 1895-96 ई. में राज्य सेना बल निम्नानुसार था।[8]

वर्ष	तोपखाना (बंदूकची)	नियमित सेना			अनियमित सेना			कुल सेना
1895	83	घुडसवार सेना	पैदल सेना	कुल	घुडसवार सेना	पैदल सेना	कुल	
1896	56	331	340	671	–	32	32	786
		275	246	521	–	–	–	577

बीकानेर राज्य का सन 1894-95 ई. तथा 1895-96 ई. कुल सैन्य बल एवं राज्य व्यय निम्नानुसार था।[9]

वर्ष	इम्पीरियल सर्विस ट्रूप्स	राज्य सेना	कुल	व्यय (खर्चा)
1894-95	498	786	1284	2,38,292-2-9
1895-96	493	577	1070	2,60,346-8-3

गंगा रिसाला का सैन्य व्यय निम्नानुसार था।[10]

वर्ष	प्रस्तावित	वास्तविक व्यय
1894-95	1,43,825	1,36,143
1895-96	1,46,457	1,54,330

1 अप्रैल, 1897 ई. को राज्य सेना में बदलाव किया गया। हालांकि राज्य सेना हिज हाइनेस महाराजा ठाकुर भोपाल सिंह के सीधे नियंत्रण में थी।[11] सेना में सवारों की संख्या कम की गई। और उनका वेतन बढाया गया। सैनिकों का वेतन 17 रूपये से 21 रूपये हो गया। अंगरक्षकों का वेतन 19 रूपये से 22 रूपये हो गया।[12]

इन्हें पोशाक और काठी राज्य खर्च द्वारा दी जाती थी। 1897-98 ई. में इन पर राज्य व्यय 93,615 रूपये हुआ जबकि बजट आवंटन 90,776 रूपये था।[13]

शाही सेवा ऊंट दल का जिम्मा राय बहादुर ठाकुर दीपसिंह के पास था। इनके नेतृत्व में फरवरी 1897 ई. में मेरठ में राइफल मीटिंग में 4 पुरस्कार और 223 रूपये जीते जो सवारों के लिए फायदेमंद था। एक साल में (1896-97 ई.) इनकी संख्या 493 से 487 हो गई और गत वर्ष के 1,54,331 रूपये व्यय के स्थान पर इन पर 1,53,011 तक कम खर्च हुआ।[14]

1898-99 ई. में सामान्य ऊंट कोर को छोडकर राज्य सेना की संख्या और खर्च निम्नानुसार था।[15]

(व्यय राशि रूपये में)

		वर्ष/ संख्या बल		व्यय	
क्र. सं.	सैन्य इकाई	1897-98	1898-99	1897-98	1898-99
1.	घुडसवार सेना	228	228	62075-3-0	60733-1-9
2.	पैदल सेना	233	231	20433-1-6	18615-1-9
3.	बंदूकची	44	44	3599-3-3	3098-2-3

राज्य सेना अब भी ठाकुर भोपाल सिंह के नियंत्रण में थी परन्तु खराब स्वास्थ्य के कारण वे सेवामुक्त हो गए। मध्य भारत अश्व सेना के पेंशनयाफ्ता रिसालदार हरनम सिंह इससे जुडे हुए थे। शाही सेवा ऊंट दल की ताकत 498 से 497 रह गई। इम्पीरियल सर्विस ट्रूप्स के इंस्पेक्टर जनरल ने 19 नवम्बर 1898 ई. को और राजपूताना के ए.जी.जी. (एजेन्ट टू द गवर्नर जनरल) ने 17 दिसम्बर 1898 ई. को सेना का निरीक्षण किया और सेनानायक राव बहादुर ठाकुर दीपसिंह बहादुर के निर्देशन में दक्षता और अनुशासन से सैन्य कार्य जारी रखने के लिए उन्हें प्रोत्साहित किया।[16]

गंगा रिसाला शाही सेवा बंदूकबाजी में अग्रणी सेना थी और उसे डिप्टी असिस्टेंट जनरल और इम्पीरियल सर्विस ट्रूप्स इंस्पेक्टर जनरल से अपनी दक्षता और स्थिति के लिए दूसरी इम्पीरियल सर्विस ट्रूप्स की तुलना में प्रशंसा मिली। इसकी ब्रिटिश साम्राज्यवादी वैदेशिक अभियानों में सक्रिय भागीदारी रही। यह पैदल सेना के रूप में सितम्बर 1900 ई. में चीन के बॉक्सर विद्रोह (1900 ई.) के दमन के लिए तीन्तसिन गई। सेना में 400 रैंक और फाईल सैनिक थे। ब्रितानी झण्डे के अन्तर्गत विदेश भूमि पर लडने वाले महाराजा गंगासिंह प्रथम भारतीय नरेश थे। बडी तत्परता के साथ अपनी सेना के साथ उक्त युद्ध में भाग लेने के कारण इनकी बडी प्रशंसा हुई।[17] 1902-04 ई. के सोमालीलैण्ड युद्ध में गंगा रिसाला के 216 सैनिक तथा 250 ऊंट जनवरी 1903 ई. में युद्धभूमि में भेजे गए। अक्टूबर 1903 ई. में 50 सैनिक और 150 ऊंट ओर भेजे गए। 18 महीने सोमालीलैण्ड रहने के पश्चात् जुलाई 1904 ई. में सेना पुनः बीकानेर लौट आई।[18]

1904-05 ई. में कंवर पृथ्वीराज सिंह सेना विभाग के सचिव थे। राज्य सेना का सैन्यबल एवं व्यय निम्नानुसार था।[19]

(व्यय राशि रूपये में)

सैन्य इकाई	सख्यां	नई भर्ती	मरे	अवैध	सेवा मुक्त	वर्ष के अंत में	रेजीमेंट बटालियन बैटरी	बंदूके	योद्धा	व्यय/ वेतन, भत्ता आदि
1.घुड-सवार सेना	228	07	0 1	–	06	228	02	–	201	61966-4-6
2.पैदल सेना	246	71	0 1	08	14	294	01	–	259	25462-10-6
3.तोप- खाना	37	02	–	–	02	37	01	94	31	3268-14-0
4.गंगा रिसाला (ऊंट सेना)	461	40	0 1	–	31	475	01	–	384	138514-4-5
बैंड	39	03	–	–	02	40	–	–	35	9645-1-4
कुल	1011	129	03	08	55	1074	05	94	910	238857-2-9

(वेतन भत्ता मद रूपये में)

राज्य नियमित सैन्यबलः- 1904-05 ई.

	बीकानेर	घुडसवार सेना (अंगरक्षको सहित)	380
	बीकानेर	पैदल सेना	500
	बीकानेर	तोपखाना	38
	बीकानेर	गंगा रिसाला	500

राज्य की अनियमित सेना जिसमें सवार और सिपाही थे, जो राजस्व और अन्य विभागों में नागरिक कर्त्तव्यों में लगे थे। इन्हें कुशलता से काम करने के लिए पुनर्गठन की जरूरत थी।[20]

आगामी वर्षो में बीकानेर सेना का सैन्यबल और व्यय की मात्रा निम्नानुसार थी[21]

कुल सैन्यबल :

	इकाईयां	1905-06 ई.	1906-07 ई.	1907-08 ई.
	घुडसवार सेना	322	328	315
	अंगरक्षक दल	50	49	50
	पैदल सेना	459	434	435
	तोपखाना	54	58	56
	गंगा रिसाला	498	499	491

सेना पर कुल व्ययः

कुल व्यय	
1905-06 ई.	1906-07 ई.
365717-9 -5	351677-5-10

महाराजा गंगासिंह ने ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षार्थ 500 सैनिकों की पैदल टुकडी रिजर्व रखी थी जिसका 1910 ई. में पुनर्गठन कर 'सादुल लाईट इन्फैन्ट्री' नाम रखा गया। ऊंट सेना की द्वितीय इकाई में 500 सैनिक सवार रखे गए, जिनकी आवश्यकतानुसार सैन्य संख्या में वृद्धि की जा सकती थी।[22] प्रथम विश्वयुद्ध के निकट होने की स्थिति में महाराजा ने स्वयं, अपनी सेना तथा अपनी समस्त सम्पदा से ब्रितानी साम्राज्य की सेवा करने का प्रस्ताव ब्रिटिश सम्राट के समक्ष रखा, जिसे सहर्ष स्वीकार करते हुए तथा बीकानेर ऊँट सेना की सामरिक महत्ता को देखते हुए उसे को तैयार रहने को कहा गया। 28 से 30 अगस्त, 1914 ई. को सेना ने मेजर कंवर जीवराज सिंह के नेतृत्व में मिश्र के लिए प्रस्थान किया।[23]

प्रथम विश्वयुद्ध में 1914-15 में गंगा रिसाला की ऊंट संख्या निम्नानुसार थी।[24]

1914	1915	30 सितम्बर, 1914	30 सितम्बर, 1915
501	650	687	629

200 अतिरिक्त ऊंट सैन्य सुदृढीकरण के लिए सेना में शामिल किए गए। मिश्र अभियान पर 200 ऊंट, 20 सैनिकों के साथ भेजे गए थे। इनके साथ 30 रैंक ऑफिसर भी भेजे गए। गंगा रिसाला की कुल क्षमता 30 अफसर, 1036 (रैंक एण्ड फाईल) अन्य व्यक्ति, 166 फालोअर्स तथा 1254 ऊंट थे। यह स्वीकृत संख्या से 15 अफसर, 602 अन्य व्यक्ति, 85 फालोअर्स तथा 706 ऊँट ज्यादा थे। इसके अतिरिक्त 350 व्यक्तियों को हमेशा रिजर्व में रखा गया जिससे मोर्चे पर हुई सेना की हानि को तुरन्त अतिरिक्त बल भेजकर पूरा किया जा सके।[25]

1914–18 ई. प्रथम विश्व युद्ध में गंगा रिसाला की सैन्य और पशु शक्ति निम्नानुसार थी–[26]

	फाइटिंग रैंक	फालोअर्स	ऊंट
28.08.1914	495	96	
19.02.1915	151	27	
16.08.1915	20	–	
10.11.1916	249	43	
12.03.1918	140	–	
विभिन्न	13	17	
कुल	1068	183	1256

Total Strength on Field Service on Different dates as per A.F.B. 213

	B.os.	**I.os**	**O/R**	**Pub. Foll.**	**Pri. Foll.**	**Horses**	**Camels**
War Establishment	2	25	835	145	9	4	1024
Present On – 24-03-1918	8	24	619	118	4	3	823
Present On – 24-03-1918	8	23	623	116	5	3	830
Present On – 24-03-1918	5	25	737	116	3	3	771

प्रथम विश्व युद्ध में बीकानेर सेना ने स्वेज नहर, फिलीस्तीन, मिश्र आदि अभियानों में प्रशंसनीय कार्य किए। महाराजा गंगासिंह के प्रयासों से राज्य सेना में निरन्तर सुधार और सुदृढता आई।[27] 1 मार्च, 1938 ई. को बीकानेर राज्य सैन्य बल की निम्न इकाईयाँ कार्यरत थी।[28]

क्र.सं.	इकाईयां	कुल सैन्य बल	फालोअर्स
1	बिजय बैटरी	227	04
2	कैमल बैटरी	19	–
3	डूंगर लांसर्स	317	04
4	गंगा रिसाला	455	06
5	सदुल लाईट इन्फैन्ट्री	587	03
6	मोटर मशीनगन सैक्शनस	91	–
7	स्टेट बैंड	33	–
8	फोर्ट आर्सेनल	01	–

अफसर	60
अन्य रैंक	1673
फालोअर्स	17
कुल संख्या	1750

1939 ई. में द्वितीय विश्वयुद्ध शुरू होने पर बीकानेर सेना को पुनः विदेश सैन्य अभियान पर जाने का अवसर मिला। महाराजा गंगासिंह ने सेना का पुनर्गठन कर इसकी सैन्य संख्या में लगभग 2000 सैनिकों तक की वृद्धि करी और सैनिकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था कर उन्हें युद्ध के मोर्चे पर भेजने के लिए तैयार किया।[29]

बीकानेर सैन्य दल में डूंगर लांसर्स (जिसमें महाराजा के लगभग 342 अंगरक्षक सैनिक भी थे), गंगा रिसाला (466), बिजय बैटरी (4.बी.एल., 2.75 बंदूके, 236 सैनिक), सादुल लाईट इन्फैन्ट्री (619 सैनिक), मोटर मशीनगन सैक्शन (22 लेविस और 08 बंदूके, 100 सैनिक) और स्टेट बैंड शामिल था। यह 'ए' श्रेणी की राज्य सेना थी।[30] द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान अगस्त 1940 ई. में गंगा रिसाला को कराची तथा अदन में मोर्चे पर लगाया गया। लेफ्टिनेंट कर्नल खेमसिंह के नेतृत्व में यूनिट की संख्या 588 थी जो स्वीकृत संख्या से 45 प्रतिशत अधिक थी। दिसम्बर 1942 ई. में सेना भारत लौटी जिसे पुनः सिंध अभियान पर भेजा गया। 30 जनवरी 1945 ई. को गंगा रिसाला भारत लौटी।[31] 1951 ई. में गंगा रिसाला का भारत की स्वतंत्रता के पश्चात् जैसलमेर की ऊंट सेना में विलय कर दिया गया तथा दोनों का सम्मिलित नाम गंगा–जैसलमेर रिसाला रखा गया। गंगा रिसाला '13 ग्रेनेडियर' के नाम से आज भी भारतीय सेना की महत्वपूर्ण इकाई बनी हुई है।[32]

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *ओझा, प. गौरीशंकर हीराचन्द, बीकानेर राज्य का इतिहास, प्रथम जिल्द (1937 ई.) राजस्थानी गन्थागार, जोधपुर, पृ. 6–7*
2. *ओझा, प.गौरीशंकर हीराचन्द, बीकानेर राज्य का इतिहास, द्वितीय खण्ड, 1997 वि.स., राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, पृ. 52, 115–148*
3. *खडगावत, महेन्द्र, (संपादित) गंगा रिसाला, 2017, निदेशालय, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, पृ. 1*
4. *वही, पृ. 120*
5. *(1) वही, पृ.99*
   (2) राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, महकमा खास, फा.न.126, बस्ता नं.–06, पृ. 168–169
6. *खडगावत, महेन्द्र, पूर्वोक्त, पृ. 153*
7. *बीकानेर प्रशासनिक रिपोर्ट–1894–96, पृ. 60, सेक्शन–प्रथम*
8. *वही, सेक्शन द्वितीय, पृ. 60*
9. *बीकानेर प्रशासनिक रिपोर्ट, 1894–95 व 1895–96, पृ. 138*
10. *वही*
11. *राज्य अभिलेखागार बीकानेर, महकमा खास, फा.नं. 128, ब.नं.–06, पृ. 46*
12. *राज्य अभिलेखागार बीकानेर, महकमा खास, फा.नं. 126, ब.नं.–06, पृ. 166*
13. *वही, पृ. 167*
14. *वही, पृ. 168*
15. *राज्य अभिलेखागार बीकानेर, महकमा खास, फा.नं. 128, ब.नं.–06, पृ. 45*
16. *वहीं, पृ. 46–47*
17. *(1) बीकानेर प्रशासनिक रिपोर्ट, 1898–99 ई., पृ. 37–38*
    (2) खडगावत, महेन्द्र, पूर्वोक्त, पृ. 119–123
18. *(1) बीकानेर प्रशासनिक रिपोर्ट, 1904–05 ई., पृ. 20*
    (2) खडगावत, महेन्द्र, पूर्वोक्त, पृ. 01
    (3) ओझा, जी. एच., पूर्वोक्त, पृ. 119–123
19. *बीकानेर प्रशासनिक रिपोर्ट, 1904–05 ई., पृ. 06, 19*
20. *वही, पृ. 19–20*
21. *(1) बीकानेर प्रशासनिक रिपोर्ट, 1906–07 ई., पृ. 14*
    (2) बीकानेर प्रशासनिक रिपोर्ट, 1907–08 ई., पृ. 20
22. *बीकानेर प्रशासनिक रिपोर्ट, 1898–99 ई., पृ. 41*
23. *(1) खडगावत, महेन्द्र, पूर्वोक्त, पृ. 1–2*
    (2) ओझा, जी.एच., पूर्वोक्त, पृ. 134–38
24. *बीकानेर प्रशासनिक रिपोर्ट, 1914–15 ई., पृ. 2*
25. *खडगावत, महेन्द्र, पूर्वोक्त, पृ. 139*
26. *वहीं, पृ. 75*
27. *ओझा, जी.एच.,पूर्वोक्त, पृ. 134–147*
28. *बीकानेर राजपत्र, 1 मार्च, 1938 ई., पृ.16*
29. *खडगावत, महेन्द्र, पूर्वोक्त, पृ. 148*
30. *बीकानेर प्रशासनिक रिपोर्ट, 1939–40 ई., पृ. 42*
31. *खडगावत, महेन्द्र, पूर्वोक्त, पृ. 2–3*
32. *वही*

समकालीन हिंदी कविताओं में जनवादी स्वर

प्रो. अच्युत साधू शिंदे
अध्यक्ष, मु. सा. काकडे महाविद्यालय, सोमेश्वरनगर, पुणे (महाराष्ट्र)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

'जनवाद' शब्द सिर्फ राजनीति से संबंधित नहीं है। उसका संबंध संस्कृति से है। साहित्य में वह प्रगतिवाद का स्थानापन्न शब्द भी नहीं है। कविता का जनवादी स्वर मानवीयता से संबंधित तत्व है। अतीत से बढ़कर उसमें वर्तमान की अपेक्षा है। युग को बदलने की शक्ति उसमें है। मगर इसकी परंपरा अत्यंत गहरी है। प्राचीन युग से ही साहित्य में मुक्तिकामना का स्वर रहा है। समकालीन कविता में वह प्रखरता से गुंफित है। पुराने समय में जनवादी काव्य शोषकों विरोधी काव्य माना जाता था उसका क्षेत्र व्यापक होता गया वह जीवन के हर क्षेत्र में व्याप्त शोषण के प्रतिरोध में लिखा गया मानव संपृक्ति का काव्य बन गया। हिंदी की जनवादी काव्यधारा भारतीय जीवन संघर्ष की सुदृढ़ भूमि पर खड़ी है। जनवादी काव्य मुट्ठी भर शोषक–शासक वर्ग के प्रति विशाल शोषित जनसमुदाय की मुक्ति का उद्घोष है। जनवादी कविता श्रमजीवियों की जिंदगी का दस्तावेज है। जनता के संघर्षों और जीवन को स्वर देने की एक सफल कोशिश जनवादी साहित्य में दिखाई देती है। सर्वहरा के नज़रिये से वे ही देशकाल और समाज को विश्लेषित करते हैं। शोषण के विरूद्ध संगठित सर्वहरा की क्रांति भावना को इस साहित्य ने अंजाम दिया है। जनवादी रचनाकार की दृष्टि समूचे समाज पर पड़ती है। सर्वहारा वर्ग रोटी के लिए कभी व्यवस्था से समझौता नहीं करता है। ऐसे लोग ही क्रांति कर सकते हैं। समकालीन कविता की जनवादी दृष्टि की नींव पर क्रांति भावना टिकी है। साठ, सत्तर दशक की हिंदी कविता समय मे सत्य से साक्षात्कार करने लगी। समय के सत्य की तलाश इसने यथार्थ से जुड़कर करना शुरू किया। आज के दौर में लिखी जानेवाली तमाम कवितायें समकालीन नहीं कहीं जा सकती क्योंकि समकालीनता कोई समय बद्ध आवधारणा नहीं है। यह परंपराओं को तोड़ने के बजाय उसी की ही सही दिशा में होनेवाला विकास है। समय के व्यापक परिप्रेक्ष्य में वर्तमान की बहुआयामी समझ का होना, वर्तमान की ज्वलंत समस्याओं का सामाजिक रूप से साक्षात्कार करना, व्यापक जनसमुदाय की आशा आकांक्षाओं के प्रति दायत्वि और प्रतिबद्धता महसूस करना ही समकालीन बनना है।

संकेताक्षर : *समकालीन काव्य, जनवादी स्वर, समकालीन कवि, जनवादी कविता।*

आधुनिक काल में प्रयोगवाद के बाद हिंदी कविता में नए आयामों की तलाश आरंभ हुई। इन्हीं आयामों में से एक समकालीन कविता है, जो 1960 के दशक में हिंदी साहित्य में जनवादी मूल्यों और जनाकांक्षी प्रश्नों के साथ आई। आजादी के बाद लोकतांत्रिक मूल्यों में आई गिरावट के कारण आम जन के मन में संदेह उत्पन्न हुआ। जनसामान्य वर्ग की शासन के प्रति जो आशा आकांक्षाएँ थी वे बिखरने लगी। आम जनता दुःख, नैराश्य, अवसाद और पीड़ित होकर शासन से अनेक सवाल करने लगी। इन्हीं सवालों को लेकर समकालीन कविता का स्वरूप निर्मित होता है। समकालीन कविता की समकालीनता को केवल एक समय में होने वाली कविता के भाव या समकालीन शब्द के रूप में नहीं समझा जा सकता। वस्तुतः यह एक विचारधारा है, जो अवधारणा का रूप धारण करती है कविता को विस्तार देती है। नरेंद्र मोहन समकालीन कविता के बारे में लिखते हैं, ''समकालीन कविता का अर्थ किसी कालखंड या दौर में व्याप्त स्थितियों और समस्याओं का चित्रण निरूपण या बयान भर नहीं है। बल्कि उनको ऐतिहासिक अर्थ में समझना, उनके मूल स्त्रोत तक पहुँचना और

निर्णय ले सकने का विवेक अर्जित करना है।''[1] इस प्रकार समकालीन कविता आधुनिक हिंदी कविता का एक नया रूप है, जिसमें सामाजिक चेतना, सामाजिक परिवर्तन, विरोध, आक्रमकता और मानवीय सरोकार अपनी स्थितियों मानवीय दशाओं का विश्लेषण और सर्जनात्मक वैचारिक तनाव का सत्य विद्यमान यह कविताएँ आज की असल जिंदगी से साक्षात्कार कराती है।

समकालीन कविता को जीवन-जगात के यथार्थ की खुली अभिव्यक्ति के कारण सूत्ररूप में परिभाषित नहीं किया जा सकता। केवल इतना ही कहा जा सकता है कि समकालीन कविता अपने परिवेशगत यथार्थ की व्यापक अभिव्यक्ति है। सन् साठ के बाद की राजनीतिक विकृतियों, विद्रूपताओं, जीवन के हर क्षेत्र में विघटित टूटते मूल्यों, पीड़ाओं-कुंठाओं, मरते स्वप्नों और विक्षोभ ने इस काव्य-सृजन की अनुभूतियों संवेदनाओं में अभिव्यक्ति पाई है। यह कवितायें युग की पीड़ाओं, चिंताओं से साक्षात्कार कराती हुई हमें निराश, बेचैन कर देती है। सोचने-विचारने को विवश करती है। विद्रोह, विक्षोभ, असंतोष से जन्मी यह कविताएँ आम आदमी की व्यथा-कथा है। किंतु यह समझना भूल होगी की समकालीन कविता परिचय के अस्तित्ववादी काव्य मुहावरे की अभिव्यक्ति है। निराशा, अवसाद, क्रोध, झुंझलाहट, मूल्य-विहीनता की कविता होने पर भी यह अनास्थावाद की कविता नहीं है। अपनी दिशा और दृष्टि में यह नई पीढ़ी या आजादी के बाद पैदा हुई पीढ़ी की संघर्ष गाथाओं से भरी जीवन की कविता है।

जनवादी स्वर यानी जनता के स्वर को महत्व देने वाला या जनवाद का समर्थक या अनुयायी स्वर। ''कविता का जनवादी स्वर मानवीयता से संबंध तत्व है। अतीत से बढ़कर उसमें वर्तमान की अपेक्षा है। उसमें युग को बदलने की शक्ति है। इसकी परंपरा अत्यंत गहरी है। प्राचीन युग से ही साहित्य में मुक्ति की कामना का स्वर रहा है। समकालीन कविता में वह प्रखरता से गुंफित है। पुराने समय में जनवादी काव्य सामंत विरोधी काव्य माना जाता था उसका क्षेत्र समय के अनुसार व्यापक होता गया। जनवादी का यही मूल स्त्रोत है। मानवीय संपृक्ति ही इस दृष्टि को विकसित करती है। जनवाद छायावाद या प्रयोगवाद की तरह केवल साहित्यिक वाद नहीं है। इसका एक निश्चित राजनीतिक आधार और अभिप्राय है।''[2]

जनवादी स्वर समकालीन कविता में सशक्त सन्निहित के रूप में उपलब्ध है। परंतु उसका अपना इतिहास भी है। प्राचीन काल में ही इसका बीजावापन हुआ था। मध्यकाल के काव्य भी मानवीय आकाँक्षाओं से जुड़े हुए हैं। भक्तिकाल के कबीर हर युग में प्रासंगिक हैं। जो समस्यायें आज भी प्रखर रूप में वर्तमान में हैं उन्हें वर्षो पहले कबीर ने उठाया है। कबीर आध्यात्मिक मुक्ति की ही बात नहीं करते बल्कि समूचे जनसमुदाय की विषमताओं से मुक्ति की बात करते हैं। संत साहित्य मुक्ति कामना का साहित्य है, इसलिए वह जनवादी साहित्य का प्रथम रूप है।

आज के दौर में लिखी जानेवाली तमाम कवितायें समकालीन नहीं कही जा सकती क्योंकि समकालीनता कोई समयबद्ध आवधारणा नहीं है। यह परपंराओं को तोड़ने के बजाय उसी का ही सही दिशा में होनेवाला विकास है। समय के व्यापक परिप्रेक्ष्य में वर्तमान को बहुआयामी समझ का होना, वर्तमान की ज्वलंत समस्याओं का सामाजिक रूप से साक्षात्कार करना ही समकालीन बनना है। समकालीन कवि आक्रमक मुद्रा अपनाकर कविता को अधिक प्रभावशाली बनाते रहे। समकालीन कविता में जनवादी स्वर के बहुस्तरीय आयाम है। जैसे कि शोषण तंत्र के नए रूप और उसका विरोध, सामान्य जनता का शंकाओं भरा जीवन और मानवीय आस्था। समकालीन कविता के प्रमुख कवि हैं, मुक्तिबोध, त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल, शमशेर बहादुर सिंह, आलोकधन्वा, धूमिल, कुमार विकल, निर्मल वर्मा, शशि प्रकाश, पंकज सिंह, शलभ श्रीराम, उदयप्रकाश, ज्ञानेंद्रपति, अरूण कमल, राजेश जोशी, मंगलेश डबराल, आलोकधन्वा, कुमार अंबुज, वेणुगोपाल आदि। 'त्रिलोचन' की कविताएँ व्यापक जीवन के सूक्ष्म पक्षों को छूती हैं। सतही ढंग से शांत दिखनेवाली उनकी कविताओं की तह में अवसाद है। उन्होंने जीवन परिवेश के रोए-रेशौ की परतों को खोलने की कोशिश की है। आम आदमी सुख-दुःखों से ही वे स्थायी सत्य को बटोरते रहे और सामान्य में असामान्य को समझ सके। दुःख, दर्द और अवसाद के बीच भी एक अपराजेय भाव से यह अभावग्रस्त सर्वहरा वर्ग खड़ा है। वे अभाव से न दबकर उससे जूझते हैं और आस्था नहीं छोड़ते है। आहत होकर भी अनाहत बने रहने का वे संघर्ष करते हैं। त्रिलोचन जी उन्हीं लोगों के साथ उठते बैठते हैं। जैसे,

''खाली पेट भरू, कुछ काम करूँ कि चुप मरू
क्या अच्छा है, जीवन है, जीवन जीवन है प्रताप से
स्वाभिमान ज्योतिष्क लोचना में उतरा था
यह मनुष्य था इतने पर भी न भरा था।''[3]

धूमिल ने अपनी कविताओं में समाज और यथार्थ जीवन का अंकन किया है। उनकी 'पटकथा' कविता में आजादी के बाद मौजूदा पीढ़ी के सपने टूटने और आदर्श के मुखौटों के बीच नई पीढ़ी के उदय की बात प्रखर ढंग से उन्होंने इसमें व्यक्त की है। 'पटकथा' में धूमिल परिवेश से जुड़कर जीवन के संश्लिष्ट सत्य को उतारते रहे। आजादी के बाद भारतीय जनता को लगा कि अब कोई बच्चा भूखा रहकर स्कूल नहीं जाएगा। लेकिन उस सुनहरे इंतजार के बदले उत्पन्न अमानवीयता से जनता तिलमिला उठी। उस असह्य पीड़ा बोध को शब्दबद्ध करने के साथ उसके प्रति आक्रोश भी व्यक्त किया है। 'पटकथा' समग्र रूप से जनता की कविता है। इस मोह भंग की स्थिति के लिए सामाजिक व्यवस्था को ही जिम्मेदार मानते है। इस बारे में धूमिल कहते हैं,

''गरज यह कि अपराध
अपने यहाँ एक ऐसा सदाबहार फूल है
जो आत्मीयता की खाद पर
लाल-भडक फूलता है।''[4]

वस्तुतः धूमिल ऐसे कवि हैं। जिन्होंने कविता को जनाकांक्षा से जोड़ा। इसलिए उन्हें जनवादी कविता के शलाका पुरूष कहते हैं। आलोकधन्वा की कविताओं में भी सशक्त क्रांति का स्वर गूंजता है। आलोकधन्वा जो हो रहा है के कवि है। उनकी 'जनता का आदमी', 'गोली दागे पोस्टर' जैसी कवितायें वामपंथी सांस्कृतिक आंदोलन से गहरी जुड़ी है। ये दोनों कवितायें उनकी जनवादी दृष्टि को खूब प्रस्तुत करती हैं। 'जनता का आदमी' की पृष्ठभूमि 1972 के आसपास का नक्सलबारी आंदोलन है जिसमें वे सामंती अत्याचारों के विरूद्ध सशक्त क्रांति करते हैं। समकालीन कविता के कई कवि इस वामपंथी आंदोलन से गहरे जुड़े हैं। इस आंदोलन से जुड़ने के साथ-साथ यह कविता एक नई भूमिका भी तलाशती है। प्रस्तुत कविता में जलते हुए गाँव जली औरत और उनके बीच से निकलती नुकीली चीखें अभिव्यक्त हैं। आलोकधन्वा की कविता सबसे पहले अमानवीय स्थितियों के प्रतिरोध में खड़ी होती है। कवि ने कई क्षेत्रों में होनेवाले अन्याय के विरूद्ध प्रतिक्रिया व्यक्त की है। पूँजीपति, शासक, जमींदार, अखबार, प्रकाशक, साहित्यकार सभी के प्रति उन्होंने आक्रोश व्यक्त किया है। शोषण ने आदमी को आदमी न रहने देकर पेट या भूख का पर्याय बना दिया है। 'जनता का आदमी' कविता में आलोकधन्वा लिखते हैं,

''जिसे आप मामूली आदमी कहते हैं,
क्योंकि वह किसी भी देश के झंडे से बड़ा है।
इस बात को वह महसूस करने लगा है
महसूस करने लगा है वह
अपनी पीठ पर लिखे गये सैकडों उपन्यासों
अपने हाथों से खोदी गयी नहरों और सडकों को।''[5]

कुमार विकल समकालीन यथार्थ को पहचानकर उसके प्रति वे सशक्त ढंग से प्रतिक्रियान्वित होते हैं। सामाजिक, आर्थिक लड़ाई को वे खूब शक्तिशाली मानते हैं। अकेले आदमी की लड़ाई थकने वाली है। अकेला आदमी एकतंत्र के खिलाफ लड़ता है तो वह बेकार है। वह डर का शिकार बनता है। असुरक्षा की भावना से पीड़ित आदमी सामने एक दृढ़-बाँध चाहता है। मगर इस व्यस्त जिंदगी में आदमी महज खामोशी की चीख चीख सकता है। उसे अपना रक्षक बनना पड़ता है। असुरक्षित हजार जुड़कर लड़ाई में कूद पड़े तो सुरक्षा बोध होगा। जनता एक अदम्य शक्ति है। उन्होंने अपने निजी अनुभव को व्यापक सामाजिक संदर्भ दिया है। 'मिथक एक छोटी सी लड़ाई' कविता में वे कहते हैं,

''जनता एक बहुमुखी तेज़ हथियार है
जो अकेली लड़ाईयों को आपस में जोड़ता है
दुश्मन के व्यूहचक्रों को तोड़ता है।
जनता एक आग है।''[6]

उदयप्रकाश की कविता को यथार्थ के मूल से पकड़ना चाहती है ताकि एक गहरा अनुभव खंड उनकी कविताओं में उभर सके। चेतना पर जमती समय की धूल को हटाकर उसके अंदर झाँकने का उपक्रम उनकी कविताओं को नया अंदाज़ देता है। धूमिल और वेणुगोपाल सा हमलावर अंदाज उदय प्रकाश की कविताओं में भी खूब मिलता है। इस मुखरता के होते हुए भी उदय प्रकाश की कविताओं में एक खुलापन और ताजगी है। उनकी कवितायें पिछले दिनों लिखी गई उन तमाम कविताओं से भिन्न है जिसमें फूल,

चिड़िया, बच्चा आदि को रूढ़ि की तरह दुहराया गया है। ये कविताएं जन और जमीन से जुड़ी कविताएं हैं। जिनके केंद्र में श्रमशक्ति है। उदय प्रकाश की कविता में वैयक्तिक अनुभूतियाँ सामाजिक धरातल पाती है। रोजमर्रा की जिंदगी और संघर्षरत जन से वे एक गहरा रिश्ता कायम रखते हैं इसलिए उनकी कविता ठोस आधार प्राप्त करती है। उनकी कविता जन साधारण को शोषण के विरूद्ध प्रतिक्रियान्वित होने का साहस प्रदान करती है। मनुष्य विरोधी शक्तियों का प्रतिरोध करते हुए 'अबूतर कबूतर' कविता में लिखते हैं,

"तो झूठ-मूठ के भालू ने देखा
कि उसके नाखून सचमुच के भालू की तरह
बढ़ गये हैं, रोये हैं समूचे शरीर में,
दाँत है पैने और नुकीले
और गले में से
हिंसक गुर्राहट निकल रही है।"[7]

विज्ञान कक्षा में छोटी-सी लड़की द्वारा पूछा जानेवाला सवाल सारे विश्व के सामने असमानता के प्रतिक्रिया स्वरूप ज्ञानेंद्रपति द्वारा पूछा गया सवाल है। इन पंक्तियों को पढ़ते वक्त लगता है कि आदमी होकर भी पशु-सा जीवन जीने के अभिशप्त मनुष्य के स्वत्व और अधिकारों से वंचित आम आदमी ही उनकी कविताओं का केंद्र बिंदू है। 'शब्द लिखने के लिए ही यह कागज़ बना है' कविता में ज्ञानेंद्र पति कहते हैं,

"सारे आदमी जब एक से ही आदमी है
जल पर और स्थल पर
एक साथ चलकर ही बने हैं इतने आदमी
तो एक आदमी अमीर, एक आदमी गरीब क्यों है ?
एक आदमी तो आदमी है
दूसरा जैसे आदमी ही नहीं है।"[8]

समकालीन कविता की सामाजिकता सतही नहीं है। इसलिए शोषण तंत्र के बहुरंगी चित्र को वह सदैव प्रस्तुत करती रहती है।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि जनवादी स्वर वस्तुतः कविता की स्वयंसिद्ध सहजता है। जनवादिता स्वर के अभाव में कविता अपना लक्ष्य प्राप्त नहीं कर सकती है। कविता जब अपनी जनवादी स्वर से भरी रहती है तो वह पूर्ण होती है। समकालीन कविता का यही स्वर रहा है। जनवादिता के विभिन्न रूप इसलिए समकालीन कविता में मिलते है कि वह अपने लक्ष्य की ओर सक्रिय रूप से उन्मुख होना चाहती है। उसका यही स्वत्व है। उसका धर्म भी यही है। उसका कर्म भी यही है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *कविता की वैचारिक भूमिका : डॉ. नरेंद्र मोहन, पृ.23*
2. *शब्द और कर्म : मैनेजर पाण्डेय, पृ.145*
3. *भीख माँगते उस जनपद का नहीं हूँ : त्रिलोचन, पृ.13*
4. *पटकथा संसद से सड़क तक : धूमिल, पृ.119*
5. *दुनिया रोज बनती है जनता का आदमी : आलोक धन्वा, पृ.36*
6. *मिथक एक छोटी सी लड़ाई संपूर्ण कविताएं : कुमार विकल, पृ.38*
7. *अबतूर कबूत, मदारी का खेल : उदय प्रकाश, पृ.59*
8. *शब्द लिखने के लिए ही यह कागज बना है : ज्ञानेंद्रपति, पृ.80*

डॉ. भीमराव अम्बेडकर का मानवतावादी चिन्तन : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

हेमाराम तिरदिया
शोधार्थी एवं सहायक आचार्य, एस.पी.एम. राजकीय महाविद्यालय, भोपालगढ़

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

भारतीय संविधान के शिल्पकार डॉ. भीमराव अम्बेडकर मूलतः मानवतावादी थे। उनका समग्र चिन्तन और व्यवहार शोषण के विरूद्ध और मानवतावादी मूल्यों की संस्थापना के लिए था। डॉ. अम्बेडकर का मानवतावाद एक अनुशासन के रूप में विकसित नहीं हुआ बल्कि उनके विचारों, कार्यों एवं आन्दोलनों में परिलक्षित होता है। महाड़ जल सत्याग्रह, मंदिर प्रवेश सत्याग्रह, अस्पृश्यता उन्मूलन, सामाजिक न्याय, शिक्षा, लैंगिक समानता, लोकतांत्रिक विचार आदि डॉ. अम्बेडकर के मानवतावादी चिन्तन के महत्वपूर्ण घटक हैं। उनका मानवतावाद स्वतंत्रता, समानता, भ्रातृत्व एवं न्याय के सिद्धान्तों पर आधारित था, जिसका उद्देश्य मनुष्य का समग्र विकास एवं उसका कल्याण करना है।

संकेताक्षर : *डॉ. भीमराव अम्बेडकर, मानवतावाद, स्वतंत्रता, समानता, भ्रातृत्व, सामाजिक न्याय, संविधान।*

डॉ. भीमराव अम्बेडकर भारतीय संविधान के शिल्पकार ही नहीं अपितु आधुनिक भारत के निर्माता भी थे। बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी डॉ. अम्बेडकर एक साथ ही विचारक, लेखक, पत्रकार, राजनीतिज्ञ, अर्थशास्त्री, शिक्षक, विधिवेत्ता एवं समाज सुधारक थे। अस्पृश्य जाति के सदस्य के रूप में असीमित पीड़ा, हताशा, निराशा तथा दर्द का अनुभव करने वाले डॉ. अम्बेडकर मूलतः मानवतावादी थे। मानवतावाद दर्शन की स्थापित शाखा न होकर एक दार्शनिक दृष्टिकोण है जो मानव मूल्यों व मानवीय गरिमा को केन्द्र में रखकर मानव की आत्मनिर्भरता, संवेदना, अनुभव एवं ज्ञान की पूर्णता को प्रकाशित करता है।[1] डॉ. अम्बेडकर का समग्र चिंतन और व्यवहार शोषण के विरूद्ध और मानवतावादी मूल्यों की संस्थापना के लिए था । सम्पूर्ण मानव जाति की एकता तथा समानता, मानव मात्र की गरिमा एवं स्त्री–पुरूष की समान प्रतिष्ठा, कमजोर तथा निम्न वर्ग के लोगों के प्रति निष्ठा, पारस्परिक प्रेम की भावना, सामाजिक सद्भाव की प्रचुरता, धार्मिक सहिष्णुता एवं समत्व भाव, जातिगत भेदभावों का निषेध, सभी नागरिकों के लिए शिक्षा तथा सम्पत्ति का अधिकार आदि कुछ ऐसे तत्व हैं जो डॉ. अम्बेडकर की मानवतावादी धारणा का निर्माण करते हैं। यह विडम्बना ही है कि डॉ. अम्बेडकर को आज भी एक वर्ग विशेष के हितैषी के रूप में प्रचारित किया और समझा जाता है किन्तु भारत को सफल संविधान देने वाले बाबासाहेब के विचारों में सम्पूर्ण मानवता के लिए कल्याणकारी दृष्टि को स्पष्ट देखा जा सकता है। डॉ. अम्बेडकर की मानवतावाद की अवधारणा केवल सैद्धान्तिक नहीं है अपितु जीवन की एक व्यवहारिक योजना है। अतएव प्रस्तुत शोध आलेख में डॉ. अम्बेडकर के मानवतावादी चिन्तन एवं उसकी व्यवहारिक जीवन में प्रासंगिकता एवं सार्थकता का सामयिक संदर्भ में विश्लेषणात्मक अध्ययन का प्रयास किया गया है।

मानवतावाद वह दार्शनिक विचारधारा है जिसमें मानव तथा उसकी समस्याओं के विवेचन को प्रमुखता प्रदान की जाती है। इस विचारधारा का केन्द्र ईश्वर या अन्य कोई काल्पनिक दैवीय शक्ति न होकर स्वयं मनुष्य ही है। मानवतावाद वह सिद्धान्त है जिसके अनुसार संसार के सभी मनुष्यों का समान रूप से कल्याण होना चाहिए। अपने सरल अर्थों में मानवतावाद मानव के अस्तित्व को महत्व देता है। मानवतावाद इस विचार पर आधारित है कि सभी मनुष्य समान और सम्मान के पात्र हैं और उनके साथ वैसा ही व्यवहार किया जाना चाहिए।[2] मानवतावादी दर्शन के चिन्तन का मूलकेन्द्र मनुष्य तथा उनका संसार है। यह मानव जाति के कल्याण पर बल देता है एवं मानव मूल्यों,

प्रेम, शांति, सहयोग, स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व, न्याय को भौतिक मूल्यों–धन तथा ऐश्वर्य से अधिक महत्व देता है। मानवतावादी दर्शन मानव को प्रत्येक प्रकार की दासता, अंधविश्वास, शोषण से मुक्त कर सह–अस्तित्व में विश्वास करता है। इसका मानना है कि सभी मनुष्य मूल रूप से समान है। रंग, प्रजाति, जाति तथा शासन भेद के आधार पर उनको पृथक् नहीं किया जा सकता है।

मानवतावाद एक दर्शन है जो प्रारम्भ में मनुष्य को ही केन्द्र में रखकर चला किंतु कालान्तर में इसमें और भी घटक जुड़ते गए। मानवतावाद के चिंतकों की सुदीर्घ परम्परा में प्रथम दार्शनिक यूनान के प्रोटोगोरस का नाम लिया जाता है, जिन्होंने कहा कि, "मनुष्य सब वस्तुओं का मापदण्ड है।" मानवतावादी दर्शन के विकास में पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। पाश्चात्य विद्वानों में सुकरात, डेमोक्रीटस, एपीक्यूरस, लेमात्रे, फायरबाख, कार्ल मार्क्स, फेडरिक एंगेल्स एवं बट्रेण्ड रसेल प्रमुख हैं। भारतीय विद्वानों में महात्मा बुद्ध, कबीर, स्वामी विवेकानन्द, जवाहर लाल नेहरू, रविन्द्र नाथ टैगोर, मानवेन्द्र नाथ रॉय आदि के नाम महत्वपूर्ण हैं। भारतीय चेतना एवं चिंतन के आधार स्तम्भ स्वामी विवेकानन्द अपने मानवतावादी विचारों के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। उनका सम्पूर्ण जीवन ही मानव जाति की सेवार्थ व्यतीत हुआ है।[3] प. जवाहर लाल नेहरू की मानव में गहरी आस्था थी। उनके अनुसार, "परसेवा, पर सहायता और पर हितार्थ कर्म करना ही पूजा है और यही हमारा धर्म है यही हमारी इंसानियत है।" डॉ. एम. एन.रॉय द्वारा प्रतिपादित 'नव मानवतावाद' जीवन में मानवीय मूल्यों को प्रथम स्थान देता है। यह व्यक्ति की स्वतंत्रता एवं समानता का जयघोष करके व्यक्ति के गौरव एवं सम्मान को आगे बढाता है। आध्यात्मिक मानवतावादी रविन्द्र नाथ टैगोर ने कहा कि ''मनुष्य का दायित्व महामानव का दायित्व है उसकी कहीं कोई सीमा नहीं है।" इस प्रकार मानवतावाद मानव कल्याण की वह विशिष्ट चिंतनधारा है जो मानव व्यष्टि को अपना प्रतिपाद्य बनाकर विश्व कल्याण एवं जीवमात्र की हित कामना करती है तथा मानव को आदर्श बनाने और उसके मानवीय गुणों के विकास पर बल देती है।

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान समाज सुधारकों ने जाति प्रथा, अस्पृश्यता, सामंती दासता की विभिन्न प्रथाओं और सती प्रथा पर प्रत्यक्ष प्रहार किए परिणाम स्वरूप मानवतावाद के लिए संघर्ष प्रारम्भ हुआ जिसमें डॉ. भीमराव अम्बेडकर का महत्वपूर्ण योगदान रहा। डॉ. अम्बेडकर मूलतः एक मानवतावादी विचारक थे। भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के संदर्भ में उनकी वही भूमिका थी जो महान दार्शनिक रूसो की फ्रांसीसी क्रांति के संदर्भ में रही।[4] स्वतंत्रता, समानता एवं भ्रातृत्व वे महान आदर्श थे जो दोनों ही विचारकों के पथ–प्रदर्शक रहे हैं। रूसो यदि मानव की मूलभूत स्वतंत्रता का मुख्य प्रतिपादक थे तो डॉ. अम्बेडकर मानव की मूलभूत समानता के पक्षधर थे। डॉ. भीमराव अम्बेडकर के चिंतन में मानवतावाद की अवधारणा किसी अनुशासन के रूप में नहीं उभरी बल्कि ये धीरे–धीरे विकसित हुई और उनके समाचार–पत्रों, पुस्तकों, संपादकीयों, भाषणों, ज्ञापनों एवं आंदोलनों में परिलक्षित होती है। एक जागरूक पत्रकार के रूप में उच्च मानवीय मूल्यों तथा आदर्शो की स्थापना हेतु डॉ. अम्बेडकर ने मूकनायक, बहिष्कृत भारत, जनता, समता एवं प्रबुद्ध भारत आदि समाचार पत्रों का प्रकाशन तथा सम्पादन किया। उनकी पत्रकारिता मानवतावाद से ओत–प्रोत थी। डॉ. भीमराव अम्बेडकर का चिंतन मानव विकास के अंतिम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व एवं न्याय आदि मानवीय मूल्यों को आधार मानकर सम्पूर्ण सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन का वाहक है। डॉ. अम्बेडकर का मानवतावाद मानव मुक्ति का विचार है। यह मानव गरिमा के लिए चलाया गया आन्दोलन है जिसमें असमानता, अन्याय एवं शोषण के लिए कोई स्थान नहीं है। यह मानव कल्याण का मार्ग है जिसमें व्यक्ति का सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक विकास संभव है। यह एक क्रांति है जो अन्याय एवं शोषण के विरूद्ध है। डॉ. अम्बेडकर के विचारों में निहित मानवतावाद स्वतंत्रता, समानता एवं न्याय पर आधारित एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करता है जिसमें मानव का सर्वांगीण विकास हो तथा मानव–मानव के मध्य कोई भेद ना हो।

डॉ. अम्बेडकर का मानवतावादी चिन्तन जहाँ एक ओर चातुर्वर्ण्य समाज की असारता सिद्ध करता है वहीं उसके खिलाफ आक्रोश, निषेध और विद्रोह की मशाल जलाता है। हिन्दू धर्म का त्याग और बौद्ध धर्म का स्वीकार.... एक ऐसा परिवर्तनोन्मुखी सांस्कृतिक कदम था जिसका तात्कालिक प्रयोजन वर्ण विरोध और अंतिम लक्ष्य मानव मुक्ति था। डॉ. भीमराव अम्बेडकर का

मानवतावादी चिंतन बहुआयामी है जिसके अन्तर्गत उनके सामाजिक न्याय, समाज दर्शन, राजनीतिक विचार, नारी विमर्श, धार्मिक चिन्तन एवं संवैधानिक विचारों को सम्मिलित किया जा सकता है। अस्पृश्यता, जातिवाद, असमानता, अन्याय अमानवीयता जैसी सामाजिक विषमताओं की कैद में छटपटाते मानव की मुक्ति के लिए संघर्षरत डॉ. भीमराव अम्बेडकर की मानवतावादी धारणा संकुचित न होकर अत्यंत विस्तृत थी। एक तरफ इसमें जहां समानता, बंधुता, न्याय और स्वतंत्रता की व्यापक चेतना निहित थी वहीं प्रज्ञा, शील और करूणा जैसे मूल्यों पर अधिष्ठित नव समाज निर्मिति की रचनात्मक दृष्टि भी थी।

सामाजिक न्याय डॉ. भीमराव अम्बेडकर के मानवतावादी चिंतन का आधार स्तम्भ है जिसका उद्देश्य मानव जीवन के अन्तर्विरोधों का अन्वेषण कर इनके कारणों का पता लगाना एवं समानता पर आधारित समाज की कल्पना को साकार करना है। अस्पृश्यता एवं वर्ण व्यवस्था विषयक विचार उनके मानवतावाद की पराकाष्ठा है। भारत को स्वतंत्रता, समानता एवं बंधुत्व जैसे मुक्ति सूत्र देने वाले डॉ. अम्बेडकर को बचपन से ही अस्पृश्यता का दंश झेलना पड़ा। उनके अनुसार जाति भेद और अस्पृश्यता असमानता के ही रूप हैं जिनका मूल कारण वर्ण व्यवस्था या चातुर्वर्ण्य है। डॉ. अम्बेडकर कहा करते थे कि ''चातुर्वर्ण्य न केवल श्रम का विभाजन है अपितु श्रमिकों का भी विभाजन है इसलिए वर्गविहीन अर्थात् जात–पात विरहित समाज संरचना के लिए संघर्ष किया जाये इसलिए प्रारम्भ में यह आवश्यक हो जाता है कि उच्च जातियों की अनुकम्पा, दया या सहानुभूति तथा सांमजस्यपूर्ण सक्रिय सहयोग की प्रतीक्षा न करते हुए निचली समस्त जातियों को दलित जन साधारण समाज के रूप में संगठित होना पड़ेगा और भीतरी–बाहरी दोनों ही मोर्चों पर संघर्ष करते हुए वर्गवाद–वर्णवाद के उच्चाटन की प्रक्रिया को तेज करते हुए मनुष्यता की स्थापना का अंतिम आग्रह करना होगा।[5] मानव समानता के प्रबल समर्थक एवं प्रखर मानवतावादी डॉ. अम्बेडकर हिन्दू धर्म को सामाजिक समानता का धर्म बनाने के लिए चातुर्वर्ण्य व्यवस्था का निर्मूलन आवश्यक मानते हैं।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर का सम्पूर्ण जीवन दमन, शोषण और अन्याय के विरूद्ध अविरल क्रांति की शौर्य गाथा है जिन्होंने पत्थर को ईश्वर समझने वाली हिन्दू संस्कृति में लुप्त हुए मानवतावाद तथा अस्पृश्यों के अधिकारों को बहाल किया।[6] महाड़ तालाब सत्याग्रह भारतीय सामाजिक आंदोलन की एक ऐतिहासिक घटना है जिसके द्वारा डॉ. अम्बेडकर ने अस्पृश्य समाज को मानवाधिकारों के लिए विद्रोह करने को प्रेरित किया। नासिक कालाराम मंदिर प्रवेश सत्याग्रह एवं पार्वती मंदिर प्रवेश सत्याग्रह दलितों की सामाजिक दासता से मुक्ति के लिए एक आह्वान था। मनुस्मृति दहन, धर्मान्तरण की घोषणा, स्वतंत्र मजदूर दल की स्थापना आदि प्रसंग मानव मुक्ति के लिए उनके संघर्ष का प्रतीक थे। हाशिये पर पड़े समुदाय की अंतिम पंक्ति में खड़े व्यक्ति के मानवाधिकारों की मांग करते हुए डॉ. अम्बेडकर के सम्पूर्ण जीवन एवं दर्शन में मानवीय मूल्यों के प्रति उनकी आस्था प्रकट होती है।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर के मानवतावादी चिन्तन में उनके शिक्षा विषयक विचार महत्वपूर्ण हैं। उनका विश्वास था कि शिक्षा मनुष्य के सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक है। शिक्षा के अभाव में कोई भी व्यक्ति अपने कर्तव्यों एवं अधिकारों का निर्वहन एवं संरक्षण नहीं कर सकता है। डॉ. अम्बेडकर शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन का एक आवश्यक उपकरण मानते थे जिसके द्वारा वर्णाश्रम सहित सभी शोषणकारी व्यवस्थाओं को नष्ट कर मानव को मानव के रूप में प्रतिष्ठित किया जा सकता है। डॉ. अम्बडेकर मानवीय शिक्षा के प्रबल समर्थक थे। उनके अनुसार शिक्षा नीतिपरक हो जो मनुष्य को एक–दूसरे के साथ उचित व्यवहार करने के लिए निर्देशित करे।[7] मानव हित एवं सामाजिक उत्थान ही शिक्षा का परम उद्देश्य होना चाहिए। डॉ. अम्बेडकर का मानना था कि मानव मस्तिष्क को विचारों की खुराक की जरूरत होती है जो शिक्षा के माध्यम से ही मिल सकती है इसलिए शिक्षा के द्वार सभी के लिए खुले होने चाहिए। हाशिये पर पड़े समुदायों के लिए शिक्षा ही मुक्ति का साधन है किन्तु शिक्षा का यह मार्ग इनके लिए इतना सरल नहीं है इसीलिए डॉ. अम्बेडकर 'सभी के लिए शिक्षा' की व्यवस्था के तहत शिक्षा के लिए अनुदान को बढ़ाये जाने की मांग करते हैं। डॉ. अम्बेडकर के अनुसार शिक्षा केवल जीविकोपार्जन का साधन नहीं है बल्कि यह व्यक्तिगत एवं सामाजिक मुक्ति का मार्ग भी है। 15 जनवरी 1949 को अपने भाषण में उन्होंने कहा कि, ''कोई भी समाज शिक्षा के क्षेत्र में कितना आगे जाता है, इस पर ही उस समाज की प्रगति का

मूल्यांकन किया जाता है।''[8] कठिन संघर्ष कर उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाले डॉ. अम्बेडकर आजीवन 'शिक्षित बनो, संगठित रहो और संघर्ष करो' का संदेश देते रहे।[9] वे शिक्षा के माध्यम से समाज में स्वतंत्रता, समानता, बंधुता एवं न्याय जैसे उदात्त मूल्यों की स्थापना करना चाहते थे।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर का नारी विमर्श भी मानवतावाद से ओतप्रोत है जिसके अन्तर्गत वे महिला समाज के उत्थान एवं समान मूल्यों की स्थापना के लिए सतत प्रयासरत रहे। स्त्री–पुरूष समानता पर विशेष बल देते हुए उन्होंने कहा कि हमारी प्रगति में तीव्र गति से वृद्धि हो सकती है, यदि हम लड़कों के साथ–साथ लड़कियों को भी शिक्षा दें। जिस घर की स्त्री शिक्षित एवं सुसंस्कृत होती है, उसके बच्चे भी सदैव उन्नति के पथ पर अग्रसर रहते हैं। डॉ. अम्बेडकर का विचार था कि किसी समाज की प्रगति का अनुमान इस बात से लगता है कि समाज में महिलाओं की कितनी प्रगति हुई है। परिवार में महिला की स्थिति और उसके अधिकारों को सुदृढ़ करने के लिए बाबा साहेब ने शिक्षा के महत्व के साथ–साथ सामाजिक कुरीतियों जैसे बाल विवाह, बहुपत्नीवाद, देवदासी प्रथा आदि के विरुद्ध भी संघर्ष किया।[10] उन्होंने महिला श्रमिकों के लिए प्रसूति अवकाश का समर्थन किया। लैंगिक समानता एवं महिला सशक्तिकरण की अवधारणा को वास्तविक कानूनी रूप देने के लिए डॉ. अम्बेडकर ने वर्ष 1951 में संसद में 'हिन्दू कोड बिल' प्रस्तुत किया जो महिला अधिकारों के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना है। बिल संसद में पारित न होने के कारण बाबा साहेब ने विधिमंत्री के पद से त्याग–पत्र दे दिया। बाद में हिन्दू कोड बिल कई टुकड़ों में हिन्दू विवाह कानून, हिन्दू उत्तराधिकार कानून, हिन्दू गोद एवं गुजारा भत्ता कानून जैसे नामों से पास किया गया।[11] डॉ. भीमराव अम्बेडकर द्वारा आधी मानवता के विकास के लिए किए गये ये प्रयास उन्हें शीर्ष मानवतावादी विचारकों की श्रेणी में ला खड़ा करने के लिए पर्याप्त है।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर का सामाजिक दर्शन उनके मानवतावाद की पूर्ण परिणति है। वो एक ऐसे आदर्श समाज की स्थापना करना चाहते थे जिसमें वर्ण एवं जाति का आधार नहीं बल्कि समानता, स्वतंत्रता, सहानुभूति तथा मानवीय गरिमा सर्वोपरि हो और समाज में जन्म, वंश और लिंग के आधार पर किसी प्रकार के भेदभाव की कोई संभावना न हो। उनकी सामाजिक न्याय की दृष्टि यह मांग करती है कि मनुष्य के रूप में जीवन जीने का गरिमापूर्ण अधिकार समाज के प्रत्येक वर्ग को समान रूप से मिलना चाहिए और यह सिर्फ राजनीतिक स्वतंत्रता एवं लोकतंत्र से प्राप्त नहीं हो सकता, इसके लिए आर्थिक व सामाजिक लोकतंत्र भी चाहिए। डॉ. अम्बेडकर मनुष्यों के बौद्धिक स्तर को उन्नत कर एक प्रगतिशील समाज की रचना के लिए प्राणार्पण कटिबद्ध थे जो स्वतंत्रता, समानता एवं भ्रातृत्व पर पर आधारित हो। डॉ. अम्बेडकर अपने मानवतावादी चिन्तन के अंतर्गत स्वतंत्रता की आवश्यकता पर बल देते हैं। उनके अनुसार स्वतंत्रता का मूल्य उसी जगह सर्वोतम माना जायेगा जब व्यक्ति को बिना किसी बाह्य बाधा के अपने विचारों को अभिव्यक्त करने की स्वतंत्रता हो। डॉ. अम्बेडकर का मानना था कि मानवीय प्रगति तभी संभव हो सकती है जब लोगों को सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा धार्मिक स्वतंत्रता प्राप्त हो। समानता, डॉ. अम्बेडकर के मानवतावादी दर्शन का केन्द्रीय विषय है। उनका सम्पूर्ण दर्शन ही समानता की नींव पर खड़ा है। समानता के प्रति उनका आग्रह इतना उत्कट था जिसकी परिणति धर्म परिवर्तन के रूप में हुई। डॉ. अम्बेडकर का समानता सिद्धान्त सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक समानता के साथ समान अवसर एवं विधि के समक्ष समानता पर बल देता है। डा. अम्बेडकर का भ्रातृत्व का विचार उनके मानवतावाद का ही विस्तार है जो शांतिपूर्वक जीवन व्यतीत करने के लिए भाईचारे की भावना पर बल देता है। 'स्वतंत्रता समानता एवं भ्रातृत्व' का सिद्धांत बाबा साहेब ने बौद्ध दर्शन से ग्रहण किया जो उनके मानवतावादी समाज का आधार बना।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर के राजनीतिक विचारों में भी मानवतावाद के प्रति उनकी प्रतिबद्धता झलकती है। उनके राजनीतिक विचारों का केन्द्र 'मनुष्य' है और इस मनुष्य की अस्मिता, स्वाभिमान और स्वतंत्रता की रक्षा सत्ता और राजनीति करे ऐसा उनका आग्रह था। उनके अनुसार कानून ने मनुष्य को नहीं बनाया अपितु मनुष्य ने मनुष्य के सुख के लिए कानून बनाये हैं। डॉ. अम्बेडकर राजनीतिक दृष्टि से लोकतंत्र, व्यस्क मताधिकार, एक व्यक्ति–एक मत–एक एक मूल्य, विधि का शासन, संसदीय शासन प्रणाली, संवैधानिक सम्प्रभुता आदि के पक्षधर रहे हैं। उनका सम्पूर्ण जीवन लोकतंत्र के आग्रहों से अभिप्रेरित रहा। वे लोकतंत्र को

जीवन का मुख्य आधार मानते थे। उनका मत था कि व्यक्ति के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास लोकतंत्र के बिना संभव नहीं है। डॉ. अम्बेडकर ने स्वतंत्रता, समानता एवं भातृत्व को लोकतंत्र के महत्वपूर्ण आधार बताये हैं। उन्होंने कहा कि यदि राजनीति में समता, न्याय, शोषणविहीन समाज की स्थापना करनी है तो लोकतंत्र को एक मार्ग के रूप में अपनाना होगा। उनके अनुसार लोकतंत्र मानवीय जीवन का एक संगठित रूप है, इसकी जड़ें हमें मनुष्य के सामाजिक संबंधों में ढूंढनी चाहिए। डॉ. अम्बेडकर के अनुसार लोकतंत्र ऐसी शासन पद्धति है जिसमें लोगों के सामाजिक–आर्थिक जीवन में खून की एक बूंद बहाये बिना भी क्रांतिकारी परिवर्तन लाया जा सकता है। उनके अनुसार प्रजातंत्र, सरकार का एक स्वरूप मात्र नहीं है यह वस्तुतः साहचर्य की स्थिति में रहने का एक तरीका है जिसमें सार्वजनिक अनुभव का समवेत रूप से सम्प्रेषण होता है। प्रजातंत्र का मूल है, अपने साथियों के प्रति आदर और मान की भावना।[12] इस प्रकार डॉ. अम्बेडकर के राजनीति एवं लोकतंत्र विषयक विचारों में उनका मानवतावाद परिलक्षित होता है।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर के धर्म विषयक विचार उनके मानवतावाद का अनुसरण करते हैं। वे प्रकृतिवाद, रहस्यवाद, परम्परावाद, अंधविश्वास एवं कट्टरतावाद पर आधारित धर्म को महत्त्व नहीं देते है बल्कि सामाजिक सिद्धान्तों पर आधारित धर्म उनके लिए प्रिय था। समाज में एकता तभी आ सकती है जब धर्म मानवता, बौद्धिकता एवं नैतिकता पर आधाारित हो। उनकी मान्यता थी कि धर्म का मूलभूत तत्त्व व्यक्ति की आध्यात्मिक उन्नति के लिए वातावरण तैयार करना होता है। उनके अनुसार जिस धर्म में मनुष्यता नहीं है, वह धर्म नहीं उद्दण्डता का प्रदर्शन है। डॉ. अम्बेडकर कहते हैं कि, ''धर्म मनुष्य के लिए है, मनुष्य धर्म के लिए नहीं है।'' डॉ. अम्बेडकर की मानवतावादी अन्तर्दृष्टि ही उन्हें बुद्ध के धम्म व दर्शन की ओर ले गई। उनके अनुसार मानव जाति के लिए केवल बुद्ध का रास्ता ही सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वमान्य है जो मानव जाति के सम्पूर्ण कल्याण हेतु बनाया गया है।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर द्वारा रचित भारतीय संविधान उनके मानवतावादी चिंतन का ही साकार रूप है। संविधान की प्रस्तावना जहां स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व एवं न्याय की उद्घोषणा करती है वहीं भाग तीन में प्रदत्त मौलिक अधिकार मानवाधिकारों की गारण्टी प्रदान करते हैं। नीति–निदेशक तत्व आर्थिक एवं सामाजिक लोकतंत्र की स्थापना के मार्गदर्शक सिद्धान्त है। डॉ. अम्बेडकर ने संविधान के अन्तर्गत वंचितों, पिछड़ों एवं महिलाओं के लिए विशेष प्रावधान कर अपने मानवतावाद को नवीन आयाम प्रदान किए।

निष्कर्ष

खलील जिब्रान के अनुसार, ''मानव जीवन प्रकाश की वह सरिता है जो प्यासों को जल प्रदान कर उनके जीवन में व्याप्त अंधकार को दूर भगाती है।'' डॉ. अम्बेडकर का जीवन भी कुछ इसी तरह का था वो बौद्धिक और सांस्कृतिक भ्रम की शिकार मानवता को सन्मार्ग की ओर ले जाकर गतिशीलता प्रदान करते हैं। प. जवाहर लाल नेहरू ने कहा था, ''ईश्वर को हम खारिज कर सकते हैं लेकिन अगर हम इंसान को खारिज करते हैं तो हमारे पास क्या आशा बचेगी और इस तरह सब कुछ व्यर्थ हो जाएगा।''[13] डॉ. भीमराव अम्बेडकर के विचार भी कुछ ऐसे ही थे। उनका सम्पूर्ण जीवन एवं चिंतन मानव केंद्रित तथा मानवतावाद से परिपूर्ण था। डॉ. अम्बेडकर सामाजिक न्याय के आदर्श स्वतंत्रता, समानता एवं बंधुत्व जैसे मानवीय मूल्यों के लिए तथा लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रति आस्था, देश एवं समाज की एकता के लिए आजीवन संघर्षरत रहे। उनका सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक चिंतन यथार्थपरक और मानवता के लिए था। समता, स्वतंत्रता, बंधुत्व, गरिमा, आत्मसम्मान एवं न्याय उनके दर्शन का मुख्य लक्ष्य रहा है। जिसके लिए उन्होंने ऐसी सामाजिक संरचना की संकल्पना की है जिसमें मनुष्य को अपना सर्वांगीण विकास करने का अवसर प्राप्त हो।[14] डॉ. अम्बेडकर हिन्दू समाज के सभी अन्यायपूर्ण और दमनकारी स्वरूपों के विरूद्ध विद्रोह के प्रतीक मात्र नहीं थे; अपितु उन्होंने अन्याय एवं शोषण से पीड़ित मानवता के उद्धारक के रूप में स्वयं को प्रतिष्ठित किया। डॉ. अम्बेडकर का चिन्तन पूर्णतः मानवतावादी है। स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुत्व इसके मूल्य हैं जो वर्णाधारित हिन्दू समाज से जातिगत भेदभाव, अस्पृश्यता, अन्धविश्वास एवं पूर्वाग्रही विकृत मूल्यों को समाप्त कर एक न्याययुक्त सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक व्यवस्था के निर्माण का आदर्श प्रस्तुत करते हैं। डॉ. अम्बेडकर का सम्पूर्ण चिन्तन मानव केन्द्रित है जिसमें मनुष्य एवं समाज का हित सर्वोपरि है। अन्त में डा. अम्बेडकर का मानवतावाद एक विचार है मानव मुक्ति का, एक आन्दोलन है

मानवीय गरिमा की स्थापना का, एक मार्ग है मानव कल्याण का और एक संघर्ष है मानव–मानव की समानता का।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *सिद्धार्थ सिंह– साहित्य और दर्शनः मानवतावाद के परिप्रेक्ष्य में, शोध संचयन–vol-8 Issue-2, 15 july 2017*
2. *www.hmoob.in/wiki/humanitarianism*
3. *मनोज चतुर्वेदी : स्वामी विवेकानन्द का मानवतावाद www.pravakta.com*
4. *जगन्नाथ खाण्डेगर : मानवतावादी चिन्तक थे डॉ. अम्बेडकर www.hindi.webdunia.com*
5. *डॉ. पुरुषोतम सत्यप्रेमी : दलित साहित्य और सामाजिक न्याय, प्रकाशन–1997, पृ.स. 16*
6. *डॉ. डी.टी. गायकवाड. : भारत का जल संसाधन विकास– भारतरत्न बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर का उल्लेखनीय योगदान*

   www.hindi.indiawaterportal.org 31/07/2017
7. *अशोक कुमारी : गौतम बुद्ध एवं डॉ. अम्बेडकर के शैक्षिक विचारों की वर्तमान प्रासंगिकता International Journal of Applied Research 2015; 1(11) 822*
8. *वसंत मून : बाबा साहेब अम्बेडकर, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास प्रकाशन, नई दिल्ली पांचवा संस्करण 2014, पृ. सं.–184*
9. *डॉ. सुधांशु शेखर : डॉ. अम्बेडकर का शिक्षा दर्शन, ज्ञान गरिमा सिंधु, अंक–63 जुलाई–सितम्बर 2019*
10. *उमेश कुमार दुबेः बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर और मानवाधिकार International Journal of Applied Research 2019; 5(8) पृ. सं.–28*
11. *वंदनाः भारतीय समाज में मानवाधिकारों के प्रश्न और डॉ. अम्बेडकर, सामाजिक न्याय संदेश, अप्रेल 2016, पृ.सं.–64–65*
12. *डॉ. परमानन्द सिंह, डॉ. प्रमोद कुमार : डॉ. अम्बेडकर और एक मनुवादी विश्लेषण, प्रकाशन वर्ष 2005, पृ. सं.62 www.books.google.co.in*
13. *अशोक वोहराः नेहरू का वैज्ञानिक मानवतावाद www.hindi.speakingtree.in*
14. *डॉ, प्रभु चौधरीः विश्व मानवतावाद एवं डॉ. अम्बेडकर का चिन्तन, सामाजिक न्याय संदेश, अप्रेल 2016, पृ. सं. 37*

नगरो का सुनियोजित विकास ''जयपुर नगर पर संक्षिप्त प्रतिवेदन''

डॉ. अशोक कुमार मीना
जयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

जयपुर के भौगोलिक व जनसांख्यिक आकार में उत्तरोत्तर वृद्धि यहॉ आवासीय, यातायात व पर्यावरण से संबंधित अनेक समस्याओं को उत्पन्न कर रहे है। स्थापत्य, वास्तुशास्त्र, संस्कृति एवं पर्यटन की दृष्टि से विख्यात इस नगर की स्थापना महाराजा सवाई जयसिंह ने अपनें नगर नियोजक विधाधर भट्टाचार्य द्वारा नियोजन परम्परा अपनाते हुए 18 नवम्बर 1727 में की थी । परकोटे के अन्दर आधुनिक भारत का एक सुनियोजित नगर बसाया गया था। नगर के स्थापना के समय ही नगरवासियों की मूलभूत आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर जनसुविधाएं उपलब्ध करायी गयी थी । कालक्रमानुसार नगर की जनसंख्या में अत्यधिक वृद्धि के कारण चार दीवारी के बाहर नगर का भू-दृश्य तीव्र गति से परिवर्तित होने लगा । नगर की सीमाओं में विस्तार से कृषि व वन भूमि पर अव्यवस्थित निर्माण होने लगे ।

संकेताक्षर : *नगर नियोजन, सुनियोजित विकास, जयपुर, स्थापत्य, संस्कृति, पर्यावरण, यातायात।*

स्वतंत्र भारत में बढ़ती नगरीय जनसंख्या के लिए अत्यधिक आवासो की आवश्यकता ने नगर नियोजन की परम्परा को तोड कर अव्यवस्थित भवन निर्माण, कम चौड़ी सड़कों, शून्य खुले स्थानों के रूप में नगर का विस्तार किया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् जयपुर की जनसंख्या व बसावट में निरंतर वृद्धि होती गई। विभाजन के फलस्वरूप सर्णार्थियों के नगर में बसने से नगर की जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि हुई । सन् 1971 में नगर की जनसंख्या 6,36,768 थी व सन् 2001 में 23,24,319 का आंकड़ा छू लिया, और ''ए'' श्रेणी के नगरों में आ गया। अतः पारम्परिक नक्शे के अनुसार तथा भावी आवश्यकताओं के अनुसार जयपुर के नवीन विस्तारित क्षेत्रों का भी नियोजित विकास हों इसी ध्येय की पूर्ति के लिए जुलाई 14, 1982 में जयपुर विकास प्राधिकरण की स्थापना की गयी । एक और बढ़ती जनसंख्या वृद्धि दर पर्याप्त आवासीय तथा व्यावसायिक सुविधओं के लिए दबाव डाल रही थी दूसरी तरफ गांवों से जनसमूह का नगर की ओर रोजगार प्राप्ति के लिए पलायन नगर की जनसंख्या व समस्या में वृद्धि कर रहा था। नगर में उत्पन्न विभिन्न प्रकार की समस्याओं के निवारण के लिए जयपुर नगर मास्टर प्लॉन का निर्माण किया गया। नगर के मास्टर प्लानों के अन्तर्गत विभिन्न क्षेत्रों (आवासीय क्षेत्र, व्यवसायिक क्षेत्र, औधोगिक क्षेत्र, प्रशासनिक क्षेत्र, मनोरंजन व खुले क्षेत्र, सार्वजनिक व अर्द्धसार्वजनिक क्षेत्र, परिवहन क्षेत्र) का उल्लेख किया गया है।

जयपुर विकास प्राधिकरण एवं हाउसिंग बोर्ड द्वारा नियोजन कार्य किये जाने लगे। लेकिन दोनों निकायों द्वारा बढ़ती नगरीय जनसंख्या की आवश्यकतानुरूप आवास उपलब्ध न करवायें जाने के कारण निजी गृह निर्माण समितियों द्वारा कृषि क्षेत्र पर आवासीय बस्तियां बसा दी गई, जिससे शहर का तीव्रगति से विस्तार होने लगा जिसके फलस्वरूप उपजाउ कृषि भूमि का ह्रास होने लगा। निजी गृह निर्माण समितियों द्वारा कृषि भूमि पर विकसित अनियोजित आवासीय बस्तियों के सरकार द्वारा अनुमोदन किये जाने से 1970 के जयपुर मास्टर प्लॉन का अतिक्रमण हुआ एवं परकोटे से बाहर जयपुर नगर का अव्यवस्थित भू-दृश्य विकसित हो गया।

1990 के दशक में जैसे ही भूमण्डलीकरण की खुली अर्थव्यवस्था ने भारत में कदम रखा परकोटे के बाहर के जयपुर नगर का भू-दृश्य और तीव्र गति से परिवर्तित होने लगा। क्षेत्रिय विस्तार के साथ ही विकसित अव्यवस्थित नगर का

उर्ध्वाकार विस्तार होने लगा। बहुमंजिला भवनों के निर्माण से निर्मित क्षेत्र घनत्व, जनसंख्या, जनसंख्या घनत्व, विद्युत, जल उपयोग में वृद्धि हुई। जनसंख्या घनत्व में वृद्धि होने से सड़कों पर यातायात दबाव बढ़ने से ट्राफिक अवरूद्ध होने लगे। नगर में आवासीय, व्यवसायिक, औधोगिक, प्रशासनिक, मनोरंजन व खुले क्षेत्र, सार्वजनिक व अर्द्धसार्वजनिक क्षेत्रों में विभिन्न समस्याए उत्पन्न होने लगी।

अतः शान्ति प्रिंय एवं सांस्कृतिक धरोहर से सम्पन्न नगर की बढ़ती जनसंख्या से उत्पन्न पर्यावरणीय असंतुलन और छितरी आवासीय समस्याओं के कुशल निस्तारण तथा सुनियोजित विकास की समुचित योजनाओं के निर्माण व क्रियान्वयन में विशेष सावधानी, रूचि तथा नवाचार की आवश्यकता है। अतः भावी परिदृश्य में मास्टर योजना के निर्माण में जयपुर विकास प्राधिकरण की भूमिका भी अनुसंधान का मुख्य बिन्दु है। साथ ही नगर के विस्तार से उत्पन्न परिवर्तित भूदृश्य व समस्याओं का अध्ययन ही शोध का मुख्य आधार है।

आधुनिक समय में जैसे-जैसे नगरों का विकास होता जा रहा है वैसे-वैसे विभिन्न प्रकार की भौतिक समस्याएँ उत्पन्न होती जा रही हैं। नगरों का विकास सुनियोजित नगरीय विकास की परम्परा को तोड़कर अनियोजित तरीके से हो रहा है जिसका प्रमुख कारण नगरों की जनसंख्या में अत्यधिक वृद्धि होना तथा नगर नियोजन संस्थाओं व प्रशासन की अदूरदर्शिता है। अत्यधिक जनसंख्या वृद्धि के कारण नगर में भवनों की कमी, स्वास्थ्य सेवाओं की कमी, यातायात अवरूद्ध होनें, दुर्घटनाएँ, गंदी बस्तियों की संख्या में वृद्धि, भौतिक साधनों की कमी जैसी समस्याएँ बढ़ती जा) रही हैं।[1]

''हैराल्ड बर्नहीम'' के अनुसार हमारी समस्या केवल अपने जीवन स्तर को सुरक्षित रखना ही नहीं है, बल्कि उसे बनाये रखने की आवश्यकता है। नगरों में उत्पन्न होने वाली विभिन्न समस्याओं के अध्ययन से यही निष्कर्ष निकलता है कि वर्तमान समय में नगरों में सभी प्रकार की व्यवस्थाएँ बनाने व भविष्य में आने वाली विकट परिस्थितियों से बचने के लिये नगरों का सुनियोजित ढ़ंग से विकास किया जाए।[2] भविष्य में आने वाली परिस्थितियों को ध्यान में रखकर नगरों का विकास किया जाये तथा नगरों को इस प्रकार की व्यवस्थाओं से सुसज्जित किया जाए जो भविष्य में अत्यधिक जनसंख्या वृद्धि व इससे उत्पन्न होने वाली विभिन्न प्रकार की समस्याओं का सामना कर सके। इसके लिए नगर नियोजन कि विधियों को अपनाया जाना चाहिए।

स्थिति

जयपुर नगर राजस्थान राज्य के उत्तर-पूर्वी भाग में अरावली की शाखाओं के दक्षिण-पश्चिम में विस्तृत मैदान में अवस्थित हैं। भौगोलिक स्थिति की दृष्टि से जयपुर नगर की ऊँचाई समुद्र तल से 450 मीटर है। नगर का विस्तार $26^{0}.96''$ उत्तरी अक्षांश एवं $75^{0}.82''$ पूर्वी देशांतर पर स्थित हैं । जयपुर नगर देश के अन्य राज्यों, नगरों एवं महानगरों से सड़क मार्गो, रेल मार्गो, वायु मार्गो से जुड़ा हुआ हैं। जयपुर नगर भारत के अर्द्ध शुष्कीय जलवायु प्रदेश के अन्तर्गत आता हैं ।

सुनियोजित जयपुर नगर

जयपुर नगर का प्रारंभिक सुनियोजित विन्यास (18 नवम्बर 1727 में) तत्कालीन बंगाली इंजिनियर विद्याधर भट्टाचार्य द्वारा ही किया गया था। स्थापना के पश्चात् जयपुर नगर की जनसंख्या निरंतर बढ़ती रही हैं। 1881 तक चारदीवारी के अन्दर जयपुर का पर्याप्त विस्तार होता रहा किन्तु जब चारदीवारी के अन्दर जनसंख्या घनत्व बढ़ गया और आवास व सुविधाओं की कमी होने लगी तो 1881 में चारदीवारी के बाहर नगर का विस्तार प्रांरभ हो गया जो कि अब तक निरंतर जारी हैं।

जयपुर नगर का पहला मास्टर प्लॉन 1971 (यू आई टी) के समय बनना शुरू हुआ और 1976 में इसे लागू किया क्योंकि जयपुर तीव्रगति से प्रसार कर रहा थां और पहली बार तैयार किया गया मास्टर प्लॉन का लक्षित वर्ष 1991 ही था। जयपुर विकास प्राधिकरण ने स्वयं के स्तर पर पहला जयपुर मास्टर विकास प्लॉन 2011 बनाया।[3] फरवरी 1994 में आयोजना प्रकोष्ठ ने मास्टर विकास प्लॉन हेतु एक प्रारूप योजना का निर्माण किया था तथा बाद में सचिव के नेतृत्व में एक उच्चाधिकार प्राप्त समिति का गठन किया गया। 1 सितम्बर 1998 को लगभग आठ वर्षो की देरी के साथ लागू किया गया। जयपुर नगर के नगरीय तथा रीजन क्षेत्र में आनेवाले क्षेत्र का सुनियोजित विकास करने के लिए मास्टर प्लानों का निर्माण किया गया है। नगर का सीमांकन तथा उसके सुनियोजित विकास के

लिये सर्वप्रथम मास्टर प्लान 1991 में नगरीय क्षेत्रफल 156 वर्ग किमी प्रस्तावित किया गया था मास्टर प्लान 2011 में नगरीय क्षेत्र को बढ़ाकर 326 वर्ग किमी. कर दिया गया। नगर की बढती जनसंख्या तथा बढ़ते नगरीयकरण को मद्देनजर रखते हुए ज.वि. प्रा. ने मास्टर प्लान 2025 ड्राफ्ट बनाया है जिसने लगभग 520 वर्ग किमी. क्षेत्र नगरीयकरण के लिए अपेक्षित है जबकि जयपुर रीजन में भविष्य के विकास की दृष्टि से मास्टर प्लान में लगभग 2939 वर्ग किमी क्षेत्र का सीमांकन किया गया है।[4]

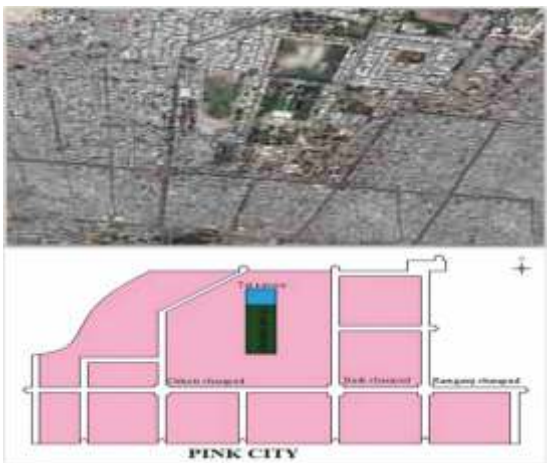

शोध अध्ययन विधि

शोध अध्ययन प्राथमिक एवं द्वितीय आंकड़ों के संकलन, विश्लेषण एवं परीक्षण पर आधारित है। आंकड़ों के द्वितीयक स्त्रोत जनगणना विभाग, नगर निगम, जयपुर विकास प्राधिकरण, हाउसिंग बोर्ड एवं बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के सेवा केन्द्र सम्मिलित है।[5]

नगर नियोजन के सिद्धांत

प्राचीन केवल भौतिक तत्वों व मध्यकाल में नगर नियोजन की योजनाएँ केवल भौतिक तत्त्वों पर ही अधिक आधारित होती थी जबकि आधुनिक समय में नगर नियोजन की योजना नगर के विभिन्न बिन्दुओं को ध्यान में रख कर बनायी जाती है जिसमें नगर के सुविधा केन्द्र, सेवा केन्द्र, विकास केन्द्र प्रमुख होते है आधुनिक नगर नियोजन की योजनाएँ व्यापक स्तर पर बनाई जाती है, जिन्हें इंजीनियरों के द्वारा विभिन्न नगर नियोजन के सिद्धान्तों को अपनाते हुए बनाया जाता है। आधुनिक समय में नगर नियोजन के लिए प्रमुख सिद्धांतो को अपनाया जाता है[6,] जो निम्न प्रकार हैः–

1. **आवासीय भूमि की पर्याप्तताः–** आधुनिक समय में जैसे–जैसे नगरों की जनसंख्या में वृद्धि हो रही है, वैसे–वैसे नगरों मे रहने के लिए अधिवासों की आवश्यकता में तीव्र वृद्धि होती जा रही है। ऐसी स्थिति में नगरो में अधिवासों के निर्माण के लिए भूमि की आवश्यकता बढ़ती जा रही है। अतः नगरों में से आवासीय भूमि की पर्याप्त व्यवस्था करना नगर नियोजन का प्रमुख सिद्धान्त है।

2. **सुनियोजित विकासः–** यह आधुनिक नगरों का सबसे महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। इसके बिना नगर नियोजन अधूरा है। नगरों में विकसित होने वाली आवासीय योजनाओं की नियोजित व्यवस्था की जाये तो भवन निर्माण प्रतिरूप, इसके अतिरिक्त विभिन्न आवश्यकता के लिए प्रयोग में ली जाने वाले भवनों की सुनियोजित व्यवस्था प्रमुख है।

3. **नगर का उचित कार्यक्षेत्रों में विभाजितः–** नगर में प्रत्येक कार्य के लिए अलग–अलग क्षेत्र बनाये जाने चाहिए। रिहायशी क्षेत्र, व्यापारिक क्षेत्र, औद्योगिक क्षेत्र, मनोरंजन क्षेत्र आदि।

   इन क्षेत्रों की पारस्परिक स्थिति इस प्रकार की हो, जिससे एक क्षेत्र का विरोधाभासी न बने और न ही एक–दूसरे के विकास व पर्यावरण को प्रभावित करे।[7,]

4. **यातायात का नियोजन एंव नियन्त्रणः–** नगर नियोजन में यातायात व्यवस्था का सबसे बड़ा योगदान होता है। इसमें राष्ट्रीय राजमार्ग, प्रमुख सड़कें, सहायक सड़के व गलियों को अनुपातिक आधार पर विभाजित करके इनकी पर्याप्त चौड़ाई–लम्बाई, प्रतिरूप पर्याप्त यातायात मार्ग जाल का विस्तार किया जाना चाहिए। सड़के सामान्यतः समकोण पर ही काटी जानी चाहिए तथा इनके कटान बिन्दु (चौराहे–तिराहे) पर्याप्त चौड़े होने चाहिए तथा यहाँ पर यातायात नियंत्रण प्रणाली लगी होनी चाहिए। विभिन्न श्रेणी के वाहनो के चलने के लिए विभिन्न लेन प्रणाली अपनायी जाये। भारी वाहनों के लिए नगर के बाहरी परिधि से होकर ही मार्गो का निर्माण किया जाये।

यातायात जाम व अव्यवस्थित यातायात प्रणाली

5. **सार्वजनिक स्थानों की व्यवस्था–** नगरवासियों के मनोरंजन, धार्मिक आस्था व सार्वजनिक कार्यक्रमों के लिए सार्वजनिक स्थलों व मनोरंजन स्थलों की पर्याप्त व्यवस्था कि जानी चाहिए जिसके अर्न्तगत पाक्र, खेल के मैदान, धार्मिक स्थल, क्लब, सामुदायिक केन्द्र, आदि स्थल प्रमुख हैं।

6. **हरित पेटियों का विकास –** ये नगर के स्वरूप केन्द्र कहलाते हैं। यहाँ प्राकृतिक भू-दृश्य व स्वच्छ वातावरण की व्यवस्था होती है जो कि नगर के वातावरण को स्वच्छ बनाने के साथ-साथ सौन्दर्यीकरण में भी सहायक होते हैं। इसके अन्तर्गत, प्राकृतिक वनस्पति क्षेत्र, जंगल, पहाड़ियाँ, सेन्ट्रल गार्डन सम्मिलित किये जाते है।

7. **औद्योगिक इकाइयों के लिए उचित स्थानों की व्यवस्था–** नगरीय क्षेत्र से औद्योगिक इकाइयों को दूर स्थापित किया जाना चाहिए ताकि ये इकाइयाँ अपने अवशिष्टों से नगर के वातावरण को दूषित ना कर सके। जैसे वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण आदि जो कि नगरवासियों के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव न डाल सके तथा नगर के वातावरण को भी दूषित ना कर सके।[8,]

आई.ओ.सी. अग्निकाण्ड में हुई जन, धन व पर्यावण का ह्रास

8. **गन्दी बस्तियो पर नियंत्रण–** आधुनिक नगर नियोजन योजना का यह सबसे महत्वपूर्ण सिद्धान्त है जिसके अन्तर्गत नगर में गन्दी बस्तियों की स्थापना व विकास पर नियन्त्रण लगाया जाये। क्योंकि ये बस्तियां नगर के सुनियोजित विकास में बाधक होती हैं। नगर में होने वाली विभिन्न प्रकार की असामाजिक गतिविधियां, अपराध, वेश्यावृत्ति, इन बस्तियों में ही पनपते हैं। इसके अलावा ये नगर के सौन्दर्यकरण में भी बाधक हैं। गन्दगी का प्रसार होने के कारण विभिन्न प्रकार की बीमारियों के उत्पत्ति केन्द्र भी ये गन्दी बस्तियाँ होती है। अतः योजना के तहत इन पर नियंत्रण आवश्यक है।

9 **अनुचित भूमि के उपयोग पर नियंत्रणः–** किसी भी नगर की योजना बनाते समय इस बात का पूर्ण ध्यान रखा जाये की नगर में जो भूमि जिस उपयोग के लिए चिन्हित की गयी है, उसे उसी उपयोग में लिया जाना चाहिए। जैसे आवासीय भूमि में वाणिज्यिक व औद्योगिक गतिविधियाँ स्थापित न हो।[9]

झालाना व आमागढ की पहाडियो का ह्रास

10. **नगरीयकरण के विस्तार पर नियंत्रण–** यह नगर नियोजन योजना का प्रमुख सिद्धान्त है। वर्तमान समय में नगरों का क्षेत्रीय विस्तार तीव्र गति से हो रहा है। जिसके फलस्वरूप नगर के समीपवृत्ति क्षेत्रों में स्थित कृषि भूमि पर आवासीय योजनाएँ बनती जा रही हैं जो कृषि भूमि के लिए नुकसानदायक सिद्ध हो रही है। कृषि भूमि का भू-उपयोग परिवर्तन करके आवासीय वाणिज्यिक व औद्योगिक भू-उपयोग में परिवर्तन किया जा रहा है, जो कि खाद्यान्न व अन्य खाद्य वस्तुओं की कमी का कारण बन रहा है तथा यह मँहगाई को बढ़ावा दे रही है।

11. **नगर के भावी विकास का प्रावधान–** नगर नियोजन योजना के अन्तर्गत नगरों के भावी विकास की योजना का निर्माण किया जाना आवश्यक है। इसके द्वारा नगर का आर्थिक विकास होने के साथ–साथ राष्ट्रीय व अन्तराष्ट्रीय स्तर पर पहचान बनती है जो कि नगरवासियों कि सुविधाओं, रोजगार तथा मनोरंजन के अवसरों में वृद्धि करता है जिससे नगरवासियों के उच्च जीवन स्तर में वृद्धि होगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *प्रों. इरिकशन ई.जी – अरबन बिहेवियर, न्यूयाक्र (1954)*
2. *डॉ. घोष, बिजीत – जयपुर टाऊन प्लानिंग (1964)*
3. *ज.वि.प्रा. की साहित्यिक, सांस्कृतिक, संगठ्नात्मक, गतिविधियों का दस्तावेज*
4. *डॉ.घोष, बिजीत – जयपुर टाऊन प्लानिंग (1964)*
5. *डॉ. बिबश जे.पी. – अरबन रिसर्च मैथडोलोजी, लंदन (1961)*
6. *चीफ, डिपाटमेन्ट ऑफ टाउन प्लानिग – सिटी डवलपमेन्ट प्रोग्राम; जयपुर (1964)*
7. *प्रों. नेल्सन एच.जे. – अमेरीकी नगरों का कार्यिक वर्गीकरण, मीनाक्षी प्रकाशन मेरठ (1955)*
8. *डॉ.लोढ़ा राजमल – औद्योगिक भूगोल, हरिहर प्रिन्टर्स, जयपुर (2005)*
9. *डॉ. माधव – अनवायरमेन्टल इस्पेसल ऑफ जयपुर; कोम्पलक्स हाउस इकोलाजी, आई एच.ई. सी. जयपुर (1978)*
10. *समाचार पत्र पत्रिकाए*

 ISSN 2277-5587

मालवा की लोकसंस्कृति में –महानुभाव पंथ

डॉ. मनीष कुमार दासौंधी
बडवानी (मध्यप्रदेश)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

अहिंसा, कृष्ण भक्ति और गीता के सिद्धांतों पर आधारित महानुभाव पंथ का अभ्युदय लगभग 12–13वीं शताब्दी में हुआ। भारत में गुजरात से प्रारंभ होकर गजनी, काबुल, कंधार में भी काफी लोकप्रिय हुआ। औरंगजेब ने भी इस पंथ को जजिया कर से मुक्त रखकर ईनाम की सनदें प्रदान की थी। होल्कर वंश की महिलाओं के द्वारा इस पंथ को संरक्षण प्रदान किया गया था। इसका उदाहरण इन्दौर में राजवाडें के निकट श्री बांकेबिहारी महानुभाव मंदिर, बीजलपुर में श्री दत्तात्रेय का मंदिर है।

संकेताक्षर : *मालवा, लोकसंस्कृति, प्रश्न, महानुभाव पंथ, गीता, सिद्धांत।*

महानुभाव पंथ का अभ्युदय लगभग 12–13वीं शताब्दी में हुआ। सर्वप्रथम इसका प्रचार गुजरात में हुआ। तत्पश्चात् महाराष्ट्र, पंजाब, मालवा इन्दौर में शनैः शनैः प्रसारित होता चला गया। यह सम्प्रदाय न केवल भारत में ही अपितु गजनी, काबुल और कंधार में भी काफी लोकप्रिय हुआ। होल्कर राजवंश में पुरूषों की अपेक्षा धार्मिक एवं सांस्कृतिक क्रियाकलापों में महिलाओं का योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। कुल परंम्परा के अनुरूप यद्यपि मल्हारी मार्तण्ड की उपासना की जाती रही तथापि राजवंश की महिलाओं ने धार्मिक संकीर्णता पंथ की अनुयायी बनी रही। होल्कर राजवंश की कई महिलाएं इस महानुभाव पंथ की अनुयायी रही है और इन्दौर में उसकी परम्परा को उन्ही के कारण स्थायित्व प्राप्त हुआ है। आज भी इस पंथ के कृष्ण मंदिर इन्दौर (राजवाडे के निकट श्री बांकेबिहारी महानुभाव मंदिर, बीजलपुर (श्री दत्त का मंदिर) है। होल्कर राजवंश की कई महिलाएं इस पंथ की अनुयायी रही है और इन्दौर में उसकी परम्परा को उन्ही के कारण स्थापित्य प्राप्त हुआ है।

गुजरात के नगर भडौंच के महाराजा हरदयाल देव जो कालांन्तर में श्री चक्रधर स्वामी (1194–1273 ई.) के नाम से विख्यात हुए नें ई. सन् 1268–69 में पैठण में सन्यास दीक्षा ग्रहण करनें के उपरांत ऋद्धिपुर नामक स्थान पर महानुभाव पंथ की स्थापना की।[1] चक्रधर स्वामी नें लगभग 12 वर्ष तक सतपुडा पर्वत पर निवास किया तथा 35 वर्ष तक महाराष्ट्र की तत्कालीन परिस्थितियों का अवलोकन करनें के पश्चात् जनकल्याण के प्रति प्रेरित हुए।[2] यद्यपि चक्रधर स्वामी गुजराती थे किन्तु उनके इस पंथ प्रचार का कार्य सर्वप्रथम महाराष्ट्र में प्रारम्भ हुआ और तत्पश्चात् यह सम्प्रदाय अपनी धार्मिक, उदारता एवं लोकप्रियता के कारण गुजरात, मालवा इन्दौर, उत्तरप्रदेश, पंजाब लाहौर, अमृतसर व उसके बाद काश्मीर, पेशावर काबुल, कंधार और गजनी के मुस्लिम प्रशासित क्षेत्रों तक प्रसारित होता चला गया।

इस पंथ के धार्मिक मत के अनुसार आद्य शंकराचार्य के परिष्कृत सिद्वांत इस धर्म के मुख्य सिद्वांत है। श्रीमद्भागवत गीता इस पंथ का मुख्य धर्म ग्रंथ है। महानुभाव पंथ अहिंसा, कृष्णभक्ति और गीता के सिद्वांतों पर आधारित है।[3]

इस पंथ के दो उपसम्प्रदाय है, प्रथम उपदेशीय तथा द्वितीय सन्यासी। उपदेशीय वर्ग के अनुयायी अपने संस्कारों का

पालन करते हुए इस पंथ के अनुयायी रह सकतें है किन्तु सन्यासी दीक्षा के पश्चात जाति बंधन का पालन आवश्यक नही माना जाता है तथा स्त्री व शूद्र वर्ग के लोग भी सन्यास ले सकतें है। सन्यास में दीक्षित होने के बाद जाति निर्बन्धता इस पंथ की विशेषता है।

हिन्दू देवताओं में श्रीकृष्ण एवं श्री दत्तात्रेय का पूजन किया जाता है। इस पंथ के अंतर्गत भगवान का पूर्ण अवतार माना जाता है एवं अन्य देवताओं को अशांवतार मात्र ही स्वीकार किया जाता है। इस पंथ में अहिंसा को सर्वाधिक महत्व देकर मूर्तिपूजा का निषेध किया गया है।[4] किन्तु श्रीकृष्ण एवं दत्तात्रेय के पवित्र स्थल (मंदिर) बनाकर आराधना की जाती है।

सबसे गौरतलब बात यह है कि मुस्लिम शासकों ने इन्हें मूर्ति पूजक न मानतें हुए विशिष्ट प्रकार का हिन्दू माना था। यहां तक कि औरंगजेब नें भी इस पंथ को जजियाकर से मुक्त रखा और उन्हें ईनाम की सनदें प्रदान की थी।[5] जजिया से मुक्त होने के कारण ही संभवतः सनातन हिन्दू समाज महानुभूव समाज से द्वेष रखनें लगा तथा उनकें उपासकों को तिरस्कृत करनें लगा। यह द्वेषपूर्ण बातें एकनाथ, तुकाराम आदि संतो के काव्य ग्रंथों में भी प्राप्त होती है।[6]

श्रीकृष्ण एवं श्री दत्तात्रेय महानुभाव पंथ के प्रथम दो धर्मावतार मानें जातें है तत्पश्चात् श्रीचांगदेव (चक्रपणि), श्रीगोविन्द प्रभु तथा पांचवें चक्रधर स्वामी इस पंथ के अंतिम अवतार माने जाते है चक्रधर स्वामी नें अनेक चमत्कारिक कार्य किये जिसकी कथा लीला चरित्र ग्रंथ में पायी जाती है। चक्रधर स्वामी के पांच शिष्यों में–नागदेवाचार्य (1236–1302), जर्नादन स्वामी (1504–1575), पंडित दामोदर, महेन्द्र भटट् एवं भण्डारेकर को इस पंथ में मुख्य स्थान प्राप्त है।[7]

मालवा में मराठा रियासतों के साथ ही महानुभाव पंथ का भी प्रवेश हुआ। होल्कर वंश की महिलाओं का संरक्षण पाकर यह पंथ त्रीवगति से राज्य के विभिन्न भागों में फैलता चला गया।

मल्हारराव होल्कर की उपपत्नी हरकूबाई नें केवल इस पंथ के प्रति अपनी श्रद्धा अभिव्यक्त की अपितु अपनी श्रद्धा को चिरस्थायी बनानें की कामना से इन्दौर में इस पंथ का एक मंदिर भी बनवाया। ऐसी मान्यता है कि यह मंदिर वर्तमान राजवाडे के निकट बनवाया गया था। यह मंदिर श्री बांकेबिहारी महानुभाव मंदिर के नाम से विख्यात है। इसी पंथ का एक और मंदिर इन्दौर के समीप बीजलपुर नामक ग्राम में स्थापित है।

इन मंदिरों को होल्कर पंथ की परवर्ती महिलाओं ने भी पर्याप्त संरक्षण प्रदान किया। खासगी से होने वाली आय की मद से इन मंदिरों को सहायता प्रदान की जाती थी। बाद में इन मंदिरों की व्यय पूर्ति के लिये इन्हें स्थायी रूप से खासगी विभाग द्वारा सनदें प्रदान की गई। खासगी विभाग द्वारा प्रदत्त इस प्रकार की दो सनदें प्राप्त हुई है।

1. इनमें से पहली सनद 1883 ई. में भागीरथी बाई होल्कर के द्वारा दी गई है। इस सनद में इन्दौर के बांकेबिहारी मंदिर की व्यवस्था हेतु खासगी मौजा हरसोला के ग्राम घरावरा से होने वाली आय का कुछ अंश मंदिर को दे दिया गया था।
2. दूसरी सनद 1923 ई. की है जिसमें राज्य के खासगी विभाग से प्रदत्त की गई थी। इसमें पूर्व सनद द्वारा निर्धारित राशि 1200 रूपयें का विभाजन करते हुए इन्दौर के बांकेबिहारी मंदिर को 300 रूपये तथा बीजलपुर के मंदिर को 900 रूपये वार्षिक देने की आज्ञा दी गई थी।

सनद–1

संस्थान श्री विठ्ठल मंदिर हल्लीचा पुजारी मन्नालाल पुष्करलाल सनदचे साल सन् 1294 फसली सनद पूजन अर्चन नैवेद्य वगैरे या बद्धंल

श्री

म्हालसाकां चरणी तत्पर अहिल्या स्वरूप

कृष्णाबाई नुषा सौभा

भागीरथीबाई होल्करश्री गजानन प्रसन्न

श्रीमान् तद् गुणैश्वर्य

सम्पन्न जगदोधारण

जगत्पालक श्री पंढरीनाथ

चरणी तत्पर दासानुदास

सौभाग्यवती भागीरतीबाई भ्रतार तुकोजीराव होल्कर दंडवत विज्ञापना सुरूसन खमास समानीन मयातेन अलफः सन् 1294 फसली संवत 1941 कैलावसासी सुलतान वल्लद संताजी लांबहाते याजला होउन श्री जोचे मंदिर शिखर बंद बांधले जाउन पूजन अर्चन, नैवैद्य, उत्साव नगारखाना बगैरे खर्चाचा व्याहांडा सरकारातून होउन खासगी जामदार खान्यातून नेमणूक पावत आली ही सेवा सर्व अल्यावच्चद सूर्य पुत्र पौत्रादि वंश परम्परा घडावों या हेतुने संस्थानचे खर्च कारिता इनामी जहागीर मौजे घरावरा तालुके हरसौला इलाखा चासगी हा गांव देण्यात आला आहे तेथील जमा एकंदर

6587 येणेप्रमाणे सहा हजार पांचसे सत्यांयशी रूप्ये हल्ला शिक्का आकर येउन गावचे कुल रकम्याची मोजणी त्या अन्वये खर्च एकंदर

5764 वरहुकमू व्याहाडा अन्वये

1200 संसीान बांकेबिहारी शहर इंदूर येथील मंदिर मानभाव याज कडोन बचत ठवली आहे

823 गांव संबंधि कमी जास्तो करिता दोन

बचत राहिली त्यात संस्थनचे जीर्णोद्धार व शिल्लकी डागीना वगैरे होत राहिल

श्री बांकेबिहारी मंदिर

पूजा नैवैद्य	225 रूपये
रोषनाई	84 रूप्पये
मकान मरम्मत समेत	46 रूपये
सणतेवार	150 रूपये
पुजारी वेतन	70 रूप्ये
काण्टिजण्ट किरकोल	10 रूप्ये
मकान पुताई आदि	40 रूप्ये

625 रूप्ये सही एस एस जोशी
कारखानादार
शिवशंकर

सनद–2

देवस्थान क्लासिफिकेशन लिस्ट

माफी आफिस इंदूर

हुजूर खासगी स्टेट इंदूर 1923

रूपये 1200

संस्थान श्री बांकेबिहारी शहर इंदूर येथील मंदिर महानुभाव याज कडेस आहे त्याज कडेस अतीत अभ्यागत यांचे खर्चा करिता गांव देणे विसी श्रीशंकर मखलसीचे सेटे ता. 6 माहे दिसम्बर सन् 1883 चे झाले प्रमाणे अलग न देता या गावचे उत्पनात देण्याचा ठराव जाहला तो. 300/–श्री बांकेबिहारी येथील अर्च्चा करिता ओंकार बुआ याजला शिष्य परम्परा नेमणुक देव्याचा ठराव झाल्यावर हुकूम होणे तें. 900/–अतीत अभ्यागत याजला पूर्वात बिलतलपुरास खर्च होत–

आला त्याची

पांच साली सरासरी करून दरसाल प्रमाणे सहाशे आहेत्याचे पिढीचे मामाचे रूप्ये नउशे ओंकारबुआ मानभाव याजला परंपरा देउन त्याचे मार्फत खर्च होणेचा ठराव झाला तो इकडेस लागू

सदरउ प्रमाणे खर्चाची व्यवस्था हो उनन सरदेश मुखीची व वतनाची जमीन मौजे मजकूरी बीघे 25 पंचवीस इनामी बजा जाहली ती सरकारात घेण्यात येईल कमासदार तो हरसोला इलाखा खासगी याचे नावे अलाहिदा पत्र करून देव्यात आले–आहे शेवेसी

श्रुत होय हे विज्ञापना

जिल्हेज ता. 29 माहे सप्टेबर सन् 1884 ई. सन् 1294 फसली रदरहू सनदेचे बंद आठ असून चिकर बंद केलेले आहेत या चिकर बंदाबर–मोहर

2 दोन प्रमाणे चोदर असून सनद पुरी झाल्या ठिकाणों मोहोर 1 एकूण मोहरा 15 असून शोवटच्या बंदावर डावे बाजूस सनद पुरी झालेल्या ओलवीर एक सिक्का झाला श्री मोर्तब सुद

ठस प्रकार होल्कर राज्य में राजवंश की महिलाओं का संरक्षण पाकर इन्दौर राज्य में यह पंथ स्थापित हुआ। यद्यपिइ स पंथ का प्रभाव मालवा में बहुत कम दिखाई

देता है। इस पंथ के बारें में कुछ गलत बातें भी कही गई है। किन्तु कुछ भी हो इस पंथ की विशेषताये , कार्य और सिद्धांत अति महत्वपूर्ण थें।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *डा. विष्णु भकरजी कोलते, मराठी संतों का सामाजिक कार्य, पृ. 8 दांते व कर्वे, सुलभ विश्वकोष, भाग 5 पृ. 1924–25।*
2. *चित्रा व शास्त्री, मध्ययुगीन चरित्रकोष, पृ. 350–54।*
3. *सुलभ विश्वकोष, पृ. 1924–25 ।*
4. *मराठी संतों का सामाजिक कार्य, पृ. 56 ।*
5. *भावे तथा तुलपुले, महाराष्ट्र सारस्वत पृ. 59, सुलभ विश्वकोष, भाग 5, पृ. 1924–25 ।*
6. *मराठी संतों का सामाजिक कार्य, पृ. 68, 8–87, 94 ।*
7. *मराठी संतों का सामाजिक कार्य, पृ. 27 ।*

ISSN 2277-5587

कुरुक्षेत्र एक विवेचन

डॉ. सन्तोष कुमार
सहायक आचार्य, जयनारायण मोहनलाल पुरोहित राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, फलोदी

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

कुरुक्षेत्र दिनकर जी का एक विचार प्रबंध काव्य है। इसमें युद्ध एवं शांति, हिंसा और अहिंसा तथा कर्म और संन्यास से सम्बंधित विचार वर्णित है। कुरुक्षेत्र के अनुसार युद्ध निन्दित एवं क्रूर कर्म है। कवि ने अपनी ओजपूर्ण कलम के द्वारा सामाजिक चुनौतियों का प्रभावशाली उत्तर अपनी कृतियों में दिया है। कुरुक्षेत्र हिंदी साहित्य की अनमोल धरोहर है इसमें सात सर्ग है। जिसमे युद्ध भूमि की भयानकता और भग्नहृदय युधिष्ठिर का परिचय होता है। युधिष्ठिर युद्ध की भयंकर विनाशकता से दुरुखी है। वे उद्विग्न मन की शांति हेतु भीष्म पितामह के पास जाना चाहते है। धर्मराज युधिष्ठिर भीष्म पितामह से कहते है की यदि मुझे युद्ध की विनाशकता का अंदाज़ होता तो मैं दुर्योधन से वार्तालाप के द्वारा कोई मार्ग निकालता शांति, क्रांति और प्रतिशोध आदि विषय पर अपने विचार प्रस्तुत करता। भीष्मः युद्ध की अनिवार्यता और महाभारत का मूल केंद्र बिंदु प्रकट करते हैं। युधिष्ठिर का पुनः निर्वेग देखने को मिलता है। भीष्मः कहते है कि हे तात ये कैसी विडंबना है। कि मनु का पुत्र ही पशुओं का भोजन बन रहा है। कवि ने स्वयं युद्ध और शांति के अनेक पहलुओं का चित्रण करते हुए युधिष्ठिर के प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयास किया है। इसमें वैराग्य, कर्म योग, भाग्यवाद, आशावाद और चिरंतन शान्ति विषय, भावों की झांकी देखने को मिलती है।

संकेताक्षर : *संन्यास, कर्म, निर्वासित, धधकती, भग्नहृदय, भुजबल, उमंग।*

कुरुक्षेत्र राष्ट्रकवि दिनकर का एक विचारप्रधान प्रबन्ध काव्य है जिसका प्रकाशन 1946 ई. में हुआ। यह युद्ध एवं शान्ति, हिंसा और अहिंसा तथा कर्म और संन्यास से सम्बन्धित विचारों का पाटवपूर्ण विश्लेषणात्मक संश्लेष उपस्थित करता है। कुरुक्षेत्र के निवेदन में दिनकर ने लिखा है कि श्युद्ध निंदित एवं क्रूर कर्म है। ''किन्तु उसका दायित्व किस पर होना चाहिए ? उस पर जो अनीतियों का जाल बिछाकर प्रतिकार को आमन्त्रण देता है या उस पर जो जाल को छिन्न-भिन्न कर देने के लिए आतुर है। पांडवों को निर्वासित करके एक प्रकार की शान्ति की रचना दुर्योधन ने भी की थी तो क्या युधिष्ठिर महाराज को इस शान्ति को भंग नहीं करना चाहिए था ?''

कुरुक्षेत्र की कथावस्तु महाभारत पर पूर्णतः आधारित नहीं है।

मेरा यह आत्मविश्वास और बढ़ता गया कि मैं समय का फल हूँ। मेरा सबसे बड़ा कार्य यह है कि मैं अपने युग के क्रोध और आक्रोश को अधीरता और बेचैनियों को सबलता के साथ छन्दों में बाँधकर सबके सामने उपस्थित कर दें।ष कवि ने अपनी ओजपूर्ण कलम के द्वारा सामाजिक चुनौतियों का प्रभावशाली उत्तर अपनी कृतियों में दिया है, 'कुरुक्षेत्र' इसका श्रेष्ठ उदाहरण है। कवि ने अपनी राष्ट्रीयता का स्वर बुलंदता के साथ आलापा है, जिसमें क्रान्ति की ज्वाला धधकती हुई दृष्टिगोचर होती है, जिसमें क्रान्ति की आराधना, अतीत का गुणगान, गांधीनीति, वर्तमान का यथार्थ अंकन, अखंड भारत का समर्थन, राष्ट्रीयता का व्यापक दृष्टिकोण, राष्ट्र में व्याप्त भ्रष्टाचार के प्रति आक्रोश, चीनी आक्रमण के पश्चात् पुनः राष्ट्रीय हुंकृति का भाव आदि है। 'कुरुक्षेत्र' हिन्दी साहित्य की अनमोल धरोहर है। आलोच्य कृति में सात सर्ग हैं। प्रथम सर्ग सबसे छोटा और अन्तिम सर्ग सबसे बड़ा है। प्रथम सर्ग में युद्ध भूमि की भयानकता और भग्नहृदय युधिष्ठिर का परिचय होता है। युधिष्ठिर युद्ध की भयंकर विनाशकता से दुःखी है। वे उद्विग्न

मन की शान्ति हेतु भीष्म पितामह के पास जाना चाहते हैं। द्वितीय सर्ग में भीष्म और युधिष्ठिर का संवाद है। धर्मराज युधिष्ठिर भीष्म पितामह से कहते हैं कि यदि मुझे युद्ध की विनाशकता का अंदाज होता तो मैं दुर्योधन से वार्तालाप के द्वारा कोई मार्ग निकालता। वो कहते हैं कि

"जानता कहीं जो परिणाम महाभारत का
तन बल छोड़ में मनोबल से लड़ता।"

भीष्म पितामह धर्मराज को सांत्वना देते हैं। तृतीय सर्ग में भीष्म शान्ति, क्रान्ति और प्रतिशोध आदि विषय पर अपने विचार प्रस्तुत करते हैं। चतुर्थ सर्ग में भीष्म युद्ध की अनिवार्यता और महाभारत का मूल केन्द्र बिन्दु प्रकट करते हैं। पाँचवे सर्ग में युधिष्ठिर का पुनः निर्वेद देखने को मिलता है। भीष्म कहते हैं कि श्हे तात! यह कैसी विडम्बना है कि मनु का पुत्र ही पशुओं का भोजन बन रहा है

"मनु का पुत्र बने पशु-भोजन! मानव का यह अन्त,
भरत भूमि के नरवीरों की यह दुर्गति हा हन्त।"

षष्ठ सर्ग में कवि ने स्वयं युद्ध और शान्ति के अनेक पहलुओं का चित्रण करते हुए युधिष्ठिर के प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयास किया है जैसे–

"हाय रे मानव; नियति के दास,
हाय रे मनुपुत्र, अपना आप ही उपहास

सातवें सर्ग में वैराग्य, कर्मयोग, भाग्यवाद, आशावाद और चिरंतन शान्ति

विषय, भावों की झांकी देखने को मिलती है। दिनकर जी ने श्कुरुक्षेत्र के प्रबन्ध की एकता, उसमें वर्णित विचारों को लेकर है। दरअसल इस पुस्तक में कवि स्वीकार करते हैं कि कुरुक्षेत्र का सौन्दर्य उसकी विचारधारा पर ही निर्भर है। इसमें हमें मानवतावाद का ही प्रतिष्ठापन देखने को मिलता है। मानव बन्धुत्व की भावना, मानव कल्याण के लिए आवश्यक है। इसी कारण डॉ. नगेन्द्र ने कुरुक्षेत्र को चिन्तन प्रधान लम्बी कविता माना है। भाव योजना और कला सौष्ठव की दृष्टि से कुरुक्षेत्र एक सफलतम कृति है। इसमें वीर रस के अलावा शान्त, करूण और वीभत्स रस का भी सम्यक चित्रण दर्शनीय है। यह सनातन सत्य है कि मानव अत्यधिक भौतिक उपादान का प्रश्रय ग्रहण करता है, अत्यधिक दौड़ धूप करके अनपेक्षत वैभव का परिग्रह करता है, औरों के प्रति निरन्तर वैमनस्य का भाव रखता हुआ मनोविकारों से जब ग्रसित हो जाता है तब ऊब जाता है, अन्ततः शान्ति और त्याग की कामना करता है। कुरुक्षेत्र की यही प्रासंगिकता है। आधुनिक मानव को आज कहीं भी शान्ति का अनुभव नहीं होता । वैज्ञानिक उपकरणों की अधिकता के कारण मानव मानव के बीच का अन्तर बढ़ गया है। अतः आलोच्य कृति में कवि दिनकर जी ने स्पष्ट कहा है कि

"मन का होगा आधिपत्य, जिस दिन मनुष्य के
तन पर,
होगा त्याग अधिष्ठित जिस दिन भागे लिप्त जीवन
पर।"

दिनकर जी ने अपनी प्रभावोत्पादक शैली के द्वारा प्रवाहित भावों के साथ अपने विचार विमर्श के द्वारा व्यक्त करने का प्रयास किया है जिससे युधिष्ठिर के अशान्त मन को थोड़ी शान्ति मिलती है। 'कुरुक्षेत्र' में कवि का राष्ट्रवादी स्वर मुखरित हुआ है। हमारे इतिहास से हमें ज्ञात होता है कि राष्ट्रीयता एक प्रबल भाप है। इतिहास साक्षी है कि हमारे लाखों युवकों एवम् राष्ट्रवादी नेताओं ने अपने प्राणों की आहुति देकर हमें आजादी प्रदान की है। राष्ट्र किसी एक व्यक्ति या भूमि विशेष से नहीं बनता। इसके लिए भूमि, भूमिवासी जन और जन संस्कृति तीनों के सम्मिलन से एक राष्ट्र का निर्माण होता है। इस राष्ट्र में भौगोलिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक इकाइयाँ पुंजीभूत हैं, इसी कारण हमारे ग्रन्थों में अथवा हमारे यहाँ होने वाली किसी भी पूजा में आचार्यो द्वारा कहा जाता है कि–

"जम्बू द्वीपे भरत खण्डे आविते
अथवा गंगे च यमुने चौव गोदावरी सरस्वती नर्मदे,
सिंधु कावेरि जले अस्मिन् सन्निधिम् कुरू।।"

यहाँ सिर्फ नदियों का उल्लेख करना उद्देश्य नहीं है अपितु भारत की सम्पूर्ण नदियों के जल की पावनता और राष्ट्रीय अविच्छिन्न एकता स्वीकार करके धर्मवेत्ताओं को मुक्त कंठ से प्रशंसा की गई है। इसी आदर्श की भावना से तद्युगीन प्रतिकूल परिस्थितियों से जोश उमंग और पूर्ण रूपेण शक्ति से सामना करने का संबल प्राप्त हुआ। इसी कारण श्रीराम के समय से लेकर हर्ष तक भारत की कल्पना एक राष्ट्र के रूप में रही। प्रत्येक काल का अपनी संस्कृति और समाज होता है। साहित्यकार या कवि अपने हृदयगत भावों के द्वारा जन–मानस में चेतना का संचार करने का प्रयास करता है जिससे समाज को अपना उत्थान, नई दिशा और शाश्वत शान्ति का मार्ग दिखाई देता है। 'कुरुक्षेत्र' में दिनकर जी यही भाव बार–बार दोहराते हुए कहते हैं कि–

"ब्रह्मा से कुछ लिखा भाग्य में, मनुज नही लाया है,
अपना सुख उसने अपने भुजबल से ही पाया है।"

भीष्म भाग्यवाद में विश्वास नहीं करते। अतः वे धर्मराज युधिष्ठिर को कर्म की महत्ता सिद्ध करते हुए कहते हैं कि मानव जब धरती पर आया तब वह ब्रह्मा से अपने भाग्य में सुख लिखाकर नहीं लाया था। उसने जो सुख पाया है उसके मूल में उसका परिश्रम भुजबल ही था। आज पूरे विश्व में धर्म–भाषा, जाति, प्रदेश, आर्थिक व्यवहार आदि विषयों पर आये दिन संघर्ष–विवाद होते ही रहते हैं। ऐसी विषम परिस्थिति में प्रत्येक मनुष्य को आत्म चिन्तन करना चाहिए। सृष्टि पर जो भी कुछ दृश्यमान है, प्रकृति में जो भी कुछ व्याप्त है, उन सभी पदार्थो और आयामों पर प्रत्येक मानव का समान अधिकार है। अतः कवि स्पष्ट कहते हैं कि

"जो कुछ न्यस्त प्रकृति में है, बह मनुज मात्र का धन है,
धर्मराज उसके कण–कण का, अधिकारी जन जन है।"

भीष्म धर्मराज को समझाते हुए कहते हैं कि वत्स! यह मत कहो कि प्रकृति पर मानव का कोई अधिकार नहीं, प्रकृति में जो कुछ समाया हुआ है, वह सभी मानव मात्र का धन है प्रकृति के प्रत्येक कण–कण पर मानव का अधिकार है। दिनकर जी की राष्ट्रीय भावना उनकी सामाजिक चेतना का ही परिणाम है। दिनकरजी के समय में छायावाद का प्रचलन प्रमुख रूप से था। छायावाद की निर्वेक्तिकता, सात्विकता, दार्शनिकता और निराशा का कवि ने अपने काव्य–जगत में स्पर्श ही नहीं होने दिया। यहाँ यह भी कहना चाहिए कि उस समय भारतवर्ष में साम्यवादी विचारधारा का प्रवेश हो रहा था। मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी दर्शन का अन्य कवियों ने अपने काव्यों में चित्रण करना प्रारम्भ कर दिया था। दिनकर जी ने मार्क्सवादी विचारधारा का स्पर्श अवश्य किया लेकिन तीव्र गति से उसमें प्रवेश नहीं किया। श्रेणुकाश, श्नाचो हे नाचौ नटवरश और शहिमालयश नामक काव्य में थोड़ा संकेत अवश्य पाया गया है। कवि ने शोषक–शोषित समाज का उन्मूलन करके वर्गहीन समाज की स्थापना करने का प्रयास किया है। यही वास्तव में कवि कर्म है। यही मूलभूत–प्रासंगिकता का स्वर मानना चाहिए। वर्तमान विषमताओं के प्रति उनकी क्रान्ति भावना जो बुलन्द स्वर में मुखरित हुई है इसी कारण आज और आने वाला समाज दिनकर जी को कभी नहीं भूल पाएगा। दिनकर जी की लेखनी में जोश हे उमंग है. आक्रोश है. क्रान्ति की छलकती ज्वाला है। एक उदाहरण देखें तो

"रे रोक युधिष्ठिर को न यहाँ जाने दे उनको स्वर्गधीर,
पर फिरा हमें गांडी–गदा, लोटा दे अर्जुन भीम–वीर।।
तू मौन त्याग कर सिंहनाद रे तपी। आज तप का न काल,
नवयुग शंख ध्वनि जगा रही, तू जाग जाग मेरे विशाल।"

कवि की आक्रोशपूर्ण क्रान्ति की चेतना हमें कुरुक्षेत्र में सर्वत्र देखने को मिलती है।

दिनकर जी कुरुक्षेत्र में एक और युद्ध का समर्थन करते हैं, उसकी अनिवार्यता स्वीकार करते हैं, साथ–साथ ही युद्ध की विभीषिका और उसके दुरूखद परिणाम उन्हें व्याकुल कर देते हैं। अतः कवि अपना अभिगम बदलते हुए विश्व–शान्ति की कामना करते हुए कहते हैं कि

"आशा के प्रदीप को जलाये चलो धर्मराज।
एक दिन होगी, मुक्त भूमि रण भीति से।।
भावना मनुष्य की न रण में रहेगी लिप्त।
सेवित रहेगा नहीं जीवन अनीति से।।"

यहाँ समता, समानता, कर्मठता, का सन्देश होने के कारण हम इसे आधुनिक युग की गीता अवश्य कह सकते हैं। 'कुरुक्षेत्र' आज के समय मैं पथ निर्देशिका के रूप मैं सिद्ध हो सकती है। आज पूरे विश्व में वैयक्तिक, भोगवाद, भूमि और धन की लिप्सा और विज्ञानवाद के कारण मात्र बुद्धिवाद की परिणति मानवता की प्रतिष्ठा में अवरोध कहें। कवि भाग्यवाद को पाप की और अकर्मण्यता का कारण मानकर कर्मण्यता को मानव–विकास एवं मांगल्य के सन्दर्भ में महत्तव देता है। विविध विचार शरणार्थियों का समन्वय एवं समाधान ही श्कुरुक्षेत्र का प्रतिपाद्य है। आत्मबल और मनोबल, बुद्धि और हृदय, भोग और त्याग, युद्ध और शान्ति जैसे विरोधी भावों का सन्तुलन ही आलोच्य कृति का मूल सन्देश है। समाज में प्रतिकूल परिस्थितियां तो आती ही रहती हैं, इससे निराश होकर आत्मघात करना सर्वथा अनुचित ही है। कवि में प्रारम्भ से ही सुधारवाद के प्रति आस्था रही है। शहिमालयश में युधिष्ठिर को स्वर्ग जाने की सलाह दी गई है। युधिष्ठिर की सत्यप्रियता, ईमानदारी, सहृदयता और सहनशीलता कवि को ग्राह्य नहीं है। वे अर्जुन के गांडीव की टंकार सुनना चाहते हैं। यह भी सत्य है कि क्रान्ति

को महाकालों का आह्वान दुर्बल और कोमल मन से नहीं किया जाता। अतः दिनकर जी, वीणा के तार तोड़ मरोड़कर फेंक देने की बात करते हुए श्हुंकारश में शंख ध्वनि का घोष प्रचंड स्वर में गुंजित करके श्रेणुकाश में अपना हृदय खोल देते हुए कहते हैं

''लाखों क्रौंच कराह रहे हैं, जाग आदि कवि की कल्याणी।

फूट-फूट तू कांब कंठों से बन ब्यापक निज युग की वाणी।।''

इसी कारण तो क्रान्ति की आग्नेय किरणें बरसाने वाले कवि का नाम श्दिनकर सार्थक प्रतीक होता है। कवि विज्ञान के बढ़ते राक्षसीकरण, जिसने धरती को रोंद डाला है, जिसके कारण भोगलिप्सा, भौतिक सुख के अतिरिक्त आकांक्षी, मानव मन आदि की स्थिति देखकर उद्विग्न हैं। उनका स्पष्ट मत है कि ज्ञान के मरुस्थल में हृदय को कोमल भावनाओं का स्रोत-प्रवाहित होगा तब ही सन्तुलन हो पाएगा। कवि ने भीष्म के चरित्र के द्वारा अपना मत प्रस्थापित करने का स्तुत्य प्रयास किया है। वे स्पष्ट मानते हैं कि समाज में व्याप्त दुःख के उन्मूलन के लिए किया गया, युद्ध, सर्वथा उचित और धर्म संगत है। शत्रु का शक्ति से प्रतिकार करना ही सच्ची वीरता का लक्षण है। युद्ध के सन्दर्भ में पाप और पुण्य की व्याख्या एक भ्रांति है, जब समाज में चारों और स्वार्थ, संघर्ष और अन्य विभीषिकाएं हैं वहीं क्षमा और दया की बात करना निर्बलता है। प्रतिकार ही समुदाय के लिए हितकारी एवम् श्रेष्ठ मार्ग है। ईंट का जवाब पत्थर ही होता है। अधर्म और अन्याय का अन्त युद्ध बिना सम्भव ही नहीं है। तर्क-वितर्क तो बुद्धिजन्य है। युद्ध में पाप पुण्य की कोई व्याख्या हो ही नहीं सकती। युद्ध तो न्याय की कसौटी है। व्यक्ति को अपने भाग्य से अधिक पुरुषार्थ पर ध्यान देना चाहिए। भाग्यवाद पर आधारित मानव अन्य के शोषण का भोग बनता है। धरती कर्मठ व्यक्ति का सम्मान करती है। कवि उज्ज्वल भविष्य के प्रति पूर्ण आस्थावान है। उनका विश्वास है कि एक दिन ऐसा अवश्य आयेगा कि विज्ञानवाद से त्रस्त मनुष्य बुद्धिवाद को छोड़कर हृदयवादी बनेगा। कवि ने श्कुरुक्षेत्र में भीष्म के पात्र को युगानुरूप मानव के रूप में डालने का स्तुत्य प्रयास किया है। भीष्म सिर्फ उपदेशात्मक पात्र के रूप में ही नहीं मगर एक जीवन्त पात्र के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित हुए है। भीष्म मौलिक विचारों के संवाहक प्रतीत होते हैं। शोषण और शोषितों के बीच जो खाई है, दूषण है उसका यथायोग्य समाधान भीष्म के चरित्र में दर्शनीय है। कवि का स्पष्टतः मत है कि समाज में आर्थिक साम्य लाये बगैर स्थायी शान्ति स्थापित हो ही नहीं सकती। सारतः कहना चाहिए कि कुरुक्षेत्र दिनकरजी की चिन्तनप्रधान कृति है जिसमें वर्तमान एवम् भविष्य की समाज सम्बन्धी समस्याओं का समाधान है। कवि का स्पष्ट मत है कि मानवता पर जब-जब ठेस लगी है तब सहनशक्ति काम नहीं देती तो युद्ध ही धर्मयुद्ध बन जाता है। भीष्म युद्ध के समर्थक है। युधिष्ठिर के मन में जो युद्धजन्य ग्लानि और निर्वेदभाव उत्पन्न होता है उन सभी का शमन वे अपने तर्कों के माध्यम से पुष्ट करते हैं। दिनकर जी आधुनिक युग के सबसे लोकप्रिय कवि रहे हैं। 'कुरुक्षेत्र' पर उनको उत्तरप्रदेश सरकार का, नागरी प्रचारिणी सभा का, साहित्यकार संसद का साहू पुरस्कार, साहित्य सम्मेलन का मंगलाप्रसाद या काशी का द्विवेदी पारितोषिक आदि सम्मान प्राप्त है। साहित्य अकादमी का श्संस्कृति के चार अध्यायश के लिए एवम् श्उर्वशीश के लिए भारतीय ज्ञानपीठ का पुरस्कार प्राप्त हुआ है। कवि को राष्ट्रपति ने पद्मभूषण की पदवी प्रदान की है। भागलपुर विश्वविद्यालय ने डी.लिट. की पद्वी से कवि को विभूषित किया है। डॉ. रामदरय मित्र कहते हैं कि दिनकर की राष्ट्रीयता बहुत गतिशील, संश्लिष्ट एवं उदार है, उसमें तात्कालिकता, परम्परा, राष्ट्रीयता अन्तर्राष्ट्रीयता मानवता भावनाशीलता एवं वैचारिकता का अद्भुत समन्वय है। अतः कहना चाहिए कि देदीप्यमान, प्रभापुंज जाज्वल्यमान ज्योति-पिंड का नाम श्री रामधारी सिंह दिनकर है

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *रामधारी सिंह दिनकर, कुरुक्षेत्र, प्रकाशन राजकमल*
2. *कुरुक्षेत्र (भूमिका)*
3. *कुरुक्षेत्र पंचम सर्ग,पृ. 65*
4. *रामधारी सिंह दिनकररू राष्ट्र भाषा और राष्ट्रीय एकता, पृ. 51*
5. *रामधारी सिंह दिनकर, भारतीय एकता, पृष्ठ दृ 02*
6. *रामधारी सिंह दिनकर, हमारी सांस्कृतिक एकता, पृष्ठ दृ 19*
7. *कुरुक्षेत्र – चतुर्थ सर्ग, पृ. 34*
10. *कुरुक्षेत्र – चतुर्थ सर्ग, पृ. 48*
11. *कुरुक्षेत्र – चतुर्थ सर्ग, पृ. 40*
12. *कुरुक्षेत्र – चतुर्थ सर्ग, पृ. 51*

मानव संसाधन विकास : कुमाऊँ की ग्रामीण महिलाओं के विशेष संदर्भ में

डॉ. सीता मेहता
प्राचार्य, श्री गुरूनानक देव स्नातकोत्तर महाविद्यालय
नानकमत्ता साहिब, ऊधमसिंह नगर (उत्तराखण्ड)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

मानव संसाधन विकास एक ऐसी संरचना है, जो संगठन के या देश के लक्ष्यों को संतोषप्रद ढ़ग से पूरा करने के साथ-साथ व्यक्ति विशेष के विकास की भी स्वीकृति प्रदान करता है। जिससे उस देश तथा वहाँ के नागरिकों को पूर्ण लाभ की प्राप्ति हो सके। अपने मूल अर्थो में मानव संसाधन वह अवधारणा है, जो जनसंख्या को अर्थव्यवस्था पर दायित्व से अधिक परिसंपत्ति के रूप में देखती है। शिक्षा-प्रशिक्षण और चिकित्सा सेवाओं में निवेश के फलस्वरूप जनसंख्या मानव संसाधन के रूप में बदल जाती है। मानव संसाधन उत्पादन में प्रयुक्त हो सकने वाली पूँजी है। मानव संसाधनों के विकास के लिए पुरूष एवं महिला वर्ग दोनों की भागीदारी समान रहती है, लेकिन मानव संसाधनों के विकास के लिए महिलाओं की सक्रिय भागेदारी सुनिश्चित करने के लिए उन्हें प्रोत्साहित कर सबल बनाया जाए ताकि ढ़ाँचागत तरीकों से उनमें लैंगिक असमानता को दूर करने के लिए प्रभावी नीतियों के अनुपालन में मानव संसाधनों के विकास की गति को और अधिक बढ़ाया जा सके और महिलाओं के आर्थिक स्तर को पुरूषों के बराबर लाकर अच्छे परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं। विशेष रूप से उद्यमिता एवं कौशल विकास कार्यक्रमों को लक्ष्य करके मानव संसाधन विकास में महिलाओं की भूमिका को नीतिगत रूप से अंगीकरण किया जाना अतिआवश्यक है, क्योंकि यह आर्थिक विकास से परिपूर्ण मानवीय उपक्रम है। मानव विकास के अंतर्गत जनसंख्या वृद्धिदर, जनघनत्व, लिंगानुपात, साक्षरता प्रतिशत, आयु संरचना, जीवन प्रत्याशा, साहसिक योग्यता, उद्यमीवृत्ति, जनसंख्या का व्यावसायिक विभाजन, शिक्षा, प्रशिक्षण-कौशल निर्माण आदि का अध्ययन भी सम्मिलित किया जाता है। कुमाऊँ की अर्थव्यवस्था में ग्रामीण महिलाओं की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है, क्योंकि कुमाऊँ क्षेत्र में प्रायः घरेलू कार्य महिलाओं द्वारा ही किये जाते हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व महिलाओं की स्थिति कुछ विशेष नहीं थी। लेकिन स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद शिक्षा के प्रसार से विभिन्न क्षेत्रों में उनकी स्थिति पहले से सुधार की ओर अग्रसर है। 2011 से जनपदवार जनसंख्या, जनघनत्व, लिंगानुपात एवं महिला साक्षरता में वृद्धि देखने को मिल रही है। आर्थिक क्रियाकलापों में कुमाऊँ की ग्रामीण महिलाओं की सहभागिता उनकी आर्थिक स्थिति के अनुसार उनकी कृषि एवं पशुपालन की आधारभूत अर्थव्यवस्था ही उनके आर्थिक समुन्नति को व्यक्त करती है। कृषि एवं पशुपालन के अतिरिक्त कताई-बुनाई, हस्त-शिल्प आदि उनके बुनियादी रूप से जुड़ी अर्थव्यवस्था का आधार है। इसके अलावा अन्य क्षेत्रों में भी उनकी सक्रिय भागीदारी मानवीय संसाधनों के विकास की गति को उच्चता प्रदान करते प्रस्तुत होती है।

संकेताक्षर : *मानव संसाधन, मानव विकास, मानव विकास सूचकांक, आर्थिक विकास, कुमाऊँ की अर्थव्यवस्था, कुमाऊँ की जनपदवार जनांकिकी।*

मानवीय संसाधनों से आशय किसी देश की जनसंख्या और उसकी शिक्षा, कुशलता व प्रशिक्षण आदि गुणों से होता है। किसी देश के मानव संसाधन के विकास से अभिप्रायः किसी देश की जनसंख्या के शिक्षा, प्रशिक्षण, स्वास्थ्य, कार्य-कुशलता आदि गुणों के विकास के लिए अपनाई गई प्रक्रिया से है। आर्थिक विकास की गति को तेज करने के लिए देश को प्रशिक्षण प्राप्त अध्यापकों, इंजीनियरों, डॉक्टरों, अर्थशास्त्रियों, पत्रकारों, कलाकरों, प्रबंधकों, शिल्पकारों, लेखकों आदि की आवश्यकता होती है, जो मानव संसाधनों के अभिन्न अंग होते है।

किसी देश के लिए मानव संसाधन का अर्थ स्वास्थ्य एवं शिक्षित श्रम अथवा कार्यशील जनसंख्या का उपलब्ध होना है। मानव विकास आर्थिक आयोजन के सभी विकास प्रयासों का केन्द्र बिन्दु है। मानव पूंजी मानव काल को उत्प्रेरित करती है और शिक्षा मंत्रालय, जिसे पहले मानव संसाधन विकास मंत्रालय के नाम से जाना जाता था। जिस प्रकार आर्थिक आयोजन उत्पादकीय का उद्देश्य साधनों का विवेकपूर्ण उपयोग करता है, उसी प्रकार मानव संसाधन विकास का उद्देश्य जनशक्ति का विवेकपूर्ण उपयोग है। किसी भी देशों के लिए उसकी जनसंख्या उसके आर्थिक विकास साधन और साध्य दोनों होती है। समस्त उत्पादन का मूल साधन मानव है। मानव उत्पादन का साधन ही नहीं बल्कि साध्य भी है क्योंकि वह उत्पादन करता है और उपभोग भी करता है। इस प्रकार मानवीय सेवाओं के रूप में तथा उपभोग इकाइयों के रूप में दोहरी भूमिका होती है। सारांशतः यह कहा जा सकता है कि मानव संसाधन के अंतर्गत केवल जनसंख्या की वृद्धिदर, जनघनत्व, स्त्री–पुरूष अनुपात, साक्षरता प्रतिशत, आयु संरचना, जीवन प्रत्याशा, साहसिक योग्यता, उद्यमीवृत्ति, जनसंख्या का व्यावसायिक विभाजन, शिक्षा, प्रशिक्षण कौशल निर्माण आदि अध्ययन भी सम्मिलित किया जाता है चूँकि आर्थिक विकास मानवीय उपक्रम है। अतः इस दृष्टि से एक उपक्रम के रूप में मानव संसाधनों के सभी पहलुओं इसके अंतर्गत शामिल किया जाता है। हालांकि मानव संसाधन कृषि शुरू होने से पहले दिन से ही व्यवसाय एवं संगठनों का एक भाग रहा है। सन् 1900 के आरंभ से ही उत्पादन की क्षमता बढ़ाने के तरीकों की ओर ध्यान देने से मानव संसाधन की आधुनिक अवधारणा शुरू हुई।

मानव विकास सूचकांक (Human Development Index)

मानव विकास सूचकांक आर्थिक विकास एक व्यष्टिनिष्ट अवधारणा है, जिसका परिमाणात्मक मापन संभव नहीं है। इसके गुणात्मक मापन का प्रयास ''संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम'' (U.N.D.P.) द्वारा वर्ष 1990 से सतत रूप से जारी है, जिसे 'मानव विकास रिपोर्ट' (H.D.R.) की संज्ञा दी जाती है। यह रिपोर्ट राष्ट्रों के 'मानव संसाधन' के सृजनात्मक विकास के सूचकांकों के आधार पर प्रकाशित की जाती है। मानव विकास सूचकांक स्वास्थ्य, शिक्षा एवं आय आदि के स्तर के आधार पर तैयार किया जाने वाला 'संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम' (U.N.D.P.) का सूचकांक है। वर्ष 2014 के मानव विकास रिपोर्ट जो 24 जुलाई 2014 को जारी की गई, जिसमें विश्व के 187 देशों के लिए मानव विकास सूचकांक दर्शाए गए है, जिसमें भारत का 135वाँ स्थान है।

सूचकांक का मान 0 और 1 के मध्य होता है। जिस देश के सूचकांक का मान जितना अधिक होता है, वह देश मानव विकास सूचकांक की श्रेणी में उच्चतम स्थान पर रहता है। 'संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम' (U.N.D.P.) द्वारा विभिन्न वर्षों के विभिन्न संघटकों को कई मानव मूल्य लेने के पश्चात मानव विकास सूचकांक के घटकों का न्यूनतम तथा उच्चतम मूल्य निर्धारित किया जाता है।

भारत की जनगणना 2011 के अनुसार जनसंख्या आकड़ें
तालिका – 1

	2001	2011
व्यक्ति	1,02,87,37,436	1,21,08,54,977
1.पुरूष	53,22,23,090 (51.73%)	62,32,70,258 (51.47%)
2.महिला	49,65,14,346 (48.27%)	58,75,84,719 (48.53%)
0–6 आयु जनसंख्या	-	16,44,78,150 (13.6%)
नगरीय प्रतिशत	27.81	31.1%
दशक में : वृद्धि दर	21.54	17.7
वार्षिक वृद्धि दर : में	1-97	1.64
लिंगानुपात	933:1000	943:1000

साक्षरता :	64.8	73.0
1. पुरूष साक्षरता :	75.26	80.9
2. महिला साक्षरता :	53.67	64.6
जनघनत्व (व्यक्ति/वर्ग किमी.)	325	382
जीवन प्रत्याशा	62.0 वर्ष	कुल 66.1 वर्ष
1.पुरूष	62.36 वर्ष	64.6 वर्ष
2.महिला	62 वर्ष	67.7 वर्ष

स्रोत – आर्थिक समीक्षा 2018–19

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि 2001 से 2011 की जनगणना के अनुसार पुरूषों की संख्या में कमी है जबकि महिलाओं की संख्या में वृद्धि हुई है। नगरीय जनसंख्या प्रतिशत में 2001 में 27.81 प्रतिशत से बढ़कर 31.1 प्रतिशत हो गयी है जबकि दशकीय वृद्धि दर में कमी है। महिला, पुरूष लिंगानुपात में जो 2001 में 933 से बढ़कर 2011 में 943 हो गयी है। साथ ही महिला साक्षरता में 10 प्रतिशत वृद्धि हुई है। जनघनत्व 2001 में 325 से बढ़कर 2011 में 382 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी. हो गयी है। जीवन प्रत्याशा में भी 2006–2010 पुरूष 64.6 वर्ष एवं महिला 67.7 वर्ष, कुल 66.1 वर्ष हो गयी है।

कुमाऊँ में महिलाओं की स्थिति

कुमाऊँ की ग्रामीण अर्थव्यवस्था में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका है। यहाँ पर अधिकांश पारिवारिक कार्य महिलाओं द्वारा ही किये जाते हैं। चाहे कृषि से संबंधित हो या पशुओं, बच्चों से, समस्त कार्य महिलाओं द्वारा किये जाते हैं। इसलिए महिलाओं की ग्रामीण अर्थव्यवस्था की रीढ़ मानी जाती है। स्वतंत्रता से पूर्व के विभिन्न कालों में महिलाओं की स्थिति अच्छी नहीं मानी जा सकती है। उच्च वर्ग की स्त्रियों के अतिरिक्त अन्य वर्गों की स्त्रियों की शिक्षा पर ध्यान नहीं दिया जाता था। उन्हें शिक्षा के स्थान पर गृह कार्यों में दक्ष बनाना उचित समझा जाता था।

स्वतंत्रता के बाद महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक स्थिति में अंतर आया है एवं महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन हुआ है, उनकी शिक्षा पर पर्याप्त ध्यान दिया जा रहा है। वर्तमान में उत्तराखण्ड की स्त्रियाँ गृह कार्यों का निर्वहन करते हुए राजनीति, प्रशासन, समाज–सेवी, अध्ययन–अध्यापन, सेना आदि क्षेत्रों में भी नई–नई ऊँचाइयों को छू रही है। कुमाऊँ की ग्रामीण महिलाओं की साक्षरता, स्त्री–पुरूष अनुपात दर भी संतोषजनक है।

2011 की जनगणनानुसार कुमाऊँ की जनसंख्या का विवरण
तालिका – 2

क्रम	जनपद	जनसंख्या प्रतिशत	जनघनत्व	लिगांनुपात	महिला साक्षरता	ग्रामीण जनसंख्या
1	नैनीताल	9.46	225	934	77.29	61.06
2	ऊधम सिंह नगर	16.35	649	920	64.45	64.40
3	अल्मोड़ा	6.17	198	1139	69.93	89.99
4	बागेश्वर	2.58	116	1090	69.03	86.51
5	पिथौरागढ़	4.79	68	1020	72.29	85.60
6	चम्पावत	2.57	147	980	68.05	85.23
उत्तराखण्ड		**100%**	**189**	**963**	**70.0**	**69.80**

स्रोत – जनगणना 2011 के अंतरिम आकड़ें,

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि कुमाऊँ में सर्वाधिक जनसंख्या वाला जनपद ऊधमसिंह नगर तथा सबसे कम जनसंख्या जनपद चंपावत है। सर्वाधिक जनघनत्व वाला जनपद ऊधमसिंह नगर तथा सबसे कम जनघनत्व जनपद पिथौरागढ़ है। लिगांनुपात सर्वाधिक अल्मोड़ा एवं सबसे कम ऊधम सिंह नगर में है। महिला साक्षरता सर्वाधिक जनपद नैनीताल में 77.29 प्रतिशत और सबसे कम ऊधम सिंह नगर में 64.45 है। ग्रामीण जनसंख्या सबसे अधिक अल्मोड़ा जनपद में 89.99 प्रतिशत और सबसे कम नैनीताल में 61. 06 प्रतिशत निवास करती है। संपूर्ण उत्तराखण्ड की ग्रामीण जनसंख्या 69.80 प्रतिशत है।

आर्थिक क्रियाकलापों में सहभागिता

पर्वतीय क्षेत्रों में अधिकांश युवा पुरूषों के पलायन से यहाँ की संपूर्ण अर्थव्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई है। जिस कारण महिलाओं का कार्यभार बढ़ गया है और वह यहाँ की अर्थव्यवस्था की धुरी बन गई है। कार्य की दृष्टि से पर्वतीय एवं मैदानी क्षेत्रों की महिलाओं में काफी अंतर है। कुमाऊँ की अर्थव्यवस्था पूर्णतया कृषि एवं पशुपालन पर निर्भर है। यहाँ महिलाऐं सुबह से शाम तक खेतों में ढ़ेले तोड़ना, फसलों कटाई-मड़ाई, घास, लकड़ी की व्यवस्था करना, पेयजल भरकर लाना, दूध दुहाना, बच्चों की देखभाल करना तथा परिवार के लिए भोजन तैयार करना आदि कार्य करती हैं। उत्तराखण्ड में कुल जनसंख्या का 35.20 प्रतिशत महिला श्रमिक है जो कि राज्य के औसत से अधिक है। कुल कर्मकारों में से 41.01 प्रतिशत कर्मकार महिलाऐं हैं। उत्तर प्रदेश से विभाजन के बाद उत्तराखण्ड राज्य को वर्ष 2000-2001 में अर्थव्यवस्था 14501 करोड़ रूपये और प्रति व्यक्ति आय मात्र 15286 रूपये थी। वर्ष 2000-01 से लेकर वर्ष 2004-05 तक विकास दर 7.12 प्रतिशत और वर्ष 2011-12 में यह बढ़कर 13.93 प्रतिशत हो गई। वर्ष 2011-12 को आधार वर्ष मानने पर वर्ष 2018-19 में राज्य का सकल घरेलू उत्पाद 2,45,895 करोड़ रूपये आंका गया। स्थायी भाव पर विकास दर 6.87 प्रतिशत और प्रति व्यक्ति आय 1,98,783 रूपये आंकी गई है।

राज्य गठन के बाद से राज्य की आर्थिक स्थिति में अब तक कई बदलाव हुए हैं। वर्ष 2000 में मात्र 14.5 हजार करोड़ रूपये की अर्थव्यवस्था बन चुकी है। प्रति व्यक्ति आय में भी इसी तरह का बदलाव हुआ है। छोटा राज्य होने के कारण थोड़े से ही सुधार से राज्य की अर्थव्यवस्था में यह अभूतपूर्व बदलाव देखने को मिला है। यह अर्थव्यवस्था में कार्यरत जनसंख्या का प्रतिशत इस प्रकार है -

तालिका - 3

राज्य की अर्थव्यवस्था के घटक	क्षेत्र	प्रतिशत
प्रारंभिक क्षेत्र	फसल (कृषि)	43.19
	पशुधन	24.35
	वन/लौगिंग	17.36
	खनन	15.81
	मतस्य	0.29
द्वितीयक क्षेत्र	विनिर्माण (मैन्युफैक्चरिंग)	76.29
	विद्युत, गैस, पानी, एवं अन्य सेवाऐं	8.83
	निर्माण (कंस्ट्रक्शन)	14.88
तृतीयक क्षेत्र	श्रेलवे	0.44
	परिवहन (रेलवे से अलग)	4.73
	भंडारण	0.03
	संचार सेवाऐं	14.13
	ट्रेड, होटल	34.03
	वित्तीय सेवाऐं	6.10
	रियल स्टेट	12.60
	लोक प्रशासन	11.16
	अन्य सेवाऐं	16.78

स्रोतः आर्थिक सर्वे, 2018-19

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि सर्वाधिक जनसंख्या प्रतिशत प्राथमिकता क्षेत्र फसल (कृषि) में 43.19 प्रतिशत, द्वितीयक क्षेत्र विनिर्माण में 76.29 एवं तृतीयक क्षेत्र ट्रेड, होटल सेवाओं में 34.03 प्रतिशत लगे हैं।

मानव संसाधन दशकीय वृद्धि दर

2011 की जनगणना के अनुसार 2001–2011 के दौरान राज्य में जनसंख्या का दशकीय वृद्धि दर 18. 80 प्रतिशत रहा, जो कि इसी अवधि के राष्ट्रीय औसत (17.70 प्रतिशत) से अधिक है। दशकीय वृद्धिदर में देश के सभी राज्यों में उत्तराखण्ड का 17वाँ स्थान हैं।

कुमाऊँ के जनपदवार दशकीय वृद्धि दर
तालिका – 4

जनपद	1991–01	2001–11
नैनीताल	32.72	25.13
ऊधम सिंह नगर	33.60	33.45
चंपावत	17.60	15.63
पिथौरागढ़	10.95	4.58
बागेश्वर	9.28	4.18
अल्मोड़ा	3.67	(–)1.28

स्रोत – केशरी नन्दन त्रिपाठी, उत्तराखण्ड : एक अध्ययन, बौद्धिक प्रकाशन इलाहाबाद 2015–16

वर्ष 2001–2011 के दौरान कुमाऊँ में सर्वाधिक दशकीय वृद्धिदर वाला जिला ऊधम सिंह नगर रहा, जबकि सबसे कम दशकीय वृद्धिदर वाला जिला अल्मोड़ा रहा है। 1991–2001 के दौरान सर्वाधिक दशकीय वृद्धिदर वाला जिला ऊधम सिंह नगर ही था। वर्ष 2001–2011 के अनुसार कुमाऊँ में अल्मोड़ा जिला (–1.28) की दशकीय वृद्धिदर शून्य से नीचे रही है।

उत्तराखण्ड राज्य में जनसंख्या घनत्व

एक वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में निवास करने वाले व्यक्तियों की औसत संख्या को जनघनत्व कहते है। जनगणना– 2011 के अनुसार राज्य का जनघनत्व 159 था, जो वर्ष 2011 में 30 बढ़कर 189 हो गया है।

कुमाऊँ के जिलेवार जनघनत्व
तालिका – 5

जनपद	1991–01	2001–11
ऊधम सिंह नगर	486	649
अल्मोड़ा	201	198
नैनीताल	179	225
चंपावत	127	147
बागेश्वर	110	116
पिथौरागढ़	65	68

स्रोत – केशरी नन्दन त्रिपाठी, उत्तराखण्ड : एक अध्ययन, बौद्धिक प्रकाशन इलाहाबाद 2015–16

वर्ष 2001–2011 में कुमाऊँ मण्डल का सर्वाधिक जनघनत्व ऊधम सिंह नगर में 2001–11 के दशक में 486 से बढ़कर 649 हो गया, जिसमें 163 वर्ग किमी. वृद्धि हुई है, जबकि सबसे कम जनघनत्व पिथौरागढ़ में 2011 के अनुसार 68 है।

कुमाऊँ के जिलेवार लिंगानुपात का अवलोकन
तालिका – 6

जनपद	लिंगानुपात (2001)	लिंगानुपात (2011)	शिशु लिंगानुपात (2011)
अल्मोड़ा	1145	1139	922
बागेश्वर	1106	1103	905
पिथौरागढ़	1031	1020	816
चंपावत	1021	980	873
नैनीताल	906	934	902
ऊधम सिंह नगर	902	920	899

स्रोत – केशरी नन्दन त्रिपाठी, उत्तराखण्ड : एक अध्ययन, बौद्धिक प्रकाशन इलाहाबाद 2015–16

वर्ष 2001–2011 की जनगणना के अनुसार कुमाऊँ मण्डल का सर्वाधिक और सबसे कम लिंगानुपात वाले जनपद क्रमशः अल्मोड़ा (1139) और ऊधम सिंह नगर (920) है। है। कुमाऊँ के दो जनपद ऊधम सिंह नगर एवं नैनीताल का लिंगानुपात राष्ट्रीय औसत (940) से कम है। पूर्व दशक की अपेक्षा लिंगानुपात में सर्वाधिक वृद्धि नैनीताल एवं कमी चंपावत में हुई हैं। चंपावत जिले में वर्ष 1991 की तुलना में 2001 में लिंगानुपात में 76 की वृद्धि हुई थी। इन 10 वर्षों में आश्चर्यजनक रूप से चंपावत में लिंगानुपात स्तर गिरा

है। जनगणना–2011 के अनुसार राज्य के ग्रामीण क्षेत्रों में लिंगानुपात 1000 व शहरी क्षेत्रों में 884 पाया गया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *भारतीय अर्थव्यवस्था, डॉ0 वी0 सी0 सिन्हा, साहित्य भवन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स आगरा, 2007, पृ0 – 159*
2. *आर्थिक संवृद्धि एवं नियोजन 2007, साहित्य भवन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स आगरा, 2001, पृ0 – 61*
3. *आर्थिक विकास एवं नियोजन, डॉ0 वी0 सी0 सिन्हा, एस0बी0पी0डी0 पब्लिकेशन आगरा, 2013 (नवीन संस्करण), पृ0 – 53*
4. *उत्तराखण्ड का राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, घनश्याम जोशी, प्रकाश बुक डिपो बरेली, 2017, पृ0 – 212*
5. *सामान्य अध्ययन विशेषांक, 'जनसंख्या एवं नगरीकरण' (जनसंख्या–2011 के अंतिम आकड़ें), एस0 के0 उओझा, बौद्धिक प्रकाशन इलाहाबाद, 2014, पृ0 – 64 एवं 65*
6. *वही, पृ0 – 05, 10, एवं 12*
7. *वही, पृ0 – 142 एवं 143*

आधार ग्रन्थ

1. *उत्तराखण्ड की अर्थव्यवस्था, पाण्डे जी0 सी0, कंसल पब्लिशर्स नैनीताल, के0 के0 प्रिंटर्स, कमला नगर दिल्ली, 1977*
2. *एटकिंसन, ई0 टी0 दि हिमालयन गजेटियर, वॉल्यूम –2*
3. *कपूर, पी0 (1973) ''चेन्जिंग स्टेटस ऑफ वर्किंग वूमेन इन इंडिया'' विकास पब्लिकेशन, देहली*
4. *ऊषा, राव एन0 जे0 ''वूमेन इन ए डैवलपिंग सोसाइटी'' आशीष पब्लिकेशन हाउस, पंजाबी बाग, देहली*
5. *उत्तराखण्ड ईयर बुक (2020), बिनसर पब्लिसिंग क0, देहरादून*

क्षेत्रवाद : भारतीय लोकतंत्र के संदर्भ में

डॉ. राजेश कुमार रावत
सहायक आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, एस.एस. जैन सुबोध पी.जी. कॉलेज, जयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही भारतीय जन मानस में नवीन आकांक्षाए उठने लगी, राज्य के नीति निर्देशक तत्व, पंचवर्षीय योजनाएँ आदि कार्यक्रम आदर्श थे, लेकिन इनके बाद बावजूद व्यवहार में गरीबी और आर्थिक विषमता की बढ़ती गयी इस स्थिति का स्वभाविक परिणाम यह हुआ कि राष्ट्रीय एकता और हितों की अपेक्षा क्षेत्रवाद को बढ़ावा मिलने लगा। असंतोष के इस वातावरण में विभिन्न वर्गों द्वारा शक्ति के लिए संघर्ष की शुरुआत हुई। ऐसे नवीन राजनैतिक दलों का उदय होने लगा, जो कि क्षेत्रीय हितों को लेकर शक्ति अर्जित करने लगें। क्षेत्रवाद का भारतीय समाज पर काफी प्रभाव पड़ा तथा आंदोलनात्मक राजनीति को बढ़ावा मिला। क्षेत्रीय आंदोलनों को चलाने के लिए आर्थिक विषमता, धर्म, जाति और भाषा का सहारा लिया गया। क्षेत्रवाद की समस्या भारत की राष्ट्रीय एकता के मार्ग में कटंक बन गयी है। क्षेत्रवाद भारतीय राजनीति का महत्वपूर्ण निर्धारिक तत्व तथा राष्ट्रीय एकीकरण की प्रमुख चुनौती रहा है। विविध वर्गों को एवं क्षेत्रों को पारस्परिक सांस्कृतिक लक्षणों से परिचित कर अनेकता में एकता की गौरवपूर्ण भावना के विकास का प्रयास कर राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ किया जाये। संकीर्ण क्षेत्रवाद का शीघ्र उन्मूलन अखण्ड, लोकतांत्रिक विकसित एवं प्रगति की ओर अग्रसर भारत के लिए आवश्यक है ताकि समाज का बहुलतावादी समग्र विकास किया जा सके।

संकेताक्षर : *क्षेत्रवाद, भारत, लोकतंत्र, राज्य, विषमता, संस्कृति, धर्म, भाषा, जाति।*

भारत वर्ष के भौगोलिक दृष्टि से विशालता के साथ सामाजिक–सांस्कृतिक विविधता पायी जाती है। एक राष्ट्र में विविध भाषा, संस्कृति और जाति समुदाय के लोग मिलकर विविधतापूर्ण परिवेश का निर्माण करते है। विविध भाषा, लिपि, साहित्य, संस्कृति, रीति–रिवाज एवं जीवन–दर्शन वाले लोगों के निवास ने भारतीय संस्कृति एवं समाज को इंद्रधनुषी रूप दिया है। किंतु यही विविधता राष्ट्र की एकता के लिए घातक बन जाती है। जब समाज के विभिन्न वर्गों के लोगों में संकीर्ण हितों के आधार पर पारस्परिक संघर्ष एवं द्वंद उत्पन्न हो जाये। समाज के बहुलवादी चरित्र को बनाये रखने के लिए उसके सभी भागों का संतुलित विकास होना आवश्यक है, मगर जब आर्थिक नियोजन की विफलता के परिणाम स्वरूप किसी एक भाग का विकास ना हो तो वहाँ असंतोष उत्पन्न होता है और यही असंतोष क्षेत्रवाद के रूप में मुखरित होता है। विकासशील समाजों की एक महत्वपूर्ण समस्या राष्ट्रीय एकीकरण की रही है। राष्ट्रीय एकीकरण के भावात्मक तत्वों की जब हम खोज करते हैं तो हमारा ध्यान उन जातीय, भाषागत, धार्मिक, क्षेत्रीयता पर जाता है जो संकीर्ण क्षेत्रवाद को बढ़ावा देते है। क्षेत्रवाद के आधार पर राष्ट्रीय के स्थान पर क्षेत्र विशेष के हितों एवं मांगों की पूर्ति के स्वर विखण्डतावाद को बढ़ावा देते है जो राष्ट्रीय एकता में बाधक है।

क्षेत्रवाद का अर्थ

भारतीय समाज में क्षेत्रवाद एक अपभ्रंश–प्रयोग हैं जिसका आशय है राष्ट्रों की तुलना में किसी क्षेत्र विशेष अथवा राज्य या प्रांत या छोटे क्षेत्रों से लगाव। यह राष्ट्रीय भावना के विपरीत है। संकीर्ण क्षेत्रीय हितों की पूर्ति करना इसका उद्देश्य होता है। क्षेत्रवाद से तात्पर्य एक देश के किसी भाग में उस छोटे से क्षेत्र से है जो आर्थिक, भौगोलिक,

सामाजिक, प्रजातीय आदि कारणों से अपने पृथक अस्तित्व के लिए जागरूक है। यह ऐसी प्रवृत्ति है। जिसमें क्षेत्र विशेष के लोग अपने लिए आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक शक्तियों के अधिकाधिक मांग करते है। डॉ. श्री राम माहेश्वरी के अनुसार ''क्षेत्र एक प्रकार से सामाजशास्त्रीय अवधारणा है। जिसे विविध सांप्रदायिक हितों की अभिव्यक्ति की धुरी कहा जा सकता है'' भारतीय समाज के संदर्भ में क्षेत्रवाद से अभिप्राय है राष्ट्रों की तुलना में किसी क्षेत्र विशेष अथवा राज्य या प्रांत की अपेक्षा एक छोटे क्षेत्र से लगाव, उसके प्रति भक्ति या विशेष निष्ठा दिखाना। इस दृष्टि से क्षेत्रवाद व राष्ट्रवाद की वृहद भावना का विलोम है और इसका ध्येय संकुचित क्षेत्रीय स्वार्थो की पूर्ति होता है, यह एक ऐसी धारणा है जो प्रजाति भाषा धर्म क्षेत्र आदि पर आधारित है और जो प्राय विघटनकारी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन देती है। क्षेत्रवाद की भावना सारे देश में व्याप्त है जो सुनियोजित आंदोलनों, अभियानों पारस्परिक संघर्षो के रूप में अभिव्यक्त होती है

क्षेत्रवाद के कारण

क्षेत्रवाद की जड़े स्वतंत्रता पूर्व के ब्रिटिश भारत में ही मौजूद हैं। तक अंग्रेजों ने प्रशासन सुविधा की दृष्टि से देश के प्रांतों को दोषपूर्ण विभाजन किया।[1] स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारतीय संघ की विविध–इकाइयों का जिसमें विविध वर्गो भाषा, संस्कृति, जीवन–शैली वाले व्यक्तियों का निवास था। समानता के आधार पर भारतीय संघ में विलय कर दिया तब से असंतुष्ट वर्गो ने क्षेत्रवाद के आधार पर नयी–नयी मांगें उठाई हैं जिससे स्वतंत्रता के पश्चात सुनियोजित आंदोलन के रूप में संकीर्ण क्षेत्रवाद की भावना का उदय हुआ है। भारतीय समाज में क्षेत्रवाद के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं।

1. **भौगोलिक कारणः–** भौगोलिक दृष्टि से समस्त भारत में विविधता व्याप्त है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात जब राज्यों का पुनर्गठन किया गया तो आकार की विशिष्टता एवं भौगोलिक विविधता का ध्यान नहीं रखा गया भौगोलिक दृष्टि से जहां राज्यों के आकार में असमानता है। राजस्थान, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, बिहार, बड़े राज्य हैं तो मिजोरम, नागालैंड, केरल, राज्य का आकार छोटा है। आज देशों के राज्यों में भौगोलिक दृष्टि से अनेक ऐसी उप–इकाइयां हैं जो पृथक राज्य बन सकते है। बड़े राज्यों में संसाधनों का असंतुलित आवंटन, प्रशासन में शिथिलता तथा आर्थिक पिछड़ेपन के कारण पृथक राज्यों की मांग समय–समय पर उठती है।

2. **आर्थिक कारणः–** स्वतंत्रता के पश्चात राष्ट्र के विकास के लिए नियोजन का जो मार्ग अपनाया गया था उसके सकारात्मक परिणामों के बावजूद आर्थिक विकास की दृष्टि से कुछ राज्य पिछड़े रह गये हैं तथा कुछ राज्यों का तेजी से विकास हुआ है। इससे पिछड़े हुए राज्यो (क्षेत्रों) में विषमताओं एवं असंतोष के कारण क्षेत्रीय स्वायत्तता की मांग उठने लगी। आंध्रप्रदेश में तेलंगाना, राजस्थान में दक्षिण–पूर्वी राजस्थान महाराष्ट्र में विदर्भ क्षेत्र एवं बिहार में छोटानागपुर क्षेत्र पिछड़ा गया है परिणाम स्वरूप इन क्षेत्रों से आर्थिक संसाधनों के लाभप्रद आवंटन की मांग उठाई गई है और क्षेत्रवाद की भावना के कारण यह पृथक पृथक राज्य की मांग करने लगे है।

3. **ऐतिहासिक कारणः–** भारतवर्ष में क्षेत्रवाद ऐतिहासिक विरासत है स्वतंत्रता पूर्व ब्रिटिश शासकों ने साम्राज्य के हितों की आवश्यकता अनुसार ब्रिटिश भारत में अनेक निर्णय को लागू किया। कृषि सुधार, प्रशासनिक तंत्र की स्थापना, औद्योगिक विकास शिक्षा रोजगार की सुविधा आदि मुद्दों का निर्धारण संपूर्ण क्षेत्र के विकास को दृष्टि से नहीं वरन औपनिवेशिक हितों से प्रेरित था। इससे विकास की दृष्टि से क्षेत्रों में असंतुलन उत्पन्न हो गया। कालांतर में इससे उपजे असंतोष ने क्षेत्रवाद का रूप लिया

4. **जातिवादः–** क्षेत्रवाद की प्रवृत्ति में जाति का कारण भी निर्णायक रहा है। ऐसे क्षेत्र जहां एक ही जाति की प्रधानता है वहां जातिवाद को बढ़ावा मिला है उस क्षेत्र के लोगों में क्षेत्रवाद की भावना पनपी है। तमिलनाडु में तमिल भाषा एवं गैर ब्राह्मणों का संघर्ष पंजाब में सिखों और जाटों का संघर्ष तथा हरियाणा में महाराष्ट्र में भी जातिवाद तत्वों में क्षेत्रवाद की भावना को बढ़ाया है। **रजनी कोठरी के अनुसार– ''जाति व्यवस्था क्षेत्रवाद के लिए अपने आप में बहुत महत्वपूर्ण तत्व नहीं होते हुए भी, जहां यह आर्थिक हितों (जैसे– महाराष्ट्र**

मराठा जाति) भाषायी समुदायों (जैसे–तमिलनाडु में तमिल भाषा गैर ब्राह्मण जातियों) और धर्म (पंजाब में सिख जाट) के साथ जुड़ी हो, वहां क्षेत्रवाद को प्रबल बनाने में सहायक सिद्ध होती है।'' इस प्रकार जातिवाद ने समाज के अनेक संबंधित तत्वों को प्रभावित करते हुए क्षेत्रवाद को बढ़ाने में अपनी भूमिका निभाई है।

भारतीय समाज एवं राजनीति में क्षेत्रवाद के विभिन्न स्वरूप

भारतीय समाज में क्षेत्रवाद की प्रवृत्ति की चर्चा करते हुए प्रो. रजनी कोठारी ने अपनी पुस्तक 'पॉलिटिक्स इन इंडिया' में लिखा है कि ''(1) पहला देश के सामने एक खतरा राज्यों के संघ से अलग हो जाने का था। ''(2) कुछ लोगों ने आशंका प्रकट की थी कि प्रांतीयता की भावना या प्रदेश के लिए अधिकार या स्वायत्तता की मांग बढ़ती गई तो इससे यह तो देश अनेक छोटे–छोटे स्वतंत्र राज्यों में बट जाएगा या यहां तानाशाही कायम हो जाएगी। ''(3) पृथकता की भावना उनमें ज्यादा बलवान या खतरनाक है जहां ऐसी आर्योत्तर जातियाँ हैं जो भारतीय संस्कृति की धारा में पूरी तरह नहीं मिल पाई है। जैस– उत्तर–पूर्व की आदिम जातियों का इलाका (4) कुछ क्षेत्रों में अभी भी असंतोष है जैसे बिहार में छोटानागपुर तथा मध्य प्रदेश में आदिवासी इलाके और गुजरात में उड़ीसा में आदिवासियों का स्वायत्तता का आंदोलन (5) राज्यों के भीतर विशिष्ट क्षेत्रों के अलगाव आंदोलन उठ रहे हैं। दबे हुए वर्गों और आर्थिक रूप से पिछड़े समूह के राजनीतिक क्षेत्रों में आने से अधिकार के उनकी आकांक्षाओं से नई समस्या उठ खड़ी रही है।''

भारतीय समाज एवं राजनीति में क्षेत्रवाद की प्रवृतियां निम्न रूप में दृष्टिपात होती हैं।[2]

1. **भारतीय संघ से प्रथक होने की मांगः–** भारतवर्ष में क्षेत्रवाद का सबसे भयानक रूप भारतीय संघ ने प्रथम प्रथक होने की मांग है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात सर्वप्रथम 1950 में तमिलनाडु के राजनीतिक दल द्रविड़ मुनेत्र कड़गम ने मद्रास राज्यों को भारतीय संघ विलग करने की मांग की थी। इस मांग के तहत भारतीय संघ से अलग कर एक 'द्रविडिस्थान' राज्य की मांग की गयी। जिसमें मद्रास, आंध्रप्रदेश, केरल तथा मैसूर राज्य शामिल थे। इस तरह की विघटनकारी मांगों को रोकने के लिए भारत सरकार ने संविधान में 16वें संशोधन द्वारा अक्टूबर 1963 में संसद को ऐसे कानून के निर्माण का अधिकार दिया गया जिसके द्वारा भारत की संप्रभुता और अखंडता की चुनौती देने वाले व्यक्तियों को दण्डित किया जा सके। इसके साथ ही संसद अथवा राज्य विधान मण्डलों के चुनाव में भाग लेने वाले उम्मीदवारों के लिए यह आवश्यक कर दिया कि संविधान के प्रति निष्ठा की तथा देश की प्रभुसत्ता और अखंडता की रक्षा की वे शपथ लें। अकाली दल ने स्वतंत्रता पूर्व ही मास्टर तारासिंह के नेतृत्व में पृथक सिक्ख राज्य की मांग की थी। 1950 से 1969 के दौरान पुनः पृथक सिखिस्थान की मांग की गयी। 1980 के दशक में डॉ. जगजीत सिंह के नेतृत्व में अकाली दल ने खालिस्थान राज्य की मांग के लिए आंदोलन चलाया। शुरुआत में यह आंदोलन, धरनें, प्रदर्शन, अनशन तक सीमित था। किंतु बाद में इस आंदोलन ने उग्रवादी रूप धारण कर लिया। जिसे तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने सशस्त्र अभियान ''ऑपरेशन ब्लू स्टार'' द्वारा समाप्त करवा दिया। अन्य क्षेत्रों जैसे उत्तर पूर्व में ''नागा एवं मिजों'' द्वारा भी भारतीय संघ से पृथक होने की मांग की गयी। 1962 में संविधान के 13वें संशोधन द्वारा नागालैंड को भारतीय संघ का पूर्ण राज्य तथा 1985 में 'मिजोरम' का पूर्ण राज्य का दर्जा दिया गया। इसी प्रकार समय–समय पर पृथक तेलंगाना, स्वतंत्र गोरखालैंड स्वतंत्र कश्मीर हेतु पृथकवादी हिंसक आंदोलन चलाए गए है।

2. **पृथक राज्यों की मांगः–** क्षेत्रवाद का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष पृथक राज्यों की मांग कर रही है। आर्थिक पिछड़ेपन, जाति, भाषा धर्म को लेकर विभिन्न क्षेत्रों द्वारा पृथक राज्य की मांग समय–समय पर उठायी गयी तथा क्षेत्रीय आंदोलन की शुरुआत की गयी। महाराष्ट्र, गुजरात, पंजाब, मेद्यालय, झारखण्ड, उत्तराखण्ड एवं छत्तीसगढ़ राज्यों का गठन पृथक राज्यों के लिए की गयी निरंतर मांग का ही परिणाम है। स्वतंत्रता के पश्चात 1956 में सर्वप्रथम भाषागत आधार पर ही राज्यों का पुनर्गठन किया गया था। किंतु इस पुर्नगठन से असंतुष्ट देश के विविध–वर्गों ने विविध–क्षेत्रों से नवीन राज्यों के गठन की मांग उठायी गयी। 1960 में गुजराती एवं मराठी भाषा

के आधार पर बम्बई राज्य का विभाजन कर महाराष्ट्र व गुजरात राज्य की स्थापना की गयी। 1966 में पंजाब राज्य का पुर्नगठन कर पंजाब हरियाणा एवं चण्डीगढ़ का गठन किया गया था। पंजाब, हरियाणा को पूर्ण राज्य का दर्जा दिया गया चण्डीगढ़ को केंद्रशासित प्रदेश बनाया गया। 1968 में असम राज्य का पुनर्गठन कर मेघालय, 1972 में भूतपूर्व संघीय प्रदेश मणिपुर एवं त्रिपुरा को पूर्ण राज्य का दर्जा दिया गया था। पुराने राज्यों का पुर्नगठन कर नवीन राज्यों के गठन के क्रम में देश की संसद नें अगस्त 2000 में उत्तर प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम पारित कर उत्तराखंड, अगस्त 2000 में ही बिहार पुनर्गठन अधिनियम पारित कर नवगठित राज्यों के बावजूद अनेक नये राज्यों के गठन की मांग उठायी जा रही है। जैसे उत्तर–प्रदेश में पूर्वांचल, हरितप्रदेश एवं बुलन्दखण्ड, महाराष्ट्र में विदर्भ, गुजरात में सौराष्ट्र, आंध्रप्रदेश में तेलंगाना, असम में बोडोलैण्ड तथा पश्चिम में गोरखालैंड आदि इनमें से अनेक राज्यों की मांग अव्यवहारिक भी है। परन्तु क्षेत्र की संकीर्ण मनोवृति के कारण आदि किसी अल्पसंख्यक समुदाय को विकास के अवसर नहीं मिलते रोजगार एवं अन्य कल्याणकारी योजना का लाभ नहीं मिलता है तो वह पृथक राज्यों की मांग करने लगता है।

3. **क्षेत्रवाद और केंद्र राज्य तनावः–** भारतीय राजनीति के क्षेत्रवाद की अभिव्यक्ति केंद्र व राज्यों के बीच हुई विवादों में भी हुई है। राज्यों ने अपने स्वतंत्र अस्तित्व बनाए रखने के लिए अनेक बार केंद्र के निर्देशों की अवहेलना की है। राज्यों द्वारा केंद्र के निर्देशों का पालन न करना तथा केंद्र की नीति का विरोध करना केंद्र के निर्णयों को लागु न करना आदि क्षेत्रवाद की नीति के द्योतक है। 1968 में पश्चिम बंगाल के दार्जिलिंग और नक्सलवादी क्षेत्रों में होने वाले उपद्रवों से चिंतित होकर केंद्रीय सरकार ने उपद्रवग्रस्त क्षेत्रों में हथियार रखने पर प्रतिबंध लगा दिया जिससे राज्य सरकार ने राज्य में मामले में केंद्र के हस्तक्षेप की संज्ञा दी। केंद्र द्वारा राज्यों में केंद्रीय रिजर्व पुलिस भेजने का राज्यों ने बराबर विरोध किया है। केन्द्र से अधिकतम वित्तीय स्रोतों को प्राप्त करने के लिए राज्यों ने केंद्र के विरुद्ध संघर्ष का रूख अपनाया। कई बार अन्तर्राष्ट्रीय विवादों के समाधान में राज्यों ने केंद्र के निर्णय को मानने से इनकार कर दिया। वस्तुतः भारतीय संविधान द्वारा शक्ति विभाजन की दृष्टि से विधायी प्रशासनिक एवं वित्तीय शक्तियों के विभाजन में केंद्र को अधिक सशक्त बनाया गया है। राष्ट्रीय एकता एवं अखंडता हेतु सशक्त केंद्र होना आवश्यक था किंतु पिछले छः दशकों में क्षेत्रवाद की संकीर्ण प्रवृत्ति के कारण केंद्र–राज्य संबंधों में तनाव उत्पन्न हुआ है।

4. **क्षेत्रवाद एवं भाषायी विवादः–** क्षेत्रवाद का एक अन्य स्वरूप देश में भाषायी विवादों के रूप में अभिव्यक्त हुआ है। संविधान में हिंदी को राजभाषा घोषित किया गया था तथा भाषा के आधार पर राज्यों का निर्माण एवं 1956 में भाषायी आधार पर राज्यों का पुनर्गठन हुआ था। दक्षिण के राज्यों द्वारा हिंदी विरोध एवं हिंदी को राजभाषा के रूप में थोंपे जाने के प्रयास में भाषा के प्रश्न को लेकर उत्तर तथा दक्षिण के राज्यों में हिंसात्मक आन्दोलन हुए और राष्ट्रीय एकता संकट में पड़ गयी। मारिन जोन्स लिखते है कि ''दक्षिण भारत में हिंदी का जोरदार विरोध किया, बंगाल ने उससे कम विरोध किया और देश के अन्य भागों के शिक्षित वर्ग के लोगों ने सीमित रूप से इसका विरोध किया।'' असम में भाषा की राजनीति आंदोलन की प्रेरणा स्रोत रही हैं। वहां बांग्ला, असमी एवं हिन्दी भाषा को लेकर परस्पर विवाद हुआ। पंजाबी, मराठी, गुजराती आदि भाषाओं के आधार पर पृथक राज्यों के गठन की मांग की गयी। इस प्रकार भाषा को लेकर राजनीतिक दलों में प्रांतवाद/क्षेत्रवाद की भावना को प्रेरित किया। भाषा के राजनीतिक हथियार के रूप में प्रयोग ने विभिन्न वर्गों ने अनावश्यक तनाव उत्पन्न किया है।

5. **क्षेत्रवाद और स्वायत्तता की मांगः–** भारतीय संविधान द्वारा ऐसे संघवाद की स्थापना की गई जिसमें स्वभाविक रूप से केंद्र अधिक शक्तिशाली है। पिछले कुछ वर्षो से यह मांग की जाती रही है कि भारतीय संविधान के संघवाद से संबंधित प्रावधानों का पुनर्निर्माण किया जाना चाहिए तथा राज्यों की केंद्र पर अत्यधिक निर्भरता को कम कर दिया जाना चाहिए। यह मांग की गयी है कि राज्यों को अत्यधिक स्वतंत्रता दी जानी चाहिए। स्वतंत्रता की मांग के साथ–साथ, कभी–कभी पृथकतावादी

स्वर भी जोर पकड़ने लगते हैं। स्वायत्तता की यह मांग उन दिनों बड़ी प्रबल हो जाती है। जबकि केंद्र और राज्यों में पृथक-पृथक राजनीतिक दलों की सरकारें होती है। पंजाब में मास्टर तारासिंह के नेतृत्व में अकाली दल द्वारा सिखों के स्वतंत्र राज्यों की मांग उठाई गयी थी। पश्चिम बंगाल की मार्क्सवादी सरकार ने बार-बार राज्यों की स्वायत्तता की मांग की है। उड़ीसा के नेता बीजू पटनायक ने भी अधिक स्वायत्तता की मांग की है। जम्मू कश्मीर में नेशनल कांफ्रेंस में नेशनल दलों ने संघवाद के पुनरीक्षण तथा स्वायत्तता की मांग की है। जम्मू कश्मीर विधानसभा में पाँच दिन की बहस के बाद राज्य स्वायतत्ता समिति के प्रतिवेदन को 26 जून 2000 को ध्वनिमत से स्वीकृत किया। इस प्रतिवेदन में राज्य की 1953 से पूर्व की स्थिति बहाल करने की संस्तुति की गई है। यह सब अधिक स्वायत्तता की मांग संकीर्ण क्षेत्रवाद की भावना की अभिव्यक्ति है।

क्षेत्रवाद के दुष्परिणाम

क्षेत्रवाद द्वारा जन-जीवन में जड़ पकड़ने के कारण आज हमारा देश अनेक क्षेत्रों में बंट गया है और क्षेत्र के लोग दूसरों पर अपनी श्रेष्ठता को प्रमाणित करने का बीड़ा उठा चुके हैं। क्षेत्रवाद के दुष्परिणाम निम्न प्रकार हैं।[3]

1. **राष्ट्रीय एकता को चुनौतीः-** संकीर्ण क्षेत्रीयता राष्ट्रीय एकता के लिए चुनौती बन जाती हैं। क्षेत्रवाद के फलस्वरूप विभिन्न क्षेत्रों के बीच जो तनाव और संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती है वह राष्ट्रीय एकता के समस्त धारणाओं और भावनाओं पर तुषारापात करती हैं क्योंकि क्षेत्रीयता के फलस्वरुप विभिन्न क्षेत्रों के लोगों में कभी क्षेत्रीय स्वार्थों को लेकर, कभी राजनीतिक स्वशासन या पृथक राज्य के प्रश्न को लेकर जो कभी प्रादेशिक भाषा के प्रश्न को लेकर जो झगड़े या मनमुटाव हो जाते हैं वे राष्ट्रीय एकता के लिए घातक सिद्ध होते हैं।

3. **भाषा की समस्या का अधिक जटिलः-** क्षेत्रवाद का एक और बुरा प्रभाव यह होता है कि क्षेत्रीय वफादारी भाषा की समस्या को सुलझाने में सहायक होने के स्थान पर उसे और भी जटिल बनाने का कारण बनती है। क्षेत्रीय वफादारी का सीधा संबंध क्षेत्रीय या प्रादेशिक भाषा के प्रति विशेष लगाव से होता है। जिसके कारण प्रादेशिक भाषा को आवश्यकता से अधिक महत्व प्रदान करने की गलती उस क्षेत्र के लोग कर बैठते हैं। परिणाम यह होता है कि अन्य किसी भाषा के प्रश्न को लेकर कटुता बढ़ती चली जाती है। क्षेत्रवाद का यह परिणाम जन कल्याण और राष्ट्रीय प्रगति की दृष्टिकोण से अत्यंत घातक सिद्ध होता है।

4. **राष्ट्रीय प्रगति में अवरोधः-** क्षेत्रवाद के फलस्वरुप नित नवीन तनावों, विद्रोहि गतिविधियों से संघर्षो को बढ़ावा मिलता है। भारत जैसे देश में जहां अनेक वर्गों, अनेक भाषा-भाषी एवं अनेक धर्मों को मानने वाले लोगों का निवास है, वहां क्षेत्रवाद के आधार पर उपजे आंदोलनों से आपसी भाईचारा ही विखंडित नहीं होगा, बल्कि क्षेत्रवाद के विवादों से देश नागरिकों की संपूर्ण क्षमता अनावश्यक संघर्षो में नहीं व्यय को जाती है। क्षेत्रवाद की मांगों के लिए किए जाने वाले संघर्षो आंदोलनों से राष्ट्रीय प्रगति में अवरोध उत्पन्न होता है।

क्षेत्रवाद को रोकने के उपाय

राष्ट्रीय एकता एवं अखंडता के लिए क्षेत्र एक बाधा है। इस पर रोक लगानी चाहिए। इसे रोकने के लिए निम्न उपाय अपनाये जा सकते है।[4]

(1) केंद्रीय सरकार की नीति कुछ इस प्रकार की होनी चाहिए कि सभी उप-सांस्कृतिक क्षेत्रों का संतुलित आर्थिक विकास संभव हो जिससे कि विभिन्न क्षेत्रों के बीच आर्थिक तनाव कम से कम है।

(2) भाषा संबंधित विवादों का शीघ्र समाधान किया जाए। इस संबंध में सबसे उचित हल यह है कि हिंदी, अंग्रेजी भाषाओं के साथ-साथ क्षेत्रीय भाषाओं को भी समान मान्यता दी जाए।

(3) हिंदी भाषा को किसी भी क्षेत्रीय समूह पर जबरदस्ती न थोपा जाए। अपतु इस भाषा का प्रचार-प्रसार इस ढंग से किया जाए कि विभिन्न क्षेत्रीय समूह स्वतः ही इसे संपर्क भाषा के रूप में स्वीकार कर लें।

(4) संकीर्ण क्षेत्रीय हितों के स्थान पर राष्ट्रीय हितों को

वरीयता दी जाए। राष्ट्र विरोधी गतिविधियों को कठोरता से उन्मूलन किया जाए। प्रांतीयता या क्षेत्र विशेषज्ञ के आधार पर की जाने वाली ऐसी मांगों को, जिससे देश के विखण्डन एवं विरोध की आशंका हो का दृढ़ता से विरोध किया जाए।

(5) सुदृढ़ संघीय व्यवस्था के भावारूप केंद्र–राज्य एवं अंतर्राष्ट्रीय संबंधों को स्वस्थ बनाना अनिवार्य है। सरकारी या आयोग द्वारा 1987 में केंद्र–राज्य संबंधों की सुदृढ़ता सुझाई गई अनुशंसाओं को लागू करते हुए संघवाद का सहयोगी ढ़ाँचा स्थापित किया जा सकता है।

(7) शिक्षा एवं जागरूकता क्षेत्रवाद के आधार पर फैलायी जा रही भ्रांतियों को दूर किया जाए। राष्ट्र के नागरिकों को सांस्कृतिक आदान–प्रदान, अंतर्राज्यीय सौहार्दपूर्ण साहित्यिक, सांस्कृतिक, खेल एवं अन्य आयोजनों से सौहार्दपूर्ण संबंधों के विकास हेतु प्रेरित किया जाए। विविध वर्गों एवं क्षेत्रों को पारस्परिक सांस्कृतिक लक्षणों से परिचित कर अनेकता में एकता की गौरवपूर्ण भावना के विकास का प्रयास कर राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ किया जाए।

सारांश

स्वतंत्रता के बाद भारतीय जन मानस में नवीन आकांक्षाएं उठने लगी, राज्य के नीति निर्देशक तत्व, पंचवर्षीय योजनाएँ आदि कार्यक्रम आर्दश थे, लेकिन इसके बावजूद व्यवहार में गरीबों और आर्थिक विषमताओं ही बढ़ती गयी। इस स्थिति का स्वभाविक परिणाम यह हुआ कि राष्ट्रीय एकता और हितों की अपेक्षा क्षेत्रवाद को बढ़ावा मिलने लगा असंतोष के इस वातावरण में विभिन्न वर्गों द्वारा शक्ति के लिए संघर्ष की शुरुआत हुई। ऐसे नवीन राजनैतिक दलों का उदय होने लगा, जो कि क्षेत्रीय हितों को लेकर शक्ति अर्जित करने लगे। क्षेत्रवाद का भारतीय समाज की शैली पर काफी प्रभाव पड़ा तथा आंदोलन राजनीति को बढ़ावा मिला। क्षेत्रीय आंदोलनों को चलाने के लिए आर्थिक विषमता, धर्म, जाति और भाषा का सहारा लिया गया। यथार्थ के क्षेत्रवाद की समस्या द्वारा भारत की राष्ट्रीय एकता मार्ग में कंटक बन गयी है। क्षेत्रवाद भारतीय राजनीति का महत्वपूर्ण निर्धारण तत्व तथा राष्ट्रीय एकीकरण की प्रमुख चुनौति रहा है। संकीर्ण क्षेत्रवाद का शीघ्र उन्मूलन अखण्ड विकसित एवं प्रगति की ओर अग्रसर भारत के लिए आवश्यक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *मंगलानी रूपा ''भारतीय शासन एवं राजनीति'' राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादी जयपुर, 2005*
2. *मल्होत्रा गिरिश ''इंडियन गवर्नमेंट एण्ड पॉलिटिक्स'' मुरली लाल एण्ड संस, नई दिल्ली, 2006*
3. *शाह, घनश्याम ''सोशल मूवमेंट एण्ड स्टेज सेज'' पब्लिकेशन, नई दिल्ली 2006*
4. *चंद्र, विपिन ''आजादी के बाद का भारत'' हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय नई दिल्ली, 1989*

वैश्वीकरण की प्रक्रिया का भारत के जनजातीय समाज पर प्रभाव

डॉ. भारती दीक्षित
अध्यक्ष, शहीद मंगलपाण्डेय शासकीय महाविद्यालय, मेरठ (उत्तरप्रदेश)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

विचार, पूंजी, वस्तु एवं सेवाओं का विश्वव्यापी प्रवाह वैश्वीकरण के नाम से जाना जाता है। 20वीं शताब्दी के अंतिम चरण में शीतयुद्ध की समाप्ति के पश्चात् वैश्वीकरण में तीव्रता आई जिसमें संचार क्रांति ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। तृतीय विश्व के देशों पर वैश्वीकरण ने पर्याप्त प्रभाव डाला, जिसमें बाजारवाद एवं उपभोक्तावाद ने मुख्य भूमिका का निर्वहन किया। भारतीय समाज के महत्वपूर्ण घटक जनजातीय समाज को भी वैश्वीकरण ने पर्याप्त प्रभावित किया। यह प्रभाव सामाजिक, मनोवैज्ञानिक एवं आर्थिक सभी रूपों में था जिसमें व्यावसायिकता एवं अर्थप्रधानता मुख्यतः हावी रही।

संकेताक्षर : *वैश्वीकरण, उदारीकरण, बाजारवाद, उपभोक्तावाद, जनजातीय समाज।*

स्थानीय अथवा क्षेत्रीय वस्तुओं अथवा घटनाओं के वैश्विक रूपान्तरण की प्रक्रिया 'वैश्वीकरण' के रूप में अभिहित की जाती है। सामान्य रूप से देखा जाए तो भौगोलिक सीमाओं तथा दूरियों से रहित विश्व का निर्माण वैश्वीकरण की प्रक्रिया में होता है, जिसमें वैश्विक खुलेपन, पारस्परिक मेल–मिलाप एवं पारस्परिक निर्भरता का भी विस्तार होता है।[1] प्राचीन एवं मध्य काल में भिन्न रूपों एवं परिप्रेक्ष्यों में अस्तित्वमान वैश्वीकरण की प्रक्रिया आधुनिक युग में औद्योगीकरण के पश्चात् विश्व को समेट कर 'वैश्विक ग्राम' (Global Village) का रूप देने के प्रयास के रूप में देखी गयी है, जो थॉमस फ्रीडमैन की परिभाषा से स्पष्ट होती है –

''वैश्वीकरण वस्तुतः बाजारों, अर्थव्यवस्थाओं और प्रौद्योगिकियों का एकीकरण है। इसमें विश्व का मध्यम से छोटे रूप में ऐसा संकुचन हो रहा है, जिससे हम सभी दुनिया के हर कोने में इतनी जल्दी और सस्ते में पहुँच जाएं, जितने में पहले कभी संभव नहीं थी।''[2]

बीसवीं सदी के अन्तिम दो दशकों में शीत युद्ध की समाप्ति एवं सोवियत संघ के विघटन के पश्चात् वैश्वीकरण की प्रक्रिया में तीव्रता आई। वैश्वीकरण के इस दौर में संचार क्रांति की भी महती भूमिका है, जिसने वैश्विक दूरियों को प्रभावी रूप से कम किया और लोगों की सोच को व्यापकता दी। वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने पूरे विश्व को अपने ढंग से प्रभावित किया। एक बहुआयामी प्रक्रिया के रूप में इसके आर्थिक, राजैनैतिक और सामाजिक–सांस्कृतिक आयाम हैं।

कुछ समय पूर्व तक वैश्वीकरण के प्रभावों की व्याख्या मात्र आर्थिक और ज्यादा से ज्यादा राजनैतिक क्षेत्र तक ही सीमित थी, परन्तु अब इसके सामाजिक– सांस्कृतिक प्रभाव भी मूल्यांकन के दायरे में लाए जा रहे हैं।[3] विशेष रूप से विकासशील देशों के प्ररिप्रेक्ष्य में वैश्वीकरण के आर्थिक प्रभाव के साथ–साथ सामाजिक–सांस्कृतिक प्रभाव दूरगामी सिद्ध हो रहे हैं। स्वयं भारतीय सामाजिक संरचना के ताने–बाने पर वैश्वीकरण के गुणात्मक प्रभावों से इनकार नहीं किया जा सकता है।

जहां तक जनजातीय समुदाय का प्रश्न है तो सामान्य परिप्रेक्ष्य में एक ऐसे सामाजिक समूह को जनजाति के रूप में संबोधित किया जाता है, जो एक समान भाषा का प्रयोग करता है एवं जिसकी अपनी विशिष्ट संस्कृति होती है, जो इसे अन्य समूहों से अलग रूप में स्थापित करती है।[4]

वन्य जाति, आदिवासी, गिरिजन आदि अन्य नामों से भी जाने जाते जनजाति–समुदाय के सांस्कृतिक मूल्य अन्य समाजों से भिन्न होते हैं तथा वे उनसे अलग प्रायः सुदूर पहाड़ों एवं जंगलों में दुर्गम स्थलों में निवास करते हैं। कृषि, शिकार एवं खाद्यसंकलन से युक्त इनकी अर्थव्यवस्था प्राकृतिक संसाधनों के उपभोग पर आधारित होती है। भारत में रहने वाली विविध जनजातियाँ प्रमुखतः महाराष्ट्र, उड़ीसा, झारखंड, गुजरात, मध्यप्रदेश और राजस्थान आदि राज्यों में निवास करती हैं।

भारतीय सामाजिक–सांस्कृतिक धारा में जनजातियों की महत्वपूर्ण और प्रभावी भूमिका रही है। भारत में रहने वाली भील, गोंड, संथाल, सहरिया, मीणा, गरासिया, डामोर, कंजर, बलाई जोगी, मेर आदि जनजातियाँ अपने विशिष्ट राजनैतिक–आर्थिक ढांचे और सामाजिक–सांस्कृतिक गुणवत्ता के कारण न केवल भारतीय बल्कि वैश्विक स्तर पर भी विशिष्ट पहचान रखती हैं।

रक्त संबंधों के आधार पर निर्मित कबीले स्वतंत्र समाज के रूप में व्यवहार करने के साथ–साथ अपनी जातीय पहचान एवं सांस्कृतिक अस्मिता के प्रति संवेदना के लिए जाने जाते हैं। उनके सरल प्रशासनिक ढांचे में अधिकारों एवं कर्तव्यों का स्पष्ट निर्धारण दृष्टिगत होता है।

औपनिवेशिक कालखंड में अधिक से अधिक लाभ कमाने की ब्रिटिश नीति ने जनजातीय समाज पर नकारात्मक प्रभाव डाला। कोल तथा संथाल विद्रोह जैसी प्रतिक्रियाओं के स्वरूप परिणाम ब्रिटिश सरकार ने जनजातीय समाज को मुख्यधारा में लाने हेतु कई प्रशासनिक सुधार किए, परन्तु जनजातियों की समस्याओं में इससे वृद्धि ही हुई। जनजातीय परम्परा से अनभिज्ञता की पृष्ठभूमि में नए वन–कानून, व्यापारियों, महाजनों, सूदखोरों के शोषण आदि से जनजातीय प्रगति बाधित ही हुई। देशी रियासतों की सरकारों द्वारा इस हेतु कोई विशेष प्रयास नहीं किए गए। धर्मान्तरण जैसे उद्देश्यों को समर्पित ईसाई मिशनरियों का लक्ष्य भी आदिवासी समाज ही था।[5]

स्वतंत्र भारतीय सरकार ने संविधान के माध्यम से जनजातीय समाज तथा संस्कृति की सुरक्षा एवं विकास हेतु विविध सुरक्षात्मक एवं विकासात्मक प्रावधानों के साथ–साथ उन्हें शोषण से मुक्त करने के भी प्रयास किए। संविधान की धारा 15, 16, 19, 23, 46, 164, 244, 275, 300, 330, 332, 333, 334 आदि के द्वारा सर्वांगीण जनजातीय विकास की सुनिश्चिता तय की गई। व्यावहारिक रूप से पंचवर्षीय योजनाओं से जनजातीय विकास–योजनाओं को मूर्तरूप दिया गया और उनके स्वास्थ्य, शिक्षा, आर्थिक विकास, क्षेत्रीय विकास आदि से जुड़े कार्यक्रमों को गति मिली। भूमि सुधार, बंधुआ मजदूर निवारण आदि कानूनों के द्वारा शोषण को रोकने के प्रयास हुए तो 1988 की वन–नीति द्वारा 'वनों के संहारक' के स्थान पर 'वनों के रक्षक' के रूप में उनकी मान्यता हुई।[6] आगे चलकर 1999 में पृथक आदिवासी कार्य मंत्रालय का गंठन, 2001 में अनुसूचित वित्त एवं विकास निगम की स्थापना, 2004 में पृथक् अनुसूचित जनजाति आयोग की स्थापना तथा 2006 में वन अधिनियम द्वारा आदिवासी विकास की दिशा में ऐतिहासिक कदम उठाए गए।[7]

इस प्रकार, जहाँ एक ओर शिक्षा में छूट और नौकरियों में आरक्षण ने जनजातीय समाज के समाजिक–आर्थिक उन्नयन में प्रमुख भूमिका निभाई है, वहीं भूमि कानून (जिसके द्वारा एक आदिवासी की भूमि गैर–आदिवासी नहीं खरीद सकता) के माध्यम से उनकी भावनात्मक तथा आर्थिक सुरक्षा सुनिश्चित की गई है। इन सरकारी–गैर सरकारी प्रयासों के क्रियावन्वयन में जनजातियों का भी सक्रिय सहयोग मिला और फलतः उनके सामाजिक–आर्थिक जीवन में सकारात्मक परिवर्तन देखे जा सकते हैं। इस प्रकार एक हद तक संविधान के लक्ष्यों को प्राप्त करने में सफलता प्राप्त हुई है और देश के विकास में जनजातीय समाज की सहभागिता सुनिश्चित हो रही है।

वैश्वीकरण की वर्तमान प्रक्रिया के सन्दर्भ में जनजातीय समाज को देखें, तो हमें समझना होगा कि जनजातीय प्रकृति और वैश्वीकरण की प्रक्रिया में स्वाभाविक विरोध है। जनजातियां जहाँ प्रकृति के सहकार, सहजीवन और सामंजस्य में विश्वास रखती हैं, वहीं वैश्वीकरण के चालक तत्व ही हैं बाजारवाद और उपभोक्तावाद। इनका मूल उद्देश्य ही है प्रकृति पर विजय पाना और प्राकृतिक शक्तियों तथा समस्त उपभोग योग्य सम्पदाओं को मात्र अपने लाभ के लिए, अपने उपभोग की वस्तु मानना।

इसलिए यह तय है कि वैश्वीकरण का गहरा प्रभाव जनजातीय समाज पर पड़ रहा है। इस प्रभाव को निम्न रूप में व्याख्यायित किया जा सकता है –

वैश्वीकरण द्वारा पोषित विकास में प्रकृति का अविवेकपूर्ण दोहन होता है। इस विकास में खनन गतिविधियां हैं, स्टील प्लांट, पॉवर प्लांट और रिफाइनरीज से जुड़ी औद्योगिक गतिविधियां हैं, बड़े बांध हैं और नगरीकरण है। इस विकास–यात्रा में वनों के उपयोग (ध्यातव्य है कि जनजातीय समाज में 'दोहन' शब्द नहीं है), संसाधन–संग्रह और संरक्षण के परम्परागत जनजातीय ज्ञान का कोई महत्व नहीं है, उनके पारम्परिक हुनर–कौशल का भी कोई मूल्य नही है। इसीलिए इस व्यवस्था ने न केवल जनजातीय समाज को ईंधन, चारे, सूक्ष्म वनोत्पाद आदि के अधिकारों से वंचित कर जीविकोपार्जन की उनकी पारम्परिक व्यवस्था छीन ली है, बल्कि उन्हें अपने परिवेश से पलायन और विस्थापन का दंश झेलने को भी विवश किया है। मध्य प्रदेश में तो तेंदू–पत्ता, ईंधन, गोंद, हरड़, बांस, साल के बीज, खैर की छाल आदि के विक्रय पर निर्भर जनजातियाँ मात्र श्रमिक बनकर रहने को विवश हो गई हैं। उत्पादक से श्रमिक के रूप में यह परिवर्तन जनजातीय समाज के विकास के सभी प्रतिरूपों पर एक प्रश्नचिह्न है। 1990 के दशक के बाद वैश्वीकरण और आर्थिक उदारीकरण के पश्चात् बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की परियोजनाओं के कारण विस्थापन की प्रक्रिया में बेतहाशा वृद्धि हुई है, और लाखों आदिवासी पलायन को मजबूर होने के साथ–साथ अपने प्राकृतिक परिवेश, पारम्परिक ज्ञान, संस्कृति एवं जीवन–शैली से भी वंचित होने को भी मजबूर हैं।[8] अधिक दुर्भाग्यशाली लोग कई–कई बार विस्थापन के दंश को झेलने के लिए बाध्य हुए हैं।

इस विस्थापन के बाद भी व्यवस्थाओं का मकड़जाल उनके न्याय में देर और अंधेर दोनों कर रहे हैं। राजस्थान के बांसवाड़ा जिले में स्थित है भव्य माही डैम। इस डैम के डूब क्षेत्र में आने वाले परिवारों को विस्थापन का दर्द झेलना पड़ा, जिसमें उनकी पुश्तैनी जगहें, खेत, घर सभी छूट गए, पर उससे भी बड़ा दर्द यह कि उन्हें पुनर्वास के नाम पर आंविटत भूमि का खातेदारी हक पांच दशकों के बाद भी नहीं मिल पाया।[9] विस्थापन के बाद भी नगरों के नए परिवेश में यह समाज अपनी सदियों पुरानी पारम्परिक–सामुदायिक जीवन–पद्धति के समाप्त हो जाने से सामाजिक–आर्थिक असमानता, असहायता और हाशिए का जीवन जीने को मजबूर है।

अनियंत्रित खनन, औद्योगीकरण, नगरीकरण और पर्यटन से जीवन–यापन की आदिम तकनीकों और प्रकृति के सहजीवन के अभ्यस्त इन जनजातियों के क्षेत्रीय पर्यावरण को भी असंतुलित कर दिया गया है।

नाइट सफारी कैम्प्स, सर्च लाइटों ही सहायता से रात्रि में वन्य जीव दर्शन, प्लास्टिक कचरे आदि ने जनजातीय क्षेत्रों के इको–सिस्टम पर भयंकर प्रभाव डाला है।[10]

जंगली जानवरों का अवैध व्यापार और मारा जाना भी इस इको–सिस्टम के लिए घातक है। सरिस्का और रणथम्भौर जैसे वन्य जीव अभयारणों में बाघ आदि पर सदैव अवैध शिकारियों से खतरा रहता है। बहुत बार भोले–भाले जनजातीय युवकों को भी इसमें शामिल किया जाता है।

लेकिन वैश्वीकरण का सबसे व्यापक प्रभाव संस्कृतियों के वाणिज्यीकरण के रूप में देखा जा रहा है, जिसका संवेदनात्मक एवं दूरगामी पक्ष विकासशील देशों के स्थानीय एवं छोटे समूहों की सांस्कृतिक अस्मिताओं के ह्रास के रूप में सामने आया है। सांस्कृतिक वैश्वीकरण, जिसे सांस्कृतिक समरूपीकरण भी कह सकते हैं, के कारण विश्व की सांस्कृतिक विविधता लगातार समाप्त हो रही है। इस क्रम में विशेष रूप से बहुत से जनजातीय समूह अपनी पहचान खोने को बाध्य हैं।[11]

दूसरे, वैश्वीकरण में प्रत्येक वस्तु को उत्पाद माना जाता है। इसीलिए पर्यटन आदि के माध्यम से उपजे सांस्कृतिक वाणिज्य के कारण जनजातीय कला में व्यावसायिकता और अर्थप्रधानता हावी हो रही है। पर्यटन विपणन एवं प्रंबधन से जुड़ी संस्थाओं द्वारा विदेशी पर्यटकों के नाम पर विक्रय उत्पाद के रूप में जनजातीय समूहों का व्यापक शोषण भी हो रहा है।[12]

हम देखते हैं कि तथाकथित सभ्य, आधुनिक, विकसित और खुले समुदायों के साथ होने वाली बड़े पैमाने की मुठभेड़ इस विनम्र एवं अन्तर्मुखी समुदाय को मनोवैज्ञानिक रूप से हीनता और असुरक्षा–बोध से भर रही है। इस घृणा का एक परिणाम व्यापक धर्मान्तरण के रूप में है, जहां झारखंड, उड़ीसा के साथ–साथ राजस्थान के वागड़ क्षेत्र में बड़ी संख्या में आदिवासी धर्मान्तरण के शिकार हो रहे हैं, वहीं दूसरी ओर घृणा का यही भाव उनकी पारम्परिक जीवन–शैली में अवांछित परिवर्तन भी ला रहा है।[13] जनजातीय युवा विकसित देशों के नागरिकों की ऐश्वर्यशाली, चाकचिक्य भरी और आडम्बरपूर्ण जीवन–शैली की नकल में भिक्षावृत्ति, चोरी, नशे, लूटमार, वेश्यावृत्ति तथा पॉर्न

फिल्म इंडस्ट्री आदि की गिरफ्त में भी आ जाते हैं। कोटा, धौलपुर, सिरोही, बांसवाड़ा आदि में जनजातीय समूह लूटपाट सहित अपराधिक गतिविधियों में लिप्त हो रहे हैं। वैश्विकता की इस होड़ में ये युवा पश्चिमी मूल्य, संस्कृति और परम्परा के अनुकरण की तीव्र ललक में अपनी सामाजिक–पारिवारिक परम्पराएं एवं संवेदनाएं खो रहे हैं।[14]

इससे इनका शोषण भी बहुत बढ़ा है। ये जनजातीय समुदाय भी वाणिज्यीकरण के परिणामस्वरूप उत्पाद के रूप में परिवर्तित हो गए हैं। कई स्थानों पर बंधुआ मजदूर की तरह मनोरंजन के लिए इनका प्रयोग हो रहा है तो कई जगहों पर भूख प्यास से व्याकुल कालबेलिया और मांगणियार स्त्रियां लगातार तीन–चार शिफ्टों में नृत्य–गीत करने को विवश हैं। कहीं पारम्परिक वेशभूशा और हथियारों के साथ प्रदर्शन की वस्तु बने आदिवासियों की निर्धनता और सज्जनता का उपहास नाममात्र के अर्थलाभ पर किया जा रहा है।[15]

यद्यपि वैश्वीकरण के सभी प्रभाव नकारात्मक पक्ष लिए हुए ही नहीं हैं। वैश्वीकरण के परिणाम स्वरूप संस्कृति का लोकतंत्रीकरण भी हुआ है, जहां सभी वर्गों, समुदायों के विचारों को मुखरता मिली है, और सांस्कृकि उत्पादों को पोषण भी मिला है। स्थानीय ज्ञान एवं उत्पादों को अंतर्राष्ट्रीय बाजार भी प्राप्त हुए हैं। वैश्वीकरण की प्रक्रिया से पीछे हटना व्यावाहारिक रूप से संभव नहीं है। अतः समावेशी विकास पर आधारित सभी वर्गों, क्षेत्रों के लिए हितकारी ऐसे मॉडल विकसित किए जाने पर विचार हो, जिनमें बहुराष्ट्रीय निगमों के साथ–साथ स्थानीय समुदायों के लिए भी संवेदना के स्वर हों। जनजातीय अस्मिता एवं संवेदना के प्रति यह आग्रह भारत की बहुस्त्रोती सामाजिक संस्कृति की दृष्टि से भी न्याय्य होगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *https://www.gyanncare.com*
2. *डॉ. रवि प्रकाश पाण्डेय, वैश्वीकरण एवं समाज, शेखर प्रकाशन, इलाहाबाद 2005, पृ. 9*
3. *डॉ. प्रतिभा, सांस्कृतिक आस्मिता, वैश्वीकरण और सामाजिक सरोकार, मानव अधिकार संचयन, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, नई दिल्ली 2014, पृ. 61*
4. *ई.ए.होबेन, मैनइन प्रमिटिव वर्ल्ड, मैक्ग्रॉव हिल न्यूयार्क, 1958, पृ.166*
5. *डॉ. प्रतिभा, प्रकृति, विकास एवं जनजातीय समाज : एक विमर्श, मानव अधिकार : नई दिशाएँ, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, नई दिल्ली 2014, पृ. 1*
6. *डॉ. वन्दना बुनकर, बांसवाड़ा में जनजातीय समाज पर नगरीकरण का प्रभाव, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर में प्रस्तुत इतिहास विषयक शोध प्रबन्ध, 2019, पृ. 92–107*
7. *डॉ. विन्देश्वर पाठक, विकास एवं जनजातियों का भविश्य, मानव अधिकार : नई दिशाएँ, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, नई दिल्ली 2014, पृ. 102*
8. *डॉ.वी.के.शर्मा, भूमण्डलीकरण पोषित विकास का जाल एवं आदिवासी समुदय के मानवाधिकार, मानव अधिकार :नई दिशाएँ, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, नई दिल्ली, पृ. 102*
9. *राजस्थान पत्रिका – 13.11.2019*
10. *https://www.gyanncare.com*
11. *डॉ. प्रतिभा, मार्केटिग हैरिटेज थ्रू टूरिज्म, सांस्कृतिक विरासत, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर 2013, पृ. 331*
12. *डॉ. प्रतिभा, पर्यटन के सामाजिक–सांस्कृतिक आयाम, योजना, मई 2010, पृ. 21*
13. *वही, पृ. 21*
14. *डॉ. सुधीर भटनागर, भारत में वैश्वीकरण के सामाजिक–सांस्कृतिक प्रभाव, लिनसियन, अजमेर जनवरी–जुलाई 2014, पृ. 69*
15. *डॉ. प्रतिभा, पर्यटन के सामाजिक–सांस्कृतिक आयाम, योजना, मई, 2010, पृ. 21*

अन्य संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *विजय कुमार, तिवारी भारत की जानजातियां, हिमालय पब्लिशिंग, हाउस मुम्बई, 1998*
2. *हरिचन्द्र उप्रेती, भरतीय जनजातियां : संरचना एवं विकास, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर*
3. *नरेश कुमार वैद्य, जनजातीय विकास : मिथ एवं यथार्थ, रावत पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली*
4. *शिव बहाल सिंह, विकास का समाजशास्त्र, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर*
5. *P.C. Mehta : Tribal D Shiva Publishers, Udaipur, 1993*
6. *S.C. Dube : Tribal Heritage of India, Vikas Publishing, House New Delhi, 1977*
7. *A.R. Desai, Rural India in Transition, Popular publication, Mumbai 1961.*
8. *Surjit Sinha, Tribes and Indian Civilization; Structure and Transformation, N.K. Base memorial Foundation, Varanasi 1982.*

गांधी चिन्तन में राज्य एवं लोककल्याण

shodhshree@gmail.com

डॉ. पंकज भारद्वाज
सहायक आचार्य, राजकीय महाविद्यालय, रायपुर (पाली)

शोध सारांश

राजनैतिक चिन्तन में लोककल्याण की धारणा प्राचीन कल से ही महत्त्वपूर्ण रही है, किन्तु आधुनिक राजनैतिक इतिहास में औद्योगिक क्रांति एवं तत्पश्चात उदारवादी विचारधारा के उदय एवं विकास के बाद यह चितंन का मुद्दा बनी है। सैद्धांतिक स्तर पर हरबर्ट स्पेन्सर के व्यक्तिवाद और टी. एच. ग्रीन के उदारवाद में इस अवधारणा के बीज देखें जा सकते है। पश्चिमी विचार दृष्टि के विकल्प के रूप भारतीय चिन्तन दृष्टि उपलब्ध है। जो वर्तमान संर्दभ में समीचीन है। विशेषतः गांधी चिन्तन में ऐसा विकल्प उपलब्ध है जिसमें निरंतरता व्याप्त है लोककल्याण राज्य का हित नहीं कहा जा सकता बल्कि इसका लक्ष्य किसी वर्ग, दल या गुट विशेष के हित को वरीयता न देकर प्रत्येक व्यक्ति के हित को ध्यान में रखना है। लोककल्याण की अवधारणा का तात्पर्य है– मानव का सर्वांगीण विकास करना अर्थात सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक दृष्टि से व्यक्ति को गरिमामय स्थिति तक पहुँचाना। लोककल्याण की संकल्पना में प्रत्येक कार्य एवं निर्णय जनहित को ध्यान में रखकर किया जाता है। व्यक्ति को परम पुरूषार्थ का परम मूल्य मानते है। शिक्षा की संरचना आदि सब है। इसलिये गांधी राज्य के अधिकार वृद्धि के प्रथम चरण को बडी आशंका से देखते थे क्योंकि इससे भले ही ऊपर से मालूम हो जाये कि राज्य व्यक्ति का कल्याण कर रहा है लेकिन वस्तुतः इससे व्यक्ति की विशेषता ही समाप्त हो जाती है जो सारी प्रगति के मूल में है। भले ही राज्य–शक्ति की पूजा की जाय और उसे बाह्य आक्रमण एवं आंतरिक अशांति से जनता की रक्षा के लिए असीमित अधिकार दिये जाये लेकिन जिस दिन राज्य के नाम पर व्यक्ति के सारे अधिकार छिन जायेंगे वे निर्वीय पुरूषार्थशून्य एवं अभिक्रमणविहीन होकर अपनी सम्पूर्ण सृजनात्मकता को निःशेष कर देंगे असल में कल्याणकारी राज्य के नाम पर जनता को उदासीन ही नहीं अभिक्रमणशून्य ही बनाया जाता है। यही कारण है कि कल्याणकारी राज्य की अवधारणा को गांधी ‘‘दासता का दस्तावेज’’ कहते है। राज्य को मंगलकारी बनाने की नीयत भले ही पवित्र हो लेकिन अन्ततोगत्वा यह जनता को निष्क्रिय परावलम्बी एवं पंगु बनाती है। अंततः गांधी चिन्तन राज्य शक्ति का सशक्त विरोधी है जिसका अंतिम प्रयोजन अंतिम व्यक्ति का कल्याण है।

संकेताक्षर : *लोकतंत्र, राज्य, लोककल्याण, व्यक्ति, सर्वांगीण विकास।*

गांधी के मत में राज्य ने व्यक्तित्व एवं समाज का सदैव दमन किया तथा राज्य की सम्प्रभुता वास्तविक स्थिति में व्यक्ति की अवहेलना का सशक्त माध्यम ही है। फलतः गांधी ने राजनीति के स्थान पर ’लोकनीति’ की प्राथमिकता एंव औचित्य पर बल दिया। गांधी के चिन्तन में स्पष्ट है कि यदि राजनीति शासन पर आधारित है तो लोकनीति अनुशासन पर, यदि राजनीति शक्ति पर केन्द्रित है तो लोकनीति अनुशासन पर यदि राजनीति शक्ति पर केन्द्रित है तो लोकनीति स्वतंत्रता एवं स्वायत्तता पर, यदि राजनीति नियंत्रण पर आधारित है तो लोकनीति अनुशासन एवं मर्यादा पर यदि राजनीति संप्रभुता एवं अधिकारों के अर्जन की प्रतियोगिता पर आधारित है, जो लोकनीति कर्त्तव्यपरायणता तथा जागरूकता पर। गांधी ने माना कि लोकनीति आध्यात्मिकता से प्रेरित कर्मयोग की सम्पूर्ति है।

लोककल्याण राज्य का सिद्धांत स्वयंसिद्ध करता है कि यह राजनीतिक और प्रशासनिक शक्तियों के प्रबन्धन को

बाजार अर्थव्यवस्था में न्यूनतम तीन दिशाओं में संचालित करता हैः– सर्वप्रथम एक न्यूनतम आय का असमान आधार सुनिश्चित करना, एक ऐसे व्यक्ति अथवा परिवार का जो कि अपने उत्पादन या काम के योगदान के प्रति उदासीन हैः द्वितीयः सामाजिक आकस्मिकता से सुरक्षा प्रदान कराना जो कि व्यक्ति के नियंत्रण में नही है जैसेः बीमारी, वृद्धावस्था, बेरोजगारी तृतीतयः सभी नागरिकों को समान रूप से योग्य बनाना ताकि वे सामाजिक सेवाओं की एक निश्चित श्रृंखला का लाभ उठा सके। इस प्रकार लोककल्याणकारी राज्य ''म्यूनिसिपल समाजवाद'' तथा ''सामाजिक सेवी राज्य'' से भी भिन्नता रखता है, इसके उद्देश्य की दृष्टि में न्यूनतम प्रबन्धन की सीमा की तुलना में नागरिकों के अनुकूल स्तरीय जीवन को स्वीकृत करती है। यह आय की समानता से सम्बन्ध नहीं रखता हैं लेकिन सिर्फ वर्ग–विभेदता की संकीर्णता से सम्बन्ध रखता है; तथा अनुसूचित वर्गो की आवश्यकताओं का विस्तार करता है ताकि वे संतोषजनक रूप से मतदाता के रूप में अपनी समान शक्ति की भूमिका निर्वाह करते हुए अर्थपूर्ण बन सके।[1]

पश्चिमी संस्कृति को भौतिक एवं अनैतिकता परक घोषित कर गांधी ने माना कि लोकतंत्र की पश्चिमी व्याख्या, स्वरूप एवं प्रक्रिया की नितान्त निरर्थक एवं सारहीन स्थिति के द्योतक रहे हैं।[2] गांधी इस निर्णय पर पहुंचे थे कि पश्चिम के देशों में, यूरोप–अमेरिका में जो आधुनिक सभ्यता जोर पकड़ रहीं हैं, वह कल्याणकारी नहीं है, मनुष्य–हित के लिए नहीं अपितु सत्यानाशकारी है। गांधी मानते थे कि भारत में और सारी दुनिया में प्राचीन काल से जो धर्म–परायण नीति–प्रधान सभ्यता चली आयी है वह सच्ची सभ्यता है।

गांधी का कहना था कि भारत से केवल अंग्रेजों को और उनके राज्य को हटाने से भारत को अपनी सच्ची सभ्यता का स्वराज्य नहीं मिलेगा। हम अंग्रेजों को हटा दें और उन्हीं की सभ्यता का और उन्हीं के आदर्श को स्वीकार करें तो हमारा उद्धार नहीं होगा। हमें अपनी आत्मा को बचाना चाहिए। भारत कि लिखे–पढ़े चंद लोग पश्चिम के मोह में फंस गये हैं। जो लोग पश्चिम के असर तले नहीं आये हैं, वे भारत की धर्म–परायण नैतिक सभ्यता को ही मानते हैं। उनको अगर आत्मशक्ति का उपयोग करने का तरीका सिखाया जाय, सत्याग्रह का रास्ता बताया जाय, तो वे पश्चिमी राज्य–पद्धति और उससे होने वाले अन्याय का मुकाबला कर सकेंगे तथा शस्त्रबल के बिना भारत को स्वतंत्र करके दुनिया को भी बचा सकेंगें।[3]

पश्चिमी राजनीतिक व्यवस्था की आलोचना करते हुए गांधी ने माना कि अन्ततोगत्वा राज्यविहीन, सर्वोदय समाज ही उचित विकल्प है। परन्तु संक्रमण काल में वे संसदीय लोकतंत्र पर आधारित स्वराज्य के समर्थक रहे, जिसके अंतर्गत राज्य न्यूनतम हस्तक्षेप करे। राज्य जनकल्याण व जनसम्मति पर आधारित हो। गांधी ने लिखा स्वराज्य का अर्थ है सरकारी नियंत्रण से मुक्त होने के लिए लगातार प्रयत्न करना, फिर वह नियंत्रण विदेशी सरकार का हो या स्वदेशी सरकार का। यदि 'स्वराज्य' में लोग अपने जीवन की हर छोटी बात के नियमन के लिए सरकार का मुंह ताकना शुरू कर देंगे तो वह सरकार किसी काम कि नहीं होगी।[4] गांधी ने माना कि 'स्वराज्य' नितान्त आदर्शपरक व्यवस्था नही। स्वराज्य को वे स्वस्थ एवं सनातन स्वरूप तथा सृजनात्मक क्रियान्विति देने के पक्षधर थे जिसके फलस्वरूप समाज की कृत्रिम स्थितियों का निराकरण संभव हो सके। स्वराज्य समान अवसरों, अबाधित न्याय एवं सनातन सद्गुणों का संरक्षण माना गया।

गांधी ने कहा, ''मेरे सपनों का स्वराज्य तो गरीबों का स्वराज्य होगा। जीवन की जिन आवश्यकताओं का उपभोग राजा और अमीर लोग करते हैं, वहीं तुम्हें भी सुलभ होनी चाहिए, इसमें फर्क के लिए स्थान नहीं हो सकता, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि हमारे पास उनके जैसे महल होने चाहिए। सुखी जीवन के लिए महलों की कोई आवश्यकता नहीं लेकिन तुम्हें जीवन की वे सामान्य सुविधायें अवश्य मिलनी चाहिए जिनका उपभोग अमीर आदमी करता है। मुझे इस बात में बिल्कुल भी संदेह नहीं है कि हमारा स्वराज्य तब तक पूर्ण स्वराज्य नहीं होगा जब तक तुम्हें सारी सुविधायें देने की पूरी व्यवस्था नहीं हो जाती।''[5]

गांधी राजनीति के लोकतंत्रीय स्वरूप के पक्षधर थे किन्तु उसका स्वरूप मौलिक लोकतांत्रिक दृष्टिकोण पर आधारित होना चाहिए। वे लोकतंत्र सम्बंधी अवधारणा को लोकतंत्र के परम्परागत अर्थ एवं लोकतंत्रीय अवधारणा के उदारवादी व समाजवादी वर्गीकरण से भिन्न मानते थे, अन्य धारणाओं की भाँति गांधी दर्शन का मूल चिन्तन–आध्यात्मिक आस्था से ही जुडा है। राज्य का कार्यक्षेत्र, व्यक्ति व राज्य के मध्य सम्बंध व वैयक्तिक स्वतंत्रता पर गांधी का दृष्टिकोण मूलतः

उनकी आध्यात्मिक आस्था का ही लौकिक रूपान्तरण है। वे नैतिक आस्था को परिलक्षित करने वाली पश्चिमी लोकतंत्रीय राजनीति को पसन्द नहीं करते थे। उनके अनुसार पूँजीवादी लोकतंत्रीय राज्य में प्रथाओं व शोषण की खुली छूट है, वे व्यावहारिक पक्षों व उनमें क्रियाशील प्रतिनिधि संस्थाओं के प्रति निर्दिष्ट नहीं थे।

अपने परम्परागत अर्थ में लोकतंत्र एक ऐसी शासन व्यवस्था है जिसमें जनता अपनी शासन की शक्तियों का प्रयोग प्रत्यक्ष रूप से जनप्रतिनिधियों के माध्यम से करती है। यह व्यवस्था नागरिकों के कतिपय अधिकारों की अनिवार्यतः अपेक्षा करती है, जिसमें वयस्क मताधिकार, चुनाव में उम्मीदवारों के रूप में खड़ा होने का अधिकार, विचार अभिव्यक्ति, भाषण, लेख प्रकाशन एवं संगठन निर्माण की स्वतंत्रता प्रदान की जाती है। जहां शक्ति स्थायी रूप से निवास करती हो, जहां व्यक्ति पूजा का वातावरण हो, दबाव एवं भय हो, जहां जनता को वाद-विवाद की स्वतंत्रता महसूस न करती हो, वहां भले ही जनता अन्य राजनितिक अधिकारों का प्रयोग करती हो, फिर भी लोकतंत्र का अस्तित्व मृतप्रायः माना जा सकता है।

आधुनिक समय में लोकतंत्र का विकास एक व्यापक अर्थ में हो गया है। आज लोकतंत्र न केवल शासन या राज्य का एक प्रकार है अपितु सामाजिक व आर्थिक व्यवस्था के साथ-साथ जीवन का एक विशिष्ट दृष्टिकोण है। सामाजिक व आर्थिक व्यवस्था के लोकतांत्रिक होने पर ही व्यवस्था रूप में लोकतंत्र सफल हो सकता है। वस्तुतः लोकतंत्र में व्यक्तियों के सोचने एवं व्यवहार करने का दृष्टिकोण भी लोकतांत्रिक होना चाहिए। गांधी सद्गुणी व्यक्ति एवं नैतिकता परक समाज के प्रयोजन से प्रेरित एक ऐसे लोकतंत्र के पक्षधर थे, जो सामान्यतः पश्चिमी विचार वृत्त से भिन्न अपेक्षाकृत गहनता एवं समग्रता का सूचक हो।

गांधी पश्चिमी संसदीय लोकतंत्र के विरोधी थे। जिसका प्रमुख कारण पाश्चात्य संसदीय लोकतंत्र में व्याप्त ढोंग व प्रदर्शन का अधिक व ईमानदारी और मानव कल्याण की भावना का अभाव होना है। साथ ही सत्य व अहिंसा (लोकतंत्र का आधार) का अभाव पाया जाना एवं वास्तविक मूल्यों के प्रति अलगाव इसकी कमियाँ है। पश्चिमी संसदीय लोकतंत्र में व्याप्त इन दुर्गुणों का प्रमुख कारण शस्त्रीकरण की होड़ पूँजीवाद व साम्राज्यवाद तथा शोषण की राजनीतिक अस्थिरता और दुर्बल नेतृत्व व नैतिकता का अभाव है। इस तरह गांधी के अनुसार पश्चिमी लोकतांत्रिक व्यवस्था में व्याप्त दुर्गुणों को हमें नहीं अपनाना चाहिए, तथापि ज्ञान किसी देश, व्यक्ति अथवा जाति से नहीं बंधा है अतः पश्चिमी देशों में व्याप्त अच्छाईयाँ ग्राह्य हैं।

पश्चिमी लोकतांत्रिक संस्थाओं का विरोध करते हुए गांधी ने लिखा है, ''लोकतंत्र का जो व्यावहारिक रूप हमें आज देखने को मिलता हैं, वह शुद्ध फासीवादी है। अधिक से अधिक वह साम्राज्यवाद का फासीवादी प्रवृत्तियों को छिपाने का आवरण है।'' गांधी के अनुसार इंग्लैण्ड ने भारत को लोकतांत्रिक तरीके से नहीं जीता था वे अहिंसा व अहिंसक पद्धति के द्वारा सच्चे लोकतंत्र की स्थापना के पक्षधर थे। राजनीति में लोकतंत्र का पवित्र अर्थ-विरोधियों के साथ पूर्णतः सम्यक व्यवहार किया जाना है। पश्चिमी देशों में हिंसा का बोलबाला है। परिणामतः गांधी के अनुसार वहां केवल नाममात्र का ही लोकतंत्र है। गांधी पश्चिमी लोकतंत्र की असफलता का प्रमुख कारण संस्थाओं कि अपूर्णता नहीं अपितु सिद्धांतों की अपूर्णता को मानते हैं। गांधी के अनुसर लोकतंत्र का विकास बल प्रयोग से नहीं, अपितु भीतर से उत्पन्न होती है।[6]

गांधी ने स्पष्ट किया कि स्थापित राजनीति में शक्ति-सम्बद्ध हिंसा एवं गोपनीयता, आरोपित एवं कल्याणकारी दावे, सत्ता अधिग्रहण प्रेरित स्वार्थपरायणता तथा अन्याय एवं असमानता के नित्य नये साधनों की बढ़ोतरी, नग्न रूप से राजनीति की वास्तविकता के द्योतक प्रमाण है।[7] अतः वे कहते हैं कि राजनीति के मानवीकरण एवं आध्यात्मीकरण द्वारा ही वैयक्तिक एवं राष्ट्रीय लक्ष्य की सिद्धि सम्भव है।[8] इसी आधार पर गांधी ने प्रतीकात्मक स्तर पर 'रामराज्य' को समाधार माना। रामराज्य किसी प्रकार से भी जाति अथवा मान्यता विशेष से बढ़कर सांस्कृतिक उत्प्रेरणा एवं स्त्रोत 'वास्तविकता' था। गांधी की दृष्टि में रामराज्य का आदर्श नितांत राजनीतिक एवं व्यवस्थात्मक स्वशासन की अपेक्षा, उस लक्ष्य एवं दृष्टि को परिलक्षित करना है, जो सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक उन्नयन की अनिवार्यता की द्योतक है। इसी कारण गांधी चिन्तन एवं प्रयोजन के वृहत वृत्त में राजनीति एवं राज्य की निर्णायकता आंशिक एवं परिसीमित है। अवश्य ही गांधी ने ब्रिटिश शासन से मुक्ति का आह्वान किया क्योंकि भारत पर 'आसुरी शासन' के परिणामस्वरूप भौतिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक बन्धनों एवं मंत्रणाओं को अनैतिक एवं अमानवीय रूप से लागू किया गया।[9]

गांधी ने स्वीकारा कि जैसे राज्य, वैसे ही राजनीतिक शक्ति अभीष्ट नहीं है क्योंकि गांधी ने समसामयिक राजनीतिक जीवन में भागीदारी तथा नेतृत्व भूमिकाओं का निर्वहन करने के बावजूद दोनों को नकारा। राजनीतिक शक्ति एवं राज्य–प्रदत्त अवसरों को केवल संक्रमणकालीन दायित्वपूर्ति हेतु, राष्ट्रीय प्रतिनिधियों द्वारा राष्ट्रीय जीवन एवं कल्याण–योजनाओं की सतत् क्रियान्विति हेतु संक्रमणकालीन साधना माना। गांधी ने स्पष्ट किया हे कि संक्रमण की लोकजीवन के स्तर–विकास–क्रम में स्वतः स्वानुशासन एवं स्व–क्षमतावृद्धि होने पर औपचारिक प्रतिनिधियों की आवश्यकता भी नहीं रहेगी। गांधी–चिन्तन में यह व्यवस्था ''जागृत अराजकता'' है जिसे अनेक बार दार्शनिक अराजकता माना गया। ऐसी व्यवस्था में राज्य का शनैः –शनैः अस्तित्व नाश स्वाभाविक है एवं जनसमाज ही अन्ततः प्राधिकारी है। स्पष्ट है इस प्रकार राजनीति, राज्यशक्ति, सम्प्रभुता एवं सम्बद्ध अवधारणाओं, संस्थाओं एवं प्रक्रियाओं का नव–निर्वचन कर गांधी ने राजनीति एवं राष्ट्रवाद को भी गुणात्मक एवं मानवीय मूल्यों से समेकित किया।[10]

गांधी ने 'हिन्द स्वराज' में स्पष्ट रूप से व्यक्त किया कि राजनीतिक शक्ति एवं अन्याय तथा शोषण से उत्पन्न समृद्धि तथा सम्पन्न न केवल अपराध है , बल्कि अनैतिक शासन–व्यवस्था का अनिवार्य परिणाम भी है। हिन्द स्वराज एकांकी स्तर पर पश्चिमी सभ्यता, अविवेकी औद्योगिकीकरण, उपभोक्ता–संस्कृति एवं अनाधिकृत सुविधा भोग प्रवृत्ति की समालोचना मात्र नहीं, बल्कि विमानवीकरण की द्योतक अनिवार्यताओं के विषय में शाश्वत चेतावनी भी है। यदि एक और गांधी ने अपने विकल्पों को हिन्द स्वराज में स्थापित किया तो दूसरी ओर राष्ट्रवाद की उपलब्धि हेतु मानवीय वैश्विकता को सर्वोपरि माना।[11]

परिणामस्वरूप गांधी ने जिन मूल्यों को लोकशक्ति, लोक–स्वराज्य एवं सामाजिक संरचना हेतु अनिवार्य माना, वे सदाशय, सहकार, वर्ग–समन्वय एवं परिपूरकता, शांति, अहिंसा एवं मानवीय मानकों से अनुप्राणित थे। गांधी ने मूलतः इस सत्य को उजागर किया कि पश्चिमी व्यवस्था संयत्र की प्राणदायिनी 'राजनीति' को अपनाकर भारत में लोकनीति एवं लोकशक्ति को असहाय बना दिया गया। फलतः राज्य एवं व्यक्ति की नैतिक स्वतंत्रता तथा सत्व का नाश होना स्वाभविक हो गया ।[12]

राजनीति एवं राज्य सम्बद्ध अवधारणा एवं व्यावहारिक सार्वभौमिकता का स्वाभाविक प्रवाह बलप्रवर्तन, शोषण, अर्जन प्रवृत्ति, केन्द्रीय एवं स्वार्थपरायण आयामों में होना स्वाभाविक था एवं प्रतिनिधितन्त्र के मिश्रण का प्रबल प्रभाव यह हुआ कि जनाधारित व्यवस्था के स्थान पर एकाधिकारी तथा सर्वशक्तिमान राज्यशक्ति में निरन्तर बढोतरी हुई।[13] इन आधारों से प्रेरित व्यवस्था का परिणाम यह हुआ कि स्वचालित, स्वावलम्बी एवं स्वाभिमानी प्राथमिकताओं का विनाश हुआ एवं कृत्रिम एवं आरोपी मिथकों को सर्वोपरि उपादेयता प्रदान की गई प्रस्तुत वातावरण में 'धर्म' का नाश होना स्वाभाविक था एवं दूरगामी घातक स्थिति यह हुई कि भारतवासी अपनी मूल अस्मिता से भी विलग्न हो गये।[14]

महात्मा गांधी के चिन्तन में अराजकतावाद के तत्त्वों की झलक मिलती है। गांधी भी राज्य मुक्त आदर्श समाज की कल्पना करते है जो कि अराजकतावादियों का उद्देश्य है, फिर भी गांधी को अराजकतावाद के प्रवर्तक विचार की श्रेणी में नहीं रख सकते। गांधी के अनुसार राज्य एक आवश्यक बुराई है तथा यह हिंसक प्रवृत्ति से युक्त है। गांधी उग्र–व्यक्तिवाद का घोर विरोधी है। गांधी –दर्शन में समाज –चिन्तन पर गहराई के साथ विवेचन किया गया है भविष्य के आदर्श–समाज की परिकल्पना प्रस्तुत की गयी है।[15]

'हिन्द–स्वराज' में महात्मा गांधी ने राज्य तथा सरकार की तत्कालीन व्यवस्था के खिलाफ आक्रोश व्यक्त किया हैं। लेकिन बाद में गांधी का यह विरोध कमजोर पड़ता दिखाई देता है, जबकि वे राज्यविहीन समाज की स्थापना के लिए अहिंसक प्रजातांत्रिक राज्य का समर्थन करते हैं। गांधी के अराजकतावादी समाज में राज्य का अस्तित्व रहेगा परन्तु उसका स्वरूप सेवामय और नैतिक होगा। अमेरिकन अराजकतावादी हेनरी डेविड थोरों राज्य के कानून तथा दण्ड व्यवस्था की तुलना में व्यक्ति की नैतिक–आत्मा को अधिक महत्व प्रदान करते हैं तथा राज्य को अनैतिक एवं स्वतंत्रता विरोधी संस्था मानते हैं। थोरों का विश्वास है कि सिविल–डिसओबिडियेंस के द्वारा ही राज्यविहीन समाज की स्थापना की जा सकती है। महात्मा गांधी थोरों के विचारों से कुछ दूरी तक सहमत दिखाई पड़ते है लेकिन थोरों के विचारों में उग्र–व्यक्तिवाद दिखाई पड़ता है। थोरों के 'सिविल–डिसओबिडियेंस में अहिंसा को कोई दार्शनिक आधार प्राप्त नही हैं।''[16] अतः गांधी ने थोरों

के सिविल –डिसओबिडियेंस के जगह पर अहिंसा पर आधारित सत्याग्रह की कल्पना की है, सत्याग्रह के माध्यम से ही अहिंसक राज्य की स्थापना की जा सकती है।

वैज्ञानिक समाजवाद के प्रणेता कार्ल मार्क्स ने राज्यविहीन समाज की कल्पना साम्यवादी समाज में प्रस्तुत की है। सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व तथा शक्ति के प्रयोग को कुछ काल तक आवश्यक मानते है, परन्तु महात्मा गांधी की चिन्तनधारा में राज्य की शक्ति को कुछ काल के लिए भी आवश्यक नहीं माना गया है। गांधीवादी दर्शन में राज्य के समाप्तिकरण का कार्य तुरन्त अहिंसक साधन के द्वारा शुरु कर दिया जाता है। गांधी दर्शन में एक और बहुलवादियों के समान निरपेक्ष, निरंकुश तथा सार्वभौमिक संप्रभुता का उग्र विरोध किया गया है तो दूसरी ओर आदर्श के रूप में अराजकतावाद की एक हल्की–सी परिकल्पना प्रस्तुत की गयी है। अहिंसक राज्य की प्राप्ति में ही गांधी का चिन्तन अराजकतावाद से अलग–थलग दिखलाई पड़ने लगता हैं।[17]

गांधी ने राज्य, शासन, प्रशासन की केन्द्रीय राजनीति को असहाय माना। वे व्यक्ति एवं समाज –कल्याण प्रेरित राजनीति को ही वास्तविक राजनीति मानते थे टॉलस्टाय की भांति यदि गांधी भी दार्शनिक अराजकता के पोषक बने, स्पष्ट है कि वे राज्य की असीमित शक्ति तथा उसके ऐतिहासिक दुरुप्रयोग से परिचित थे वे मानते थे कि राज्य की शक्ति न्यूनतम हो, राज्य की शक्ति एकाधिकार प्रवृति, हिंसा, दमन, क्षमता तथा आरोपण की प्रवृति से गांधी सशंकित थे। व्यक्ति की स्वायत्ता तथा नैतिक साहस के संवर्धन हेतु वे मानते थे कि राज्य वरदान नहीं, अभिशाप है। व्यक्ति की कर्त्तव्यपरायणता, जागरूकता, सद्इच्छा एवं सदाशय के उच्चतर कीर्तिमान तभी सम्भव हैं जब राज्य की बाह्यकारी निरंकुशता की समाप्ति हो। राज्य के हिंसक स्वरूप एवं प्रवृति को गांधी ने व्यक्ति एवं समाज के कल्याण का विरोधी माना। राज्य एवं राजनीति जब हिंसापूरित माने गये तो गांधी के चिन्तन में उनकी पृथक परिभाषा होना स्वाभाविक ही माना जायेगा, राज्य हिंसा का संगठित और केन्द्रीय रूप है, व्यक्ति के भीतर आत्मा है, परन्तु राज्य आत्मा रहित मशीन है उसे हिंसा से कभी नहीं बचाया जा सकता, क्योंकि उसकी उत्पत्ति ही हिंसा से हुई है।[18]

राज्य शक्ति के विरोध में गांधी का दूसरा सबल तर्क यह था कि राज्य बाह्यकारी शक्ति है। यद्यपि देखने में ऐसा लगता है कि राज्य कानून द्वारा शोषण को कम कर रहा है किन्तु गांधी के मतानुसार संगठित हिंसा पर आधारित राजकीय आदेशों को कानून संज्ञा देना वास्तव में प्रेम और अहिंसा के शाश्तव तत्त्व का अवमूल्यन करना है। गांधी का आग्रह है कि व्यक्ति पर राज्य के आदेशों के बाह्य नियंत्रण की अपेक्षा उसकी स्वयं की जागृत अंतरात्मा के नियंत्रण अधिक पवित्र है।

राज्य के विरोध में गांधी का तीसरा तर्क था कि आहिंसा पर आधारित किसी भी आदर्श समाज में राज्य सर्वथा अनावश्यक है। गांधी का अभिमत था कि आदर्श समाज शुद्ध अराजकता की वह दशा है जिसमें सामाजिक जीवन ऐसी पूर्णता को पहुंच गया हो कि वह स्वयं संचालित हो सके। इस स्थिति में प्रत्येक व्यक्ति अपना शासक स्वयं होता है। दूसरें शब्दो में स्वराज जनता में इस बात का ज्ञान पैदा करके प्राप्त किया जा सकता है कि सत्ता पर अधिकार करने तथा उसका नियमन करने की क्षमता उसमें है।[19]

गांधी ने लोकतंत्र के सर्वोदय स्वरूप को स्वीकृत किया है। गांधी के अनुसार, ''लोकतंत्र में अभावग्रस्त एवं अशक्त को भी वही सुविधा मिले जो शक्तिशाली के पास होती है।'' आगे चलकर यही विचार गांधी के सर्वोदय दर्शन के राजनीतिक आधार का एक प्रमुख अंग बन गया। गांधी दलविहीन लोकतंत्र के सिद्धांत को स्वीकार करते थे। उनकी मान्यता थी की संपत्ति, संपदा एवं भूमि सम्बंधो के आधार पर ही समाज में सामाजिक व्यवस्था, प्रक्रिया एवं सम्बद्धता स्थापित होती है। एकाधिकारी एवं अन्यायपूर्ण आरोपण के निराकरण के लिए गांधी ने सर्वोदय के अंतर्गत त्याग एवं भागीदारी का समानतावर्द्धक एवं न्यायोचित विकल्प बताया। सर्वोदय के दलविहीन लोकतंत्र का उद्देश्य ऐसे समाज की स्थापना करना है जो दलों की प्रतिशोधी अन्तःक्रिया से मुक्त हो। दलविहीन लोकतंत्र का आदर्श गांधी के सर्वोदय दर्शन के राजनीतिक आधार का प्रभाव है जिसमें लोकतंत्र उनकी अनुभवजन्य समता की प्रामाणिकता हैं। व्यक्ति समानता, स्वंतत्रता एवं भ्रातृत्व द्वारा न्यायिक व्यवस्था की स्थापना केवल सर्वोदयी समाज में ही संभव है और संसदीय प्रजातंत्र गांधी के अनुसार भारतीय परिस्थितियों के प्रतिकूल है।[20]

उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि गांधी चिन्तन में प्रत्येक परिस्थिति में व्यक्ति का हित सर्वोपरि

एवं निर्णायक है। समाज सुधार एवं आर्थिक औद्योगिक विकास हेतु राज्य की भूमिका को उदावादियों ने प्राथमिकता प्रदान की। राज्य एवं शासन द्वारा जन–कल्याण प्रयोजन की सिद्धि उदारवादी मन्तव्यों में स्पष्ट हैं। गांधी की भांति वे राज्य को 'अनावश्यक' एवं 'अनिवार्य' मानते थे। व्यक्ति, समाज एवं राज्य एक अदृश्य किन्तु अनिवार्य सूत्रबद्धता से सज्जित थे। गांधी की दृष्टि में व्यक्ति एवं समाज की प्राथमिकता की तुलना में राज्य की भूमिका संक्रमण–कालीन है और अन्ततोगत्वा वह गौण बन जाती है।[21]

संदर्भ गंथ सूची

1. *एलियन डोटस (सं.) द अनसरवाईल स्टेट, एलिन एण्ड अवविन, 1967, अध्याय 1 से उद्धत*
2. *द कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी, पब्लिकेशन डिवीजन, दिल्ली, 1963, पृ. 18*
3. *गांधी, हिन्द स्वराज, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, 2008, पृ.4–5*
4. *आर.के प्रभु (सं.) मेरे सपनों का भारत, नवजीवन, अहमदाबाद, 1960, पृ. 11 से उद्धत, हरिजन, 2. 1.1937*
5. *हरिजन, 25.3.1939*
6. *के.एस. सक्सेना एवं गीता अग्रवाल, गांधी : धर्म एवं लोकतंत्र, सबलाइम पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2005, पृ.171*
7. *यंग इण्डिया, अप्रैल 28, 1920*
8. *यंग इण्डिया, जनवरी 8, 1925*
9. *यंग इण्डिया, जुलाई 2, 1931*
10. *उपर्युक्त*
11. *नोट–2*
12. *उपर्युक्त, पृ. 98*
13. *उपर्युक्त, पृ. 24–25*
14. *उपर्युक्त पृ. 32–33, 39, 42–54, 90–92*
15. *उपेन्द्र प्रसाद, गांधीवादी समाजवाद, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001, पृ. 173*
16. *एन.सी. भट्टाचार्य, इज नॉन वाइलेन्ट स्टेट पॉसिबल : गांधीयन कानसेप्ट ऑफ स्टेट, पृ. 33*
17. *सम्पूर्ण गांधी वांग्मय (खण्ड –42), पृ. 392*
18. *नोट, पृ.21*
19. *यंग इण्डिया, 2 जुलाई, 1931*
20. *के.एस.सक्सेना एवं डॉ. गीता अग्रवाल, गांधी : धर्म एवं लोकतंत्र, सबलाइम पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2005, पृ.63–64*
21. *आशा कौशिक, पॉलिटिक्स, सिम्बल्स एण्ड पॉलिटिकल थ्योरी, रीथिंकिंग गांधी, जयपुर एवं नई दिल्ली, रावत 2001, पृ 63–106*

बाड़मेर जिले के बालोतरा उपखण्ड की आधारभूत सुविधाओं का विकास : एक भौगोलिक एवं पर्यावरणीय अध्ययन

श्री पाल
शोधार्थी, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

किसी प्रदेश के विकास का महत्वपूर्ण आधारभूत सुविधाएँ होती है। आधार भूत सुविधाओं के विकास का सबंध उस प्रदेश की जनसंख्या की गुणात्मकता एवं वहाँ की भौगोलिक स्थिति से हैं आधारभूत सुविधाएँ रीढ़ की हड्डी के समान है एवं ये सुविधाएँ ही नगरीकरण की प्रक्रिया को बढ़ावा देती है जिससे प्रदेश के प्रतिरूप मे परिवर्तन होता है। इस शोध पत्र के माध्यम से बाड़मेर जिले के पंचायत समिति क्षेत्र नगरपरिषद क्षेत्र व ब्लॉक बालोतरा की आधारभूत सुविधाओं जैसे–नगरपरिषद् क्षेत्र व ब्लॉक बालोतरा की आधारभूत सुविधाओं जैसे–परिवहन, यातायात, चिकित्सा, शिक्षा, बाजार एवं स्थानीय परिवहन व्यवधान से निजात का नया अनुक्रम, वैश्विक परिदृश्य में भौगोलिक कारकों के कारण दशा एवं दिशा के बदलाव में रिफाइनरी एवं इस परिधि क्षेत्र में विनिर्माण उद्योग एवं अन्य औद्योगिक बाहुल्य की प्रधानता है संयुक्त सूचकांक विधि का प्रयोग करते हुए विभिन्न खण्डों में उपलब्ध आधारभूत सुविधाओं के आधार पर प्रदेश के विकास के स्तर को ज्ञात करना है एवं विकास में पायी जाने वाली असमानताओं का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन करते हुए सुझाव देकर समस्या का समाधान करना है

संकेताक्षर : *आधारभूत सुविधाऐं, जनसंख्या सकेन्द्रण, व्यवसायिक संरचना, भूउपयोग, परिवहन।*

किसी प्रदेश का विविध आयामी विकास (सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक) उस प्रदेश में उपलब्ध आधारभूत सुविधाओं पर निर्भर करता है।जिस प्रदेश में आधारभूत सुविधाएँ उच्च स्तर की प्राप्त होती है उस क्षेत्र का विकास स्तर भी उच्च होता है, ऐसे परिवर्तन को धनात्मक परिवर्तन कहा जा सकता है। बालोतरा ब्लॉक में आस पास ग्रामीण क्षेत्रों वाले लोग रोजगार के लिए ग्राम से नगर की ओर दैनिक प्रवास करते है। आधारभूत सुविधाओं एवं जनसंख्या सकेन्द्रण में सीधा संबंध हैं बाड़मेर जिले का बालोतरा ब्लॉक वर्तमान समय से एक से दो दशक पहले आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ था।वर्तमान समय पिछले 12–15 सालों के मध्य विकसित हुए औद्योगिक केन्द्र, औद्योगिक, उच्च रिहायशी बस्तियाँ, जिले के विभिन्न स्थानों पर भौगोलिक उत्पाद जैसे प्राकृतिक गैस के कुएँ, खनिज तेल के कुएँ, कोयले की खदानें, विभिन्न प्रकार के पत्थरों की खदाने से वैश्विक परिदृश्य में बनी अमूल्य छापे जो कि विर्तमान परिदृश्य में बदलती आधारभूत सुविधाओं का मुख्य कारण साबित हो रही है।साथ ही इन आधारभूत सुविधाओं जैसे– क्षेत्र का विभिन्न खण्डों के माध्यम से दूरदराज के क्षेत्रों के साथ संयोजकता, तकनीकी एवं कौशल का एक स्थान से दुसरे स्थान पर प्रचार, विचारों का प्रचार, शैक्षिक परिदृश्य में बदलाव आर्थिक के विभिन्न विकल्पों की स्थिति, कौशलपूर्ण व्यक्तियों को रोजगार उपलब्धता, कौशल विकास केन्द्र इत्यादि कारण आधारभूत सुविधाओं के बदलाव महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे है[1]।

अध्ययन क्षेत्र

अध्ययन क्षेत्र बाड़मेर जिले में स्थित बालोतरा शहर अनियमित चतुर्भुजाकार आकृति का है। बाड़मेर जिले के दक्षिण पूर्व दिशा में स्थित है। बाड़मेर जिले के संदर्भ में बालोतरा की स्थिति 25°49 'उत्तरी अक्षांश एवं 72°14' पूर्वी देशान्तर पर स्थित है। इस नगर की समुद्र तल से ऊँचाई लगभग 106 मी. है। बालोतरा शहर के उत्तर पूर्व में मूंगड़ा गांव, द.पूर्व एवं पूर्व में गाँव, द.प. जसोल व नाकोड़ा, उत्तर पूर्व एवं पूर्व में खेड़, कलावा गाँव और अन्य गावँ स्थित है।

वर्तमान में इस नगर को नगरपरिषद का दर्जा मिला है। यहाँ वर्ष 2001 में जनसंख्या 61,813 थी, वर्तमान 2011 में जनसंख्या बढ़कर 74,496 हो गई है।बालोतरा नगर की स्थापना 16 वीं शताब्दी में लूनी नदी के किनारे पर स्थित रेत के टीले पर ढाणी के रूप में की गई थी। धीरे–धीरे विकास होता गया तथा वर्ष 1891 में रेलवे लाईन के निर्माण से नगर का विकास उत्तर की ओर होने लगा। खेड़ रोड़ पर औद्योगिक क्षेत्र की स्थापना के कारण नगर का विकास उत्तर पश्चिम की ओर होने लगा।रामसीन मूंगड़ा रोड़ पर कृषिमण्डी की स्थापना के कारण नगर का विकास पूर्व में होने लगा।बालोतरा राष्ट्रीय राजमार्ग–112 (बाड़मेर, जोधपुर), राज्य राजमार्ग–28 (फलौदी–रामजी का गोल), NH-38 (बालोतरा–सिरोही) एवं राज्य महामार्ग– 68 (भांडियाबास–बालोतरा) पर स्थित बाड़मेर जिले का एक महत्वपूर्ण नगर है।

2.1 अध्ययन क्षेत्र का उद्देश्य

1. बाड़मेर जिले के बालोतरा उपखण्ड की भौगोलिक पृष्ठभूमि का अध्ययन करना।
2. बालोतरा उपखण्ड के औद्योगिक ढ़ाँचे, चिकित्सा सुविधा, शिक्षा के स्तर का अध्ययन करना।
3. बालोतरा के भूमि उपयोग, परिवहन, सुविधा एवं आधारभूत सुविधाओं का विश्लेषण करना।
4. बालोतरा क्षेत्र के भौगोलिक अध्ययन के साथ साथ पर्यावरणीय अवलोकन।

2.2 व्यवसायिक संरचना

वर्ष 1991 में नगर की जनसंख्या 48858 थी तथा कुल कार्यशील व्यक्तियों की संख्या 13141 थी। इस तरह सहभागिता अनुपात 28.04 रहा। वर्ष 2011 में सहभागिता अनुपात बढ़कर 30.00 प्रतिशत था।

पूर्व में दशकों की सहभागिता दर की प्रवृति को देखते हुए वर्ष 2021 में सहभागिता अनुपात बढ़कर होने की संभावना है।

तालिका– 2
व्यावसायिक संरचना, बालोतरा (1991–2011)

क्र.सं.	व्यवसाय	प्रतिशत					
1.	काश्तकार, कृषिमजदूर	1792	13.64	927	5	924	4.0
2.	उद्योग	5528	42.07	8159	44	10161	44
3.	निर्माण	412	3.14	742	4	924	4
4.	व्यापार एवं वाणिज्य	2998	22.81	4265	23	5427	23.50
5.	परिवहन एवं संचार	712	5.41	1020	5.50	1270	5.50
6.	अन्य सेवाएँ	1699	12.93	3431	18.50	4388	19.00
	कुल	13141	100	18544	100	23094	100
	कुल सहभागिता अनुपात	28.04		30.00		31.00	

स्त्रोत :–भारतीय जनगणना 2011

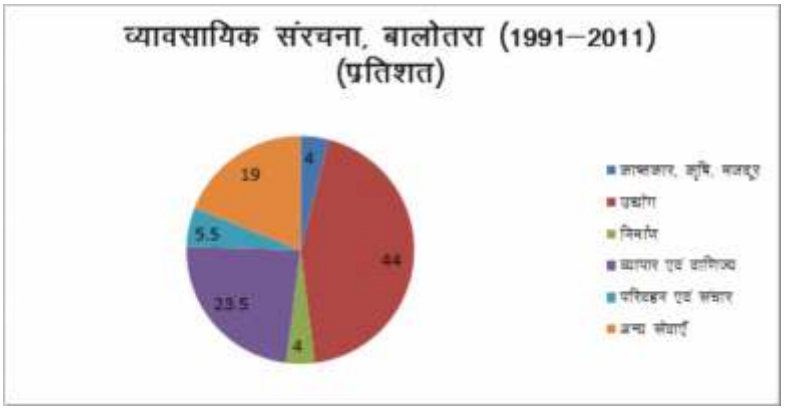

2.3 भूमि उपयोग

बालोतरा नगर परिषद सीमा का कुल क्षेत्रफल लगभग 500 हैक्ट. है। जबकि 1933 हैक्ट. क्षेत्र नगरीकृत है। नगरीकृत क्षेत्र में से 1291 हैक्टे. भूमि विकसित क्षेत्र के अन्तर्गत आती है। विकसित क्षेत्र में से 665 हैक्ट. (51.51 प्रतिशत) भूमि आवासीय, 43 हैक्ट. (3.33 प्रतिशत) भूमि वाणिज्यिक, 207 हैक्ट. (16.03%) भूमि औद्योगिक, 10 हैक्ट. (0.78%) राजकीय भूमि परिसंचरण उपयोग के अन्तर्गत आती है।

तालिका– 3
विद्यमान भू–उपयोग, बालोतरा, 2011

क्र.सं.	भू–उपयोग	क्षेत्र (हैक्ट.)	विकसित क्षेत्र का प्रतिशत	नगरीकृत क्षेत्र का प्रतिशत
1	आवासीय	665	71.89	34.40
2	वाणिज्यिक	43	4.64	2.22
3	औद्योगिक	207	22.37	10.71
4.	राजकीय	10	1.1	0.52
कुल विकसित क्षेत्र		925.00	100	66.78

स्त्रोत :– मास्टर प्लान 2011 एवं सलाहकार के सर्वेक्षण

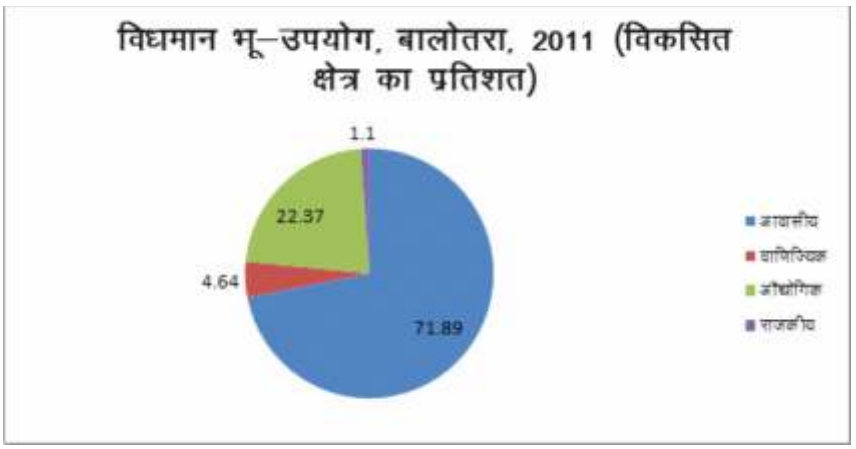

2.4 औद्योगिक

बालोतरा नगर परिषद् राजस्थान का प्रमुख औद्योगिक नगर है। राजस्थान राज्य औद्योगिक विकास एवं विनिवेश निगम द्वारा नगर के उत्तर पश्चिम में खेड़ रोड़ पर चार चरणों लगभग 160 हैक्टेयर भूमि पर औद्योगिक क्षेत्र विकसित किया गया है। इसके अतिरिक्त लूनी नदी के उत्तरी किनारे पर भी औद्योगिक इकाईयाँ संचालित हैं। नगरों में लघु एवं मध्यम श्रेणी के उद्योगों की 716 इकाइयाँ संचालित है जिनमें 7000 श्रमिक कार्यरत है। घरेलू उद्योगों की यहाँ लगभग 1040 ईकाई है। जिनमें 3120 श्रमिक कार्यरत है। नगरों में पंजीकृत औद्योगक इकाईयाँ 245 है। जिनमें 2885 श्रमिक कार्यरत है। यहाँ के पानी में रसायनिक तत्वों की उपलब्धता के कारण रंगाई व छपाई के लिए बहुत अनुकूल हैं। यहाँ रंगाई एवं छपाई उद्योग की इकाईयाँ अधिक है। इनके

अतिरिक्त नगर में मोटा कपड़ा एवं धागे का निर्माण, बेडशीट एवं साड़ियाँ बनाने का उद्योग कार्यरत है। घरेलू उद्योगों में प्रमुखतया बुनाई, रंगाई, छपाई, चुड़ियाँ बनाना, मिट्टी के बर्तन बनाना एवं दरियाँ आदि बनाना प्रमुख है। बालोतरा नगर में पंजीकृत औद्योगिक इकाईयाँ की सूची तालिका– 5 में दर्शायी गई है।

तालिका– 5
वर्ष 2011 में बालोतरा में पंजीकृत औद्योगिक इकाईयों की संख्या

क्र.सं.	औद्योगिक इकाईयों के प्रकार	इकाईयों की संख्या	कार्यरत श्रमिकों की संख्या
1.	वन आधारित	3	35
2.	पशुधन आधरित	1	12
3.	वस्त्र आधारित	180	4259
4.	इंजिनियरिंग आधारित	2	15
5.	अन्य	2	62
योग		188	4383

स्त्रोत–जिला उद्योग केन्द्र, बाड़मेर

2.5 चिकित्सा सुविधाएँ

बालोतरा नगर में बाड़मेर रोड पर एक राजकीय सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र है इसके अतिरिक्त वार्ड नं. 7 में एक पशु चिकित्सालय हैं एवं एक हौम्योपेथिक चिकित्सालय तथा वार्डनं. 17 में 'अ' श्रेणी का राजकीय आयुर्वेदिक औषधालय संचालित है।

तालिका– 7
चिकित्सा सुविधा, बालोतरा– 2011

क्र.सं.	चिकित्सा सुविधा	संख्या
1.	राज. व निजी चिकित्सालय	12
2.	राज. आयुर्वेदिक चिकित्सालय	1
3.	राज. हौम्योपेथिक चिकित्या	1
4.	राज. पशुचिकित्सालय	1
5.	दातों का अस्पताल	4
6.	सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र	75
	कुल	94

स्त्रोत–सर्वेक्षण

2.6 यातायात व्यवस्था

बालोतरा शहर NH-112 (बाड़मेर–जोधपुर), राज्य राजमार्ग–28 (फलौदी–रामजी का गोल), राज्य राजमार्ग–38 (बालोतरा–सिरोही) एवं राज्य राजमार्ग–68 (भांडियावास–बालोतरा) पर स्थित है। बालोतरा नगर बाड़मेर, बायतू, जालौर, सिरोही, जोधपुर अजमेर, जयपुर इत्यादि नगरों से सुगमता पूर्वक जुड़ा हुआ है। NH-112 पर पी.एच.ई.डी. का कार्यालय, सार्वजनिक निर्माण विभाग का कार्यालय, पैट्रोल पम्प इत्यादि व्यवसायिक गतिविधियाँ संचालित हो रही है। इसके अतिरक्ति राज्य राजमार्ग–28 पर बस–स्टैण्ड, अस्पताल, पैट्रोल पम्प के अतिरिक्त शैक्षणिक चिकित्सा एवं सामाजिक गतिविधियाँ

संचालित हो रही है।जिनके कारण इन मार्गो पर सदैव भारी यातायात का दबाव बना रहता है।

बालोतरा में खुदरा बाजार मुख्य रूप से राज्य राजमार्ग के दोनों और स्थित हैं खुदरा बाजार वाले क्षेत्र में लगभग सभी सड़कों पर पार्किंग की कोई सुविधा उपलब्ध नहीं है। यह यातायात के निरंतर बढते दबाव को देखते हुए वर्तमान में हुए अतिक्रमणों को हटाया जाकर आई.आर. सी. द्वारा निर्धारित मापदण्डों के आधार पर सड़कों की चौड़ाई सुनिश्चित किया जाना अतिआवश्यक है।

तालिका– 8
बसों/मालपरिवहन का विवरण

(अ) राजस्थान रोड़वेज बस

क्र.सं.	बस का मार्ग	बसों की संख्या
1.	बालोतरा से जोधपुर–जयपुर'–हिण्डौन	13
2.	बालोतरा से जालौर–उदयपुर–सिरोही–चितौड़	13
3.	बालोतरा से बाड़मेर	12
4.	बालोतरा से सिणधरी–सांचौर–अहमदाबाद	74
	कुल	45

स्त्रोत–जिला परिवहन विभाग सर्वेक्षण

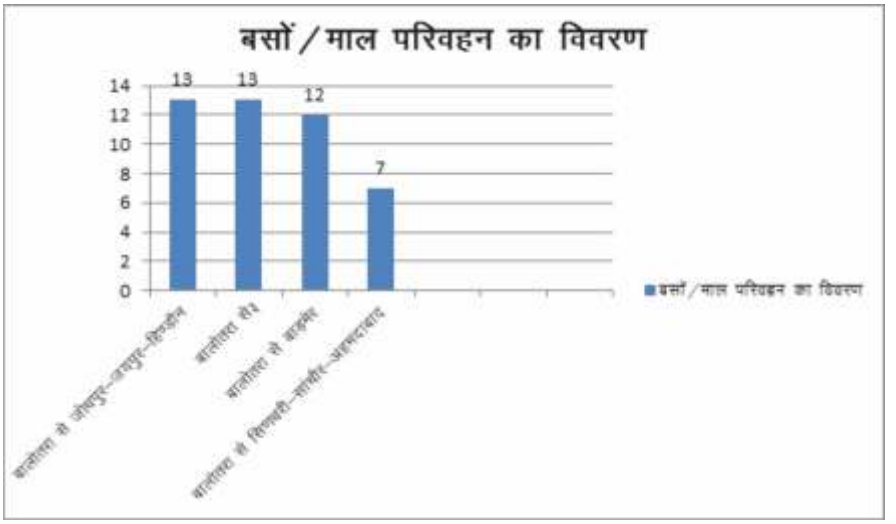

2.7 रेल एवं हवाई सेवा

लूनी बाड़मेर रेलवे लाईन पूर्व से पश्चिम की ओर नगर के मध्य से निकलती है। रेलवे स्टेशन से लगभग 200 मीटर दूरी पर रेलवे क्रासिंग है जो रेल के आवागमन के समय प्रायःबन्द रहता है। जिससे सड़क पर वाहनों की भीड़ हो जाती है। बालोतरा नगर में हवाई अड्डा नहीं है। यहाँ एक समीपस्थ हवाई अड्डा जोधपुर है जो यहां से 115 कि.मी. की दूरी पर स्थित है एक और सैनिक हवाई अड्डा उत्तरलाई में स्थित है जो सामरिक व सैन्य दृष्टि से महत्वपूर्ण है[2]।

3. आँकडे एवं विधि

प्रस्तुत शोध पत्र द्वितीयक आँकड़ो पर आधारित है जिसमें 1991–2011 के आँकड़ो को लेकर विभिन्न तालिकाओं एवं आरेखों के माध्यम से तुलनात्मक विश्लेषण किया गया हैं। प्रस्तुत द्वितीयक आंकड़े जिला सांख्यिकीय रूपरेखा एवं विभिन्न कार्यालयों से एकत्रित किये गये[3]।

3.1 समस्याएँ

- शहरी सघनता के कारण आवागमन व यातायात की सवुविधा।
- स्थानीय प्रशासन का सीमित दायरा।
- रीको क्षेत्र का अभाव।
- कुशल श्रमिकों का अभाव।
- उपखण्ड स्तर पर उच्च चिकित्सा सुविधाओं का अभाव।
- उच्च शिक्षा उपयोगी विकल्पों का अभाव।
- कुषि योग्य क्षेत्रों का निम्न आकार, निम्न तकनीकी, संकीर्ण सोच के सुविधाओं के स्तर का गिरना।

3.2 सुझाव

- बालोतरा परिधि क्षेत्र भौगोलिक प्रक्रमों से प्राप्त प्राकृतिक तत्वों (तेल, गैस व कोयला) के उत्पादन के लिए स्थापित रिफाइनरी से आधारभूत सुविधाओं को प्रभावित किया जा सकता है।
- शहरी के परिप्रेक्ष्य में यातायात संकीर्णता की समस्या समाधान के लिए फ्लाईओवर निर्माण की महत्वपूर्ण भूमिका।
- शहरी क्षेत्रो ंमें आवासीय क्षेत्रों के परिदृश्य में भी परिवर्तन किया जा सकता है।

4. आधारभूत सुविधाओं का आर्थिक पर्यावरणीय प्रभाव

बालोतरा क्षेत्र में उत्पादन के साधनों एवं धन के वितरण से संबंध रखने वाले वे विभिन्न समष्टि स्तर के तत्व सम्मिलित है।जिनका व्यवसाय एवं उद्योग पर प्रभाव पड़ता है :–

- आर्थिक ढाँचे का मिश्रित अर्थव्यवस्था का स्वरूप
- ढाँचागत तत्व जैसे–वित्तीय संस्थान, बैंक, परिवहन के साधन, संदेशवाहन की सुविधाएँ आदि।
- इस क्षेत्र में व्यावसायिक उद्यम अपने कार्य संचालन पर आर्थिक पर्यावरण के महत्व एवं प्रभाव को स्वीकार करता है। इस क्षेत्र में व्यवसाय के आर्थिक पर्यावरण में कुछ समय के बाद से ही निरन्तर बदल रहा है।

आर्थिक नियोजन के अनुरूप ही सरकार ने ढाँचागत उद्योगो के लिए सार्वजनिक क्षेत्र को प्रमुख सौंप रहे है।जबकि निजी क्षेत्र को उपभोक्ता की वस्तुओं के विकास का उत्तरदायित्व सौंपा जिससे उच्च जीवन स्तर, बेरोजगारी व गरीबी के लिए तीव्र आर्थिक विकास का प्रांरभ कर सकें[4]।

5. परिणाम एवं विश्लेषण

बालोतरा नगर के संबंध में ऊपर वर्णित उपरोक्त सभी आंकड़ों, पहलुओं एवं योजनाओं के आधार पर आगामी समय में निम्न परिणाम आने की संभावना है :–

जनसंख्या एव व्यवसायिक संरचना :– इस शहर के पुराने क्षेत्रो ंमें जनसंख्या घनत्व अधिक है तो आवासीय घनत्व में विषमताओं को कम किया जाना चाहिए।नये आवासीय क्षेत्र व कार्य केन्द्र मूलभूत सुविधाओं के साथ विकसित किये जान चाहिए ताकि पुराने क्षेत्र में रहने वाले व्यक्ति बाहरी क्षेत्र में बसने के लिए आकर्षित हो सके। नये क्षेत्रों को इस प्रकार विकसित किया जाना चाहिए कि नये क्षेत्रों एवं नगर के पुराने क्षेत्रों के मध्य उचित सामाजिक एवं भौतिक सामंजस्य बना रहे। नये आधारभूत सुविधाएँ क्षेत्रों में उपलब्ध करवाकर व्यवसायिक संरचना में परिवर्तन आ सकता है[5]।

6. निष्कर्ष :– उपरोक्त विश्लेषित शोध पत्र विवेचनानुसार निम्न निष्कर्षो पर पहुँचा जा सकता है, जो निम्न प्रकार है :–

किसी भी क्षेत्र के विकास का आधार स्तम्भ महत्वपूर्ण आधारभूत सुविधाएँ होती है उपरोक्त विवेचन व तथ्यों से स्पष्ट है कि बालोतरा क्षेत्र के विकास को नई दिशा देने में रिफाइनरी, प्राकृतिक उत्पाद प्लांट, कोयला, प्राकृतिक गैस, सामरिक एयरवेज, प्रादेशिक/राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय परिवहन जुड़ाव इत्यादि प्रकार के उपक्रमों के स्थापन से स्थानीय आधरभूत सुविधाओं में विकास के सकारात्मक व नकारात्मक परिणाम प्रदर्शित है।

सकारात्मक परिणामों में देखा जाए तो उपरोक्त उपक्रमों के विकास से पुरूष चयनात्मक आप्रवास अत्यधिक हुआ है।जिसमें उच्चस्तरीय प्रौधोगिक व तकनीकी का स्थानीय स्तर पर प्रसार होगा। वैश्विक परिवहन पर इस क्षेत्र को स्थान मिलेगा। यहाँ उच्च स्तरीय चिकित्सा सुविधाओं का विकास होगा।उच्च तकनीकी व प्रौद्योगिक संस्थानों के स्थापन से स्थानीय जनता को मदद मिलेगी। इस क्षेत्र का सड़क रेल व

वायु स्तरीय परिवहन मार्गो का विकास होगा। औद्योगिक विकास के साथ–साथ स्थानीय उत्पाद पोपलीन व नाइटी का प्रादेशिक स्तर पर पहचान मिलती है। जिससे इस क्षेत्र में रहने वाले लोगों के जीवन की आधारभूत सुविधाओं में परिवर्तन आयेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *Pal, M.N. (1975), "Regional disparties in the level of development in India". (Indian Journal of regional science), Vol. PP. 35-52.*
2. *Sharma, K. L. (1975), "Spatial disparties in Rajasthan Indian Journal of Regional science", Vol. VII No. 1, PP. 88-98.*
3. *Tyagi, B.N. and chaturvadi, B.K. (1983): "Regional disparties – A measure and an Expalnation". IJRS Vol. XV No. 2 (1983), PP. 99-107.*
4. *Mishra, R.N. (2011), (Regional disparties : A Methodological studies). In P.R. Sharma etal. (eds.) (Research Methodology. Concept and studies). R.K. Books, New Delhi, PP. 394-417.*
5. *Balotra master plan, (2011-2031), PP. 13-52*
6. *Block Publication, (2015) : Directorate of Economics and Statistics Rajasthan.*
7. *Census of India, 2011.*
8. *www.barmer.rajasthan.gov.in*

राजस्थान की साँभर झील में पक्षी त्रासदी

रामकिशन माली
शोधार्थी, राजकीय शाकम्भर स्नातकोत्तर महाविद्यालय, साँभर लेक (जयपुर)

डॉ. डी. सी. डूडी
एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, राज. शाकम्भर स्नातकोत्तर महाविद्यालय, साँभर लेक (जयपुर)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

प्रदेश की सबसे बड़ी खारे पानी की झील सांभर झील है, इसमें देश की सबसे बड़ी पक्षी त्रासदी बोटूलिज्म के कारण हुयी। इसमें एक ऐसा पॉजिटिव स्पोर निर्माण करने वाला बेक्टीरिया है, जो ऑक्सीजन विहीन वातावरण में सक्रिय होकर टोक्सिन छोड़ने लगता है। भोजन व पानी के साथ मिले इन टोक्सिन के प्रभाव से पक्षी लकवाग्रस्त होकर मर जाते हैं और इन मृत पक्षियों के शरीर में मैगट्स (कीड़े) पड़ जाते है, दूसरी ओर अन्य पक्षियों के द्वारा जब इन मृत पक्षियों में पड़े मैगट्स को खाया गया तो ये पक्षी भी लकवाग्रस्त होकर मरने लगे, इस प्रकार यह चक्र चलता रहा जिससे देश की सबसे बड़ी पक्षी त्रासदी हुयी।

संकेताक्षर : *एवियन बोटूलिज्म, जल विषाक्तता, पॉजिटिव स्पोर, जहरीली एल्गी, मैगट्स, रेस्क्यू, बफर ज़ोन, सेलाइन इकोलॉजी।*

प्रदेश की सबसे बड़ी खारे पानी की झील जो कि 90 वर्ग मील में फैली हुयी है, सांभर झील का विस्तार $26^0 52'$ - $27^0 02'$ उत्तरी अक्षांश व $74^0 54'$ - $75^0 14'$ पूर्वी देशांतर है।[1] झील के भराव क्षेत्र में देशी व विदेशी पक्षियों की अटखेलियाँ देखने सैंकड़ों पर्यटक आते हैं, भिन्न-भिन्न प्रजातियों के पक्षी हर वर्ष की भाँति यहाँ आते हैं, लेकिन इस वर्ष की त्रासदी पक्षियों के लिये अभिशाप बन गयी।

मानव द्वारा पर्यावरण/प्रकृति से की गयी छेड़छाड़ के कारण देश की सबसे बड़ी पक्षी त्रासदी साँभर झील में हुयी, जिसके निम्न कारण हैः-

पक्षी त्रासदी के कारण

1. प्रथम दृष्टया बीमार पक्षी के अवशेषों को खाने से उसके कीटाणु स्वस्थ पक्षियों के शरीर में पहुँच गए, इससे बीमार होकर पक्षियों के मरने का सिलसिला जारी है यह सिलसिला तब तक जारी रहेगा जब तक झील से जितनी जल्दी हो सके मृत पक्षियों के शवों को निकालकर डिस्पोज नहीं किया जाता।[2]

2. बोटूलिज्म – विशेषज्ञों के अनुसार प्रथम दृष्टया पक्षियों की मौत की वजह बोटूलिज्म यानी मृत पक्षियों के जीवाणुओं से मौत होना माना जा रहा है। कई किमी. में फैली साँभर झील में दलदल इलाके में अब भी हजारों मृत पक्षी है। इन पक्षियों के जीवाणुओं को खाने से पक्षियों में बोटूलिज्म फैलने की आशंका बढती जा रही है, इसमें पक्षी के पैर में लकवा आता है, फिर पंखों में लकवा आने से चलने व उड़ने में असमर्थ हो जाता है जिससे पक्षियों मौत हो जाती है। चिकित्सकों की टीम का कहना है कि मरने वालों में शाकाहारी पक्षी कम है।[3]

वन्य जीव चिकित्सक ने बताया कि पक्षियों के पैरों में इस बीमारी के लक्षण भी पाए गये हैं, पक्षियों की मौत का सिलसिला रोकने एवं बोटूलिज्म के जीवाणु नहीं फैलने से रोकने के लिए झील से सभी मृत पक्षी निकालने आवश्यक है।

3. झील के पानी का विषाक्त होना– पक्षीविदों का कहना है कि इतनी बड़ी संख्या में पक्षियों के मरने का एक कारण पानी में विषैला पदार्थ मिलना हो सकता है, जिससे पक्षियों की मौत हो रही है। वहीं कोई रोग भी फैल सकता है जिससे पक्षी मर रहे है।

4. क्लोस्ट्रीडीयम बोटुलिज्म : जिसके संक्रमण को साँभर की सबसे बड़ी पक्षी त्रासदी बताया जा रहा है, एक ऐसा ग्राम पॉजिटीव स्पोर निर्माण करने वाला बैक्टीरिया है, जो ऑक्सीजन विहीन वातावरण में सक्रिय होकर टॉक्सीन छोड़ने लगता है। भोजन या पानी के साथ मिले इन टॉक्सीन के प्रभाव में पक्षी लकवाग्रस्त होकर मर जाते है। इस दुष्प्रभाव से मरने वाले पक्षियों को जमीन में गाड़ा जाता है तो निसंदेह बैक्टीरिया को एक तरीके से मिट्टी में स्पोर (बैक्टीरिया की निष्क्रीय कॉलोनी) निर्माण का फिर से मौका मिलेगा और जैसे ही ये किसी स्केवेंजर प्राणी कुत्ते, बिज्जू, गिद्ध इत्यादि के संपर्क में आयेंगे, तो इस महामारी के दोबारा फैलने की आशंका रहेगी।[4]

5. अवैध बिजली के तार (केबल) कनेक्शन, अवैध नलकूप (बोरवेल) – कुछ स्थानीय कर्मचारी व लोगों का कहना है कि झील के अधिकांश क्षेत्र में अवैध बिजली के तार फैले होने के कारण झील के पानी में करंट आने से पक्षियों की मौत हुयी है।

6. झील का घटता जलस्तर – झील में लगातार पक्षियों के शव मिलने का सिलसिला जारी रहने से प्रदेश की नमक की सबसे बड़ी झील का अस्तित्व संरक्षण के अभाव में संकट में नजर आ रहा है। प्रशासन ने समय रहते सरंक्षण के लिए ठोस कदम और योजना तैयार नहीं किए जाने पर अब इस झील का अस्तित्व मिटते हुए नजर आ रहा है। पक्षी विशेषज्ञों के अनुसार लगातार झील का जलस्तर घटना भी पक्षियों की मौत का कारण बन रहा है लेकिन प्रशासन व सरकार द्वारा इस ओर ध्यान नहीं दिया जा रहा है।

साँभर झील क्षेत्र वन विभाग के अधीन नहीं आने के कारण वन विभाग भी पक्षियों की सुरक्षा और इनके विकास के लिए कार्य करने में लाचार नजर आ रहा है। वन विभाग के अधिकारियों के अनुसार साँभर झील, साँभर साल्ट लिमिटेड व हिन्दूस्तान साल्ट कंपनी के अधीन आती है।

7. झील के पानी में नमक की मात्रा अधिक होना– झील के पानी में नमक की मात्रा अधिक होने से भी इन पक्षियों की मौत होने की आशंका हो सकती है, लेकिन लैब जाँच की रिपोर्ट आने के बाद ही इस मामले को स्पष्ट किया जा सकता है।

8. जल प्रदूषण व जहरीली एल्गी का पनपना – हाल ही में मानसून के दौरान साँभर क्षेत्र में हुए भराव से जल प्रदूषण और जहरीली एल्गी पनपने की आशंका है। इससे दूषित पानी पीने से पक्षियों की मौत हो सकती है। जाँच के नतीजे आने पर ही ये सुनिश्चित

किया जाएगा कि किसी भी पक्षी की मौत नहीं हो।[5]

राज्य सरकार यह प्रयास कर रही है कि पक्षियों की मौत पर जल्द से जल्द प्रभावी अंकुश लगाया जा सके।

9. भूख तो नहीं मौत का कारण – जानकारों का मानना है कि कहीं इन पक्षियों की मौत का कारण भूख तो नहीं है क्यों कि यहाँ पर जो बारिश का पानी आता था उसमें पायी जाने वाली मछलियां पक्षियों का निवाला थी लेकिन नागौर जिले की नावां में बड़े स्तर पर झील के पानी की चोरी का सिलसिला जारी है। नमक उत्पादक झील से पानी की चोरी कर रहे, इससे झील में मछलियां अधिक नहीं हुई और लाखों पक्षियों को काई व मछलियां पर्याप्त मात्रा में नहीं मिली। आशंका है कि आहार नहीं मिलने से पक्षियों की मौत हो रही है अब अगर इन पक्षियों को मक्का व बाजरे का दलिया बनाकर झील में ढाला जाए एवं मछली पालन हो तो पक्षियों को भरपेट भोजन मिल सकता है।[6]

10. IVRI बरेली रिपोर्ट के अनुसार मौत का कारण एवियन बोटूलिज्म बीमारी – बरेली की रिपोर्ट के अनुसार लगभग 14 दिन पहले जब पहली बार मृत पक्षी मिले थे जिसमें मैगट्स (कीड़े) पड़े थे। यह कीड़ों की तीसरी स्टेज थी, जो कि क्लियर बताता है कि पक्षियों का मरना 14–15 दिन पहले शुरू हो गया, यह पक्षी मरकर पानी में डुब गए और पानी कम हुआ तो ऊपर आने लगे। दूसरे आए पक्षियों ने जब इन पक्षियों में पड़े मैगट्स को खाया तो वो भी मरने लगे और यह साईकिल चलता रहा।[7]

दूसरी ओर, इस बार ज्यादा बारिश से 20 साल बाद झील लबालब हो गई ओर झील में नए तट बन गये लेकिन धीरे–धीरे पानी घटा तो तटों पर खारापन बढ़ गया, इससे छिछले पानी में सुक्ष्मतम जीव जैसे–क्रस्टेशियन, इनवर्टिब्रेट, प्लेंक्टोस विषैले होकर मरने लगे। इनको खाते ही एवियन बोटूलिज्म बीमारी से पक्षियों की सांसे घूटने लगी, इनके शव सड़ने–गलने लगे, इनमें कीड़े पड़े जिन्हें खाने के बाद पक्षियों की मौत होने लगी।

पक्षी त्रासदी दूर करने के उपाय/सामाधान

1. पशुपालन विभाग द्वारा 14 टीमें गठित की गई, जिसमें 14 डॉक्टर 26 कॉम्पाउण्डर समेत स्टाफ को नियुक्त किया गया है, इन सभी के द्वारा झील के चारों ओर एरिया में रेस्क्यू, इलाज, जांच आदि की गयी, साथ ही कुचामन और जयपुर लैब से तकनीकी टीम भी पहुँची।[8]

2. वायु शुद्धिकरण के लिए हवन – साँभर लेक आर्य समाज व साँभर लेक कस्बे में कई हिस्सों में प्रतिदिन अलग–अलग स्थानों पर झील के किनारे वायु शुद्धिकरण के लिए हवन यज्ञ किया जा रहा है।
3. प्रशासन द्वारा अवैध बिजली तार कनेक्शन, नलकूप व पाइपलाइनों का जाल हटाया जायेः– राज्य सरकार को कड़े कदम उठाते हुये झील से पानी व बिजली चोरी को तुरन्त रोकना चाहिए जिससे झील में पानी चोरी होना बंद हो जाये और पक्षियों के लिए पर्याप्त पानी उपलब्ध हो सके और झील में अवैध रूप से डाली गई पाइपलाइन व विधुत की लाइनों को भी निकाला जाए। साथ ही साँभर झील के नावां क्षेत्र में कई रिफाईनरियां लगी है, उनका अपशिष्ट भी झील में आने से रोका जाए।[9]
4. साँभर झील के पूरे क्षेत्र को वन भूमि घोषित करें या वन्यजीव संस्थान को सौंपा जावे।
5. झील के चारों ओर दो किमी का क्षेत्र जो कि पर्यावरण के प्रति संवेदनशील क्षेत्र को ''बफर जोन'' घोषित करें।
6. साँभर साल्ट ने जो लीज दे रखी है, उसे बंद किये जाये क्योंकि वे वेस्ट को झील में डाल रहे है।

7. संरक्षण को साँभर डवलपमेंट या कंजर्वेशन अथॉरिटी बनाया जाए।

8. वेटलैंड कंजर्वेशन रूल्स 2017 के नियमों का पालन कराया जाए ताकि क्षेत्र में चल रही गैर कानूनी गतिविधियों को रोका जा सके।

9. झील में पड़े मृत पक्षियों को प्राथमिकता से बाहर निकालकर उनको डिस्पोज किया जाये।

10. झील में पड़े मृत पक्षियों का हाई डेनसिटी के ड्रोन कैमरों से पता लगाकर उन्हें इंफ्लैक्टेड ट्यूब के जरिए निकाला जाए।

11. पानी में ऑक्सीजन की मात्रा बढ़ाएं, भारी धातु साफ हो, मल्टी विटामिन खिलाएं – पानी में ऑक्सीजन की मात्रा बढ़ानी पड़ेगी ताकि नमकीनपन का असर कम हो, इसके अलावा झील के तटों पर जो भारी धातु है, उसको साफ करना बहुत जरूरी है बीमार पक्षियों को भोजन मे मल्टी विटामिन बढ़ाने से रोग को जल्दी ही दूर किया जा सकता है।

12. ठेके निरस्त कर पक्षियों को संरक्षित किया जाये – जैव विविधता समिति के अनुसार प्रवासी पक्षियों का मुख्य भोजन मछलियाँ व काई है, लेकिन साँभर झील में फैली बीमारी के बाद बांधो में पक्षियों को आसरा नहीं दिया जा रहा है अतः पक्षी सरंक्षण को ध्यान रखते हुये सरकार द्वारा इन बांधों के ठेके को निरस्त किया जाना चाहिये।

13. ऐसी पक्षी त्रासदी फिर न हो, इसके लिए एक अंतरराष्ट्रीय वर्कशॉप आयोजित कर एक प्रोटोकॉल बनाए जो देशव्यापी हो।

14. वन्य जीवों की बीमारी, निदान, दवा, रेस्क्यू के लिए अन्तरराष्ट्रीय स्तर का संस्थान स्थापित हो।

15. साँभर में सैलाइन इकोलॉजी को ध्यान में रख विशेष प्रबंधन हो।[10]

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *शर्मा, आर.के. 1995 : सांभर क्षेत्र में ओद्योगिक विकास की संभावना पृ. सं.23*
2. *Rajasthan Patrika News Paper*
3. *Dainik Bhaskar News Paper*
4. *www.newindiaexpress.com*
5. *Indiatoday News Paper*
6. *www.timsofindia.com*
7. *www.thehindu.com*
8. *Forest Department, Govt. of Rajasthan. Page No.9*
9. *Hindustan Salt Limited (Year Book) Page No.32*
10. *Sambhar Lake Salt Sources (Govt. of India) Page No.41*

प्रमुख आदिवासी समुदाय एवं उनकी वेशभूषा

रेखा जौरवाल
सहआचार्य, गौरीदेवी राजकीय महिला महाविद्यालय, अलवर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

आदिवासी समाज अपेक्षाकृत रूप से अल्प-विकसित एवं पिछड़ा समाज है जिसकी एक निश्चित भाषा, संस्कृति और धर्म है। ये आदिवासी समुदाय भारत के विभिन्न क्षेत्रों में सदियों से निवास करते रहे हैं। जिनका अपने जल, जंगल और जमीन से गहरा जुड़ाव रहा है। इनकी अपनी वेशभूषा और संस्कृति है जो इनकी पहचान की प्रतीक है। राजस्थानी जनजातियों में मीणा, भील, डामोर सहरिया, कथौडी आदि अनेक जनजातीय समुदाय हैं। जिनकी अपनी अलग-अलग सांस्कृतिक विशेषताएँ हैं। इनकी रंग-बिरंगी वेशभूषाओं से युक्त लोकसंस्कृति अपने आप में अनूठी है। लेकिन अंग्रेजी शासनकाल में ब्रिटिश कानूनों के तहत इनकी सम्पत्ति विषयक अवधारणा का क्षरण हुआ। जिससे ना केवल उनकी सामुदायिकता की भावना पतोन्मुख हुई बल्कि भूमि व्यवस्था भी भंग हुई और निजी संपत्ति विषयक में अवधारणा की भावना ने भी इनकी जड़ों को कमजोर किया जिससे संस्कृति और परम्परा का क्षरण हुआ। आज इनकी लोकसंस्कृति की रक्षा करना हम सबकी जिम्मेदारी है। एकतरफ जहाँ इनका विकास आवश्यक है, वहीं इनकी संस्कृति का संरक्षण भी जरूरी है।

संकेताक्षर : *आदिवासी जंगल, वेशभूषा, लोक-संस्कृति, जमीन, रीति-रिवाज।*

आदिवासी समाज का जीवन हर समय संघर्षो से घिरा रहता है। आदिवासी जहाँ निवास करते हैं, उसे प्रकृति ने अनेक बहुमूल्य सम्पदाओं से नवाजा है, फिर भी वह अनेक प्रकार के अभावों में जीते हुए भी हमेशा प्रसन्न रहता है। इसी प्रकार का राज्य राजस्थान है, जहाँ के आदिवासी अनेक संघर्षो के बाद आज भी अरावली पर्वतमाला की पहाड़ियों, घने जंगलों तथा राजस्थान के अन्य हिस्सों में निवास कर रहे हैं। राजस्थान भारत का सबसे बड़ा राज्य होने के साथ-साथ अपनी ऐतिहासिकता के कारण इतिहास के पन्नों पर देखा जाता रहा है। राजस्थान को भारत सरकार ने आदिवासी बाहुल्य क्षेत्र माना है, क्योंकि भारत की कुल जनसंख्या का 8.8 प्रतिशत जनसंख्या इस प्रदेश में निवास करती है।

राजस्थान की कुल जनसंख्या का 12 प्रतिशत जनसंख्या आदिवासी हैं। राजस्थान में लगभग 12 प्रकार की आदिवासी जनजातियाँ निवास करती हैं। जिसमें भील, मीणा, गरासिया, सहरिया, डामौर, और कथौड़ी आदि जनजातियाँ प्रमुख हैं। राजस्थान में निवास करने वाली विभिन्न आदिवासी जातियाँ अपने ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के कारण देश विदेशों में ख्याति प्राप्त हैं। राजस्थान की अधिकांश आदिवासी जनसँख्या डूंगरपुर, बांसवाड़ा, प्रतापगढ़, उदयपुर, चित्तौडगढ़, करौली, भीलवाड़ा और सिरोही जिलों में निवास करती है। रंग-बिरंगे परिधान और विशिष्ट जीवन शैली के कारण राजस्थान के आदिवासी देश-दुनिया में अलग पहचान बनाए हुए हैं। राजस्थान के आदिवासियों का रहन-सहन एकदम सादा और पारम्परिक है। राजस्थान की आदिवासी जनजातियाँ अब शिक्षा भी ग्रहण करने लगी हैं। जिसके कारण इन्हें राजकीय और गैर-राजकीय पदों पर कार्यरत होकर देश की सेवा करने का मौका मिल रहा है। आज राजस्थान के अनेक आदिवासी समुदाय बड़े सभ्य और शिष्टाचार युक्त जीवन व्यतीत करते हैं।

राजस्थान के आदिवासियों के लक्षण

आदिवासी समाज एक विशिष्ट समाज है। आदिवासियों का एक सामाजिक समूह होता है, वह एक विशेष पर्यावरण में

रहना ही पसन्द करते हैं। इस पहचान के आधार पर उनकी विशेषताओं एवं लक्षणों को समझा जा सकता है। राजस्थान के आदिवासियों के अपने कुछ सामान्य लक्षण हैं जो निम्न प्रकार से हैं –

(क) राजस्थान के आदिवासी आधुनिक विकसित समाजों से अलग अरावली पर्वतमाला तथा घने जंगलों और दुर्गम स्थानों (मरुस्थल) में निवास करते हैं।

(ख) राजस्थान के आदिवासी निरोटीज, एस्ट्रीलाइट अथवा मंगोलाइड़ के किसी न किसी प्रजातीय समूह से संबंध रखते हैं।

(ग) राजस्थान के आदिवासी एक अलग प्रकार की ''भीली'' भाषा का प्रयोग करते हैं।

(घ) राजस्थान के आदिवासी ''आदिम धर्म'' को मानते हैं जो कि सर्वजीवनवाद के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता है। जिसमें भूतों तथा आत्माओं की पूजा की जाती है।

(ड) राजस्थान के आदिवासी आर्थिक स्तर पर पहाड़ों एवं जंगलों पर आश्रित हैं। अतः वे वन में उपलब्ध वस्तुओं कत्था गोंद, लकड़ी आदि को बेचकर अपना जीवन निर्वाह करते हैं।

(च) राजस्थान के आदिवासियों की आदतें खानाबदोशी जैसी हैं तथा मदिरा सेवन और नृत्य के प्रति उनकी विशेष रुचि होती है। विभिन्न उत्सवों और त्योहारों पर उनकी मद्यपान अभिरुचि भी देखी जा सकती है।

(छ) राजस्थान के आदिवासी सदा से कला प्रेमी रहे हैं, जिस कारण उनके नृत्य और कारीगरी देश–विदेश में ख्याति प्राप्त है।

कुछ प्रमुख आदिवासी समूहों का परिचय इस प्रकार हैः–

मीणा आदिवासी :– देश की अति प्राचीन जनजाति मीणा राजस्थान की सबसे बड़ी जनजाति है। यह जनजाति इस प्रदेश की प्राचीनतम जनजातियों में से एक है। ऐसा माना जाता है कि भारत में आर्यों के आगमन से पूर्व ये निवास करते थे। मीणाओं का उत्पत्ति के बारे में कहा जाता है कि 'मीणा शब्द को उत्पत्ति ''मीन'' (संस्कृत पर्याय–मत्स्य) से हुई है, मीणा लोग अपनी उत्पत्ति विष्णु के प्रथम अवतार मत्स्यावतार से मानते हैं जिसकी कथा मत्स्य पुराण में सविस्तार दी गई है। हो सकता है, वह अवतारी पुरुष मत्स्य (मीणा) जाति का ही कोई पराक्रमी पुरुष होगा जिसने संकट–काल में आर्यों की विनाश से रक्षा की। उसके इस महान कार्य को सम्मान देते हुए ही बाद में उसे विष्णु का अवतार मान लिया गया होगा। इतिहासकारों के अनुसार मीणा लोग प्रोटो– द्रविड़ है तथा जिनका चिह्न ''मीन'' माना जाता है। राजपूतों के आगमन से पूर्व राजस्थान के कई भागों में मीणा जनजाति के लोग रहते थे।

राजस्थान में मीणा आदिवासी मुख्यतः जयपुर, अलवर, सवाईमाधोपुर, चित्तौडगढ़, उदयपुर आदि जिलों में निवास करते हैं। मीणा जनजाति अनेक वर्गों, उपजातियों में विभाजित है। मीणा जनजाति में पितृसत्तात्मक परिवार प्रचलित हैं, तथा इसमें संयुक्त परिवार अधिक पाए जाते हैं। महिलाओं की सामाजिक स्थिति सुदृढ़ होती है। इस जनजाति में शाकाहारी व मांसाहारी दोनों प्रकार के लोग होते हैं। उत्सव, पर्व एवं त्योहारों पर शराब का सेवन भी किया जाता है। मीणा जनजाति की धार्मिक मान्यताएं, पूजा–पाठ, विविध रीति–रिवाज एवं सभी संस्कार हिन्दुओं जैसे हैं। इस जनजाति के लोग शैव तथा शाक्त अर्थात शिव व शक्ति की उपासना करते हैं। मीणा लोगों की अर्थव्यवस्था कृषि पर आधारित है। इनकी जीविका का दूसरा मुख्य आधार पशुपालन है। राजस्थान में निवास करने वाले मीणा आदिवासी के व्यक्तियों ने भारत सरकार एवं राज्य सरकार द्वारा आदिवासियों के लिए दी जाने वाली योजनाओं एवं संवैधानिक प्रावधानों का लाभ भी सर्वाधिक उठाया है। राजस्थान के जयपुर, सवाई माधोपुर, अलवर क्षेत्र में निवास करने वाली मीणा जनजाति आई.ए.एस., आर.ए.एस. और अध्यापक जैसे पदों पर आसीन हैं तथा इनकी आर्थिक स्थिति अन्य आदिवासियों की तुलना में सुदृढ़ देखी गई है।

भील आदिवासीः– भारत की जनजातियों में भील जनजाति का प्रमुख स्थान है। अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक परम्पराऐं, देशभक्ति, शौर्य, साहस, कर्तव्य परायणता एवं बेमिसाल स्वामी भक्ति के कारण राजस्थान का यह आदिवासी समुदाय न केवल भारतवर्ष में वरन् विश्व में भी बड़ा चर्चित रहा है। भील जनजाति का अपना इतिहास और अपनी संस्कृति है। ऐसा माना जाता है कि 'भील शब्द द्रविड़ भाषा के 'बील' शब्द से निकलता है जिसका अर्थ कमान अर्थात् धनुष है। धनुष बाण भील जनजाति के मुख्य शस्त्र हैं। धनुर्विद्या में दक्ष होने के कारण ही यह जाति भील

कहलाई। ''राजपूतों के उदय से पूर्व राजस्थान के मेवाड़, वागड़ और हाड़ौती प्रदेश में भीलों का आधिपत्य था तथा राजपूतों ने भीलों को पराजित करके ही अपने राज्यों की स्थापना की थी। ''राजस्थान में भील सरदारों के नाम पर अनेक शहर बसे हुए हैं। कोट्या भील के नाम पर कोटा, कुशला भील के नाम पर डूंगरपुर बसा हुआ है।'' अंततः यह माना जा सकता है कि राजपूतों के शासन से पूर्व भील सरदार ही यहाँ के शासक थे।

भील आदिवासी पहाड़ी ढलानों पर अलग-अलग झोपड़ियां बनाकर रहते हैं। भील समाज में प्राथमिक परिवार का प्रचलन अधिक है। जिसमें पति पत्नी व बच्चे शामिल रहते हैं। भीलों के सामाजिक संगठन का आधार गोत्र व्यवस्था है। भील जनजाति के लोग तंत्र-मंत्र जादू टोने में अधिक विश्वास रखते हैं। होली, दीपावली, रक्षाबंधन, नवरात्रि इनके प्रमुख त्योहार हैं। नृत्य-गीत व संगीत का भील जनजाति में बहुत महत्व है। भील जनजाति में गेर, गवरी, गरबा व अन्य नृत्य प्रमुख हैं। भीलों की मुख्य भाषा ''भीली'' बोली है जो वागड़ी, गुजराती व हाड़ौती का मिश्रण है। भील जनजाति मुख्यतः वनों पर निर्भर रही है। कृषि कार्य, वन उपज संग्रहण, पशुपालन तथा मजदूरी करना इनका मुख्य आर्थिक आधार है। बेणेश्वर मेला' और 'घोटिया आम्बा मेला' भीलों के प्रमुख मेले हैं।

भील जनजाति के समग्र उत्थान एवं सुधार हेतु समय समय पर महान संतों व समाज सुधारकों जैसे संत मावाजी, गोविन्द गुरु, मोतीलाल तेजावत, भोगीलाल पाण्डया एवं माणिक्य लाल वर्मा ने उच्च स्तरीय आध्यात्मिक, सामाजिक जीवन जीने तथा पवित्रता, स्वच्छता व नैतिकता का पाठ पढ़ाया। भील जनजाति ने स्वाधीनता के बाद जनजाति क्षेत्रीय विकास की विविध योजनाओं का लाभ उठाया है। शिक्षा के प्रचार प्रसार के बाद इनको राजकीय तथा विविध सेवाओं में इनका प्रवेश हुआ है।

गरासिया आदिवासी :- रंग-रंगीले परिधानों से लदे परम्परागत रीति-रिवाजों एवं विशिष्ट जीवन शैली के गरासिया, राजस्थान की तीसरी बड़ी जनजाति है। ''गरासिया अपनी उत्पत्ति राजपूतों से मानते हैं। कर्नल टॉड के अनुसार 'ग्रास' शब्द से व्युत्पन्न ''गरासिया'' राजकुमार द्वारा विशिष्ट सेवा के बदले प्रदत्त 'आजीविका' या भूमि प्राप्त लोग हैं। गरासिया जनजाति के लोग सिरोही, पाली, उदयपुर जिलों में निवास करते हैं गरासिया गांव 'पालों' में बंटे होकर पहाड़ी ढलाने पर बसे हैं। गरासिया परिवार पितृसत्तात्मक होते हैं। परिवार में महिलाओं का स्थान उच्च व महत्वपूर्ण होता है। गरासिया जनजाति का सांस्कृतिक परिवेश अन्य आदिवासियों से भिन्न होने के साथ रंग-बिरंगे चटकदार रंग वाले भारी परिधान गरासिया महिलाओं की विशेष पहचान है, जो उन्हें अन्य जनजातियों से अलग करती है और विशिष्ट बनाती है। गरासिया जनजाति का मुख्य व्यवसाय कृषि, मजदूरी व वन उपज संग्रहण है। वनों के विनाश एवं अकाल के दुष्प्रभाव से यह जनजाति मुख्यतः मजदूरी पर निर्भर हो गई है। आज इस समुदाय का भी हिन्दूकरण हो चुका है। होली, दीपावली, नवरात्रि रक्षाबंधन, गणगौर इनके प्रमुख त्योहार हैं। अपने क्षेत्र के मेलों में गरासिया उत्साह से भाग लेते हैं। गरासिया जनजाति की साक्षरता दर अब भी कम है। विकास कार्यक्रमों से लाभ प्राप्त करने के बाद भी इस जनजाति का आर्थिक उत्थान अभी शेष है।

सहरिया आदिवासी :- राजस्थान के बारां जिले की किशनगंज एवं शाहबाद तहसील के ग्रामीण क्षेत्र की पहाड़ियों में सहरिया आदिवासी निवास करते हैं। राज्य के अन्य आदिवासियों की तुलना में सहरिया आदिवासी सामाजिक व आर्थिक स्थिति से अत्यन्त दयनीय हैं। इस कारण सहरिया जनजाति को 'आदिम जनजाति समूह की सूची में रखा गया है। राजस्थान में सहरिया आदिवासियों के साथ सर्वाधिक शोषण हुआ है। ये वर्तमान में अत्यन्त संकट एवं गंभीर समस्याओं के बीच अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं। सहरिया जनजाति के लोगों का भोजन व रहन सहन हिन्दुओं की तरह होता है। ये आदिवासी हिन्दू देवी-देवताओं की पूजा करते हैं। शिक्षा का अभाव होने के कारण यह जनजाति अब भी अन्य आदिवासी लोगों की तरह जीवनयापन नहीं कर रही है।

राजस्थान में इसके अलावा भी डामोर, कथौड़ी और गाड़िया लोहार जैसी आदिवासी जनजातियाँ निवास करती हैं। ये आदिवासी राजस्थान के डूंगरपुर, बाँसवाड़ा, उदयपुर और अन्य जिलों में निवास करते हैं। डामोर आदिवासी अधिकांशतः आदिवासी उपयोजना क्षेत्र में निवास करते हैं और इनमें कहीं-कहीं यह भी देखा गया है कि डामोर एक उपजाति के रूप में प्रयोग किया जाता है और ये अपने आपको भील आदिवासी के रूप समाज में प्रतिष्ठित किए हुए हैं। कथौड़ी

जनजाति के बारे में कहा जाता है कि ये मूलरूप से महाराष्ट्र राज्य से हैं और ये रोजगार की तलाश में उदयपुर जिले में आकर बस गए। कथौड़ी आदिवासी कत्था बनाने में दक्ष होने के कारण कत्था व्यवसायियों ने इनको बड़ा सहयोग प्रदान किया है। वर्तमान में खेर वृक्षों की संख्या लगभग खत्म होने के कारण इनको आजीविका चलाने में बहुत परेशानी उठानी पड़ रही है। कथौड़ी जनजाति के विकास के लिए भारत सरकार व राजस्थान सरकार के अलावा कई स्वयंसेवी संस्थाएँ रोजगार उपलब्ध करा रही हैं। लेकिन कोई सकारात्मक प्रभाव दिखाई नहीं दे रहा है। गाड़िया लोहार जनजाति का नाम उनकी सुन्दर बैलगाड़ी के कारण पड़ा। ये मूलतः मेवाड़ (उदयपुर) के निवासी हैं जो अब राजस्थान के विभिन्न भागों में निवास करते हैं। ये वे योद्धा हैं, जिन्होंने महाराणा प्रताप की तरफ से मुगलकालीन शासक अकबर से लड़ाई लड़ी थी, परन्तु जब महाराणा प्रताप की हल्दीघाटी युद्ध में हार हो गई तो राजपूत शासकों ने इन पर अत्याचार किए जिसके कारण ये अन्य स्थलों पर अलग-अलग निवास करने लगे। भूतपूर्व प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू ने गाड़िया लोहार को अपनी मातृभूमि वापस लाने का प्रयास किया। परन्तु यह घुमन्तू जनजाति हो जाने के कारण ये लोग वापिस अपनी मातृभूमि कम संख्या में लौटकर गए।

राजस्थान की आदिवासी जनजातियों का अध्ययन करने से पता चलता है कि वहाँ मीणा, भील, गरासिया, सहरिया, गाड़िया लोहार, कथौड़ी और डामोर जैसी जनजातियाँ पाई जाती हैं। जिनमें मुख्यतः मीणा और भील जनजाति के लोगों की सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक स्थिति अन्य आदिवासियों गरासिया, सहरिया और गड़िया लोहार की अपेक्षा अधिक सुदृढ़ है। इसमें मीणा और भील आदिवासी शैक्षणिक क्षेत्रों में तथा विभिन्न कार्यस्थलों में कार्यरत हैं। मीणा जनजाति का शहरीकरण हो रहा है। आधुनिकता के पहलू में वे खुद ढलते जा रहे हैं। आज वे सरकारी व गैर-सरकारी पदों पर आसीन हैं। उनमें शिक्षा का स्तर भी अन्य जनजातियों की तुलना में अधिक है। जिनमें खासकर गरासिया, सहरिया, कथौड़ी, गाड़िया लोहार व अन्य जनजातियों की स्थिति बद से बदतर बनी हुई है। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि उन्होंने अभी तक शिक्षा को अपने से नहीं जोड़ा है। आधुनिकता का उनमें अभाव है। अभी भी उनका मूल निवास जंगल ही है। ये जंगलों में ही अपने आपको खुशहाल रखते हैं। अपनी संस्कृति को संजोये बैठे हैं। जिसके कारण इन जनजातियों का पूर्ण विकास नहीं हो पाया है। सरकार को इस क्षेत्र में प्रयास करना चाहिए जिससे इन जनजातियों में कुछ सुधार हो सके और ये अपनी सांस्कृतिक परम्परा अपनी जाति के सपनों को संजोकर रख सकें।

आदिवासियों की वेशभूषा

शहरी सभ्यता की चकाचौंध और कोलाहल से दूर भिन्न-भिन्न स्थानों में बसे हुए आदिवासी स्त्री-पुरुषों को यदि हम देखें, तो ऐसा अनुभव होगा कि उनका एक अपना निराला ही संसार है। किसी भी प्रकार का बनावटीपन उन्हें छू तक नहीं गया है। लोक-संस्कृति यदि जीवित है, तो केवल उसी के बल पर। लोक गीतों की मधुर धुनों की तरह वे धरती की गुनगुनाहट से जुड़े हुए प्रतीत होते हैं।

आदिवासियों के वस्त्राभूषण बहुरंगी व आकर्षक होते हैं। सादगी उनकी विशेषता है। राज्य के दक्षिणी भाग में बसे आदिवासियों में वेशभूषा की दृष्टि से विभिन्नता अधिक है। उत्तरी भाग की महिलाएँ छींट के लाल लुगड़े, लहँगे व काँचली पहनती हैं। दक्षिणी भाग की महिलाएँ लहँगे को लाँग कर पहनने की पद्धति छोड़ चुकी हैं और अब वे घेरदार ढीला लहंगा व ओढ़नी पहनती हैं। अविवाहित भील बालाएँ केवल पेटीकोट व ब्लाउज पहनती है। खैरवाड़ा व डूंगरपुर की भील महिलाएँ आधुनिक नाटूलोन संस्कृति से प्रभावित लगती हैं। बांसवाड़ा के आंतरिक भाग में स्त्रियाँ पाँव में घुटने तक पिंजणियाँ (पीतल की कड़ी), पाड़ले पहनती हैं। बाँहों में पीतल की गोरणियां व कानों में ओगनियां पहन कर आज भी वह अपने अंदाज से मुस्कराती हुई ठुमके से चलती हैं। कहीं-कहीं शहरी क्षेत्रों में बसी हुई आदिवासी महिलाएँ भी पिंजणियों को अपनी परम्परागत धरोहर समझकर पहनती हैं। राज्य के दक्षिणी भाग में बसे हुए भिलालों की वेशभूषा पर बाहरी प्रभाव अधिक है। भिलाला अपने आप में बड़ा मस्त जीव होता है। सादगी में उसका सानी संसार में शायद ही कोई दूसरा मिले। सिर पर फेंटा व अधोवस्त्र केवल लंगोट, यही उसकी कुल पोशाक है। इसीलिए बहुत से उत्सवों पर उनकी वेशभुषाएं देखते ही बनती हैं। आधुनिकता के प्रभाव से तो वे आज भी अछूती हैं। इन्हें 'लंगोटिया भील' कहकर पुकारते हैं। भिलाली स्त्रियाँ मिर्ची जैसी डिजाइन वाले काले रंग के लहंगे

पहनती हैं। बालिकाओं के वक्ष–स्थल बहुधा खुले मिलेंगे, किन्तु विवाहित स्त्रियों के अंग पर रंग–बिरंगी कंचुकियाँ रहती हैं। उनकी ओढ़नियों पर कलात्मक ढंग की छपाई रहती है तथा बंधेज का काम भी रहता है। वे हाथों में हथ–पान, पैरों में चांदी की कड़ियाँ तथा नेवरियां, ललाट पर घनी घुघरियों वाले झेले, कानों में कर्ण फूल पहनती हैं। स्त्रियों का पहिराव अपेक्षाकृत अधिक कलात्मक होता है और अधिकांश में वे विभिन्न अलंकरणों से सुसज्जित ही मिलेंगी। त्यौहारों, विवाह समारोहों, व उत्सवों पर उनकी वेश–भूषाऐं देखते ही बनती हैं। आधुनिकता के प्रभाव से तो वे आज भी अछूती हैं। श्रावण के प्रारम्भ में मनाए जाने वाले त्यौहार ''दिवासा'' पर आदिवासी लड़कियाँ सुन्दर सुन्दर पोशाक पहनती हैं और जवारे उगाती हैं और उनकी पूजा करके गुड़–धानी बाँटती हैं। आदि श्रावण को अमावस्या पर स्त्रियाँ विशेष प्रकार की ओढ़नियां पहनती हैं और स्त्री–पुरुष मिलकर नृत्यगान करते हैं। भगोरिया हाट के अवसर पर भी सभी स्त्री–पुरुष रंग–बिरंगे वस्त्र धारण कर नाच–गान करते हैं और मस्त होकर अपने सांस्कृतिक जीवन की झांकियां प्रस्तुत करते हैं। यह अवसर पारस्परिक प्रेम–मिलन व प्रेम–चुनाव का भी होता है। पुरुष अपनी सुसज्जित वेश–भूषा में तीरदांजी व तलवारबाजी दिखाकर अपने करतबों से नव–युवतियों को प्रभावित करते हैं। असंख्य नर–नारियों को रंग–बिरंगे वस्त्रों में देखकर यह लगता है कि जैसे धरती पर स्वर्ग ही उतर आया हो। अन्य आदिवासी भी इस उत्सव को बड़े चाव से मनाते हैं। विवाह के अवसर पर तीन दिन तक नृत्य व गान चलते रहते हैं। लाड़े व लाड़ी को घंटों तक कंधों पर बिठा कर नचाया जाता है। इस समय की रंग–बिरंगी पोशाक कलात्मक वेश–भूषाऐं, बहुरूपिए स्वाँग देखते ही बनते हैं। रक्षा बंधन को भील बड़े जोश से मनाते हैं। राखी बांधकर पगड़ी बदल भाई बनाते हैं।

राज्य के डामोर गुजराती वेश–भूषा और संस्कृति से अधिक प्रभावित लगते हैं। उनके वस्त्रों में सादगी होती है। स्त्रियों का पहनावा भी अत्यन्त सादगीपूर्ण होता है। वेशभूषा में सादगी के साथ–साथ गहने भी कम ही पहने जाते हैं।

गरासिया स्त्रियाँ चोली की तरह काले व लाल रंग की ''जुल्की'' पहनती हैं जो कि लम्बी होने के कारण घुटनों तक व आधी बाँह तक होती है। घुटनों से कुछ ऊपर तक के पेटी–कोट तक वह लाल–पीली काले रंग की छपाईयुक्त चुदंरी ओढ़नी ओढ़ती है। इसी परिधान से वह पृथक रूप से पहचानी जाती है। यह पहिराव अन्य आदिवासियों से सर्वथा भिन्न होता है। गरासियों में आभूषण पहनने का रिवाज–भीलों से कम नहीं है। पुरुषों में भी बनाव श्रृंगार का बड़ा शौक होता है। आभूषण पहनने में पुरुष भी स्त्रियों से पीछे नहीं होते है। केश श्रृंगार के लिए उनके बालों में कंघी लगी रहती है। कानों में ''मस्की'' पहनने का उन्हें बड़ा शौक होता है।

गरासियों के ठीक विपरीत सहरियों की स्थिति है। अल्प विकसित व निर्धन होने के कारण उनके वस्त्राभूषण नहीं के बराबर माने जा सकते हैं।

कहीं–कहीं विवाहित भील स्त्री का केश विन्यास देखते ही बनता है। वह आंटी–डोरे से बंधा हुआ लंबा चुटीला रखती हैं। इन पर रंग–बिरंगी ओढ़नी घाघरा पहनती हैं। रंग–बिरंगी कंचुकी बड़े चाव में पहने हुए वह बड़ी सजती हैं। वे माथे पर झुमकी वाला बोर कानों में झेले, नाक में नथ या लोंग, गले में दो–तीन खुंगालियां, मोतियों की चौवड़ती माला पहनती हैं। भुजाओं में पिजणियां, प्लास्टिक की चूड़ियाँ, भुजबंध तथा हाथ में पोलो टिप, चूड़ियाँ कांकण पहनकर वह समाज में अपने अस्तित्व की पहचान करवाती हैं।

विभिन्न पर्वों व उत्सवों में आदिवासी युवक–युवतियाँ रंग–बिरंगी पोशाकों में हास–उल्लासपन के साथ उपस्थित होते हैं। उनको देखकर किसी का भी मन हर्ष–विभोर होकर नाचने लगेगा। गवरी, जवारा, घूमर गैर आदि सभी अवसरों पर वे मिट्टी के मुखौटे पहनकर नाच गान करते हैं और जीवन को उमंग के साथ किलकारियों और हो–हल्ला करते हुए सदाबहार बनाने का प्रयत्न करते हैं।

कहीं–कहीं भील स्त्रियों में पुरुषों की भाँति बखतरी पहनने का रिवाज है। खासतौर से खेती के कामों में यह पहनाव सुविधा जनक समझा जाता है। बनाव श्रृंगार में आदिवासी पुरुष–स्त्रियों से अपने आप को कम नहीं समझते हैं। ये कानों में बालियां, गले में देवी–देवता का ताबीज, चांदी की हंसली, काले धागे की कंठी, लाल मूंगे की माला व कमर में कंदोरा पहनते हैं। सिर पर लम्बा फेंटा या साफा तथा दाढ़ी–मूँछ उसके व्यक्तित्व को और भी निखारते हैं। खासतौर से मुखिया या सरपंच गले में रुद्राक्ष की माला तथा कमीज या कुर्ते में चांदी के बटन व सांकली भी पहनते हैं।

अविवाहित स्त्रियाँ पूरे हाथों में चूड़ा पहनती हैं, पर विवाहित स्त्रियों में चूड़ा पहनने का रिवाज है। बनाव श्रृंगार में वे अपना रूप निखारने में शहरी स्त्रियों से किसी भी तरह अपने को कम नहीं समझती हैं। आपस में जब आदिवासी स्त्रियाँ मिलती हैं तो बड़े चटक–मटक के साथ अपने वस्त्राभूषणों के बारे में बाते करती हैं और घंटो घर पर या खेत–खलियानों में बतियाती रहती हैं।

आदिवासी पुरूषों व स्त्रियों में तांबे की भैरूजी की अंगूठी पहनने का आम रिवाज है। खासतौर से विवाह के अवसरों पर उनकी पोशाकें देखते ही बनती हैं। वस्त्रों व आभूषणों के आधार पर उनका वर्गीकरण किया जा सकता है। दुल्हा अक्सर सिर पर मोठड़ा पहनता है, जिस पर तुर्श या छोगा लगाता है, तथा रंग–बिरंगी धारियों वाली घुटनों तक जाने वाली अगताई पहनता है। दुल्हन चोपड़ा घाघरा पहनती है व मौसी, बुआ तथा बहन की ओर से आई हुई साड़ी, सालु व कांखड़िया पहनकर सबके सामने प्रेम संबंधों को उजागर करती हैं। दूल्हे के दास की तरह काम करने वाला अखणा हर समय उसके साथ बना रहता है तथा विदाई के समय वह उल्टी खाट को सिर पर उठाकर दहेज के सामान की गठरी उस पर ले जाता है। साथ में अन्य स्त्री–पुरुष भी रंग–बिरंगी पोशाकों में ढोल मंजीरे बजाते हुए चलते हैं।

इस लेख के अंत में मुझे पण्डित जवाहर लाल नेहरू का एक कथन स्मरण हो आता है। वे बड़े प्रभावी ढंग से यह कहा करते थे कि हमें कोई हक नहीं कि हम रंग–बिरंगी वेशभूषाओं में नाचते गाते आदिवासियों के रहन–सहन व रीति–रिवाजों में दखल दें। उनकी लोक–संस्कृति हम बिगाड़े नहीं, बनाएं रखें। बाहरी बातें उन पर नहीं थोपे तथा उन्हें अपने आप जैसे चाहे तरक्की करने दें।

सार्वजनिक पार्को व उद्यानों में बहुधा यह देखने को मिलता है कि शहर के युवा आदिवासियों के –वस्त्राभूषणों व अलंकरणों को पहन कर अपनी रंगीन तस्वीरें खिंचवाना पसंद करते हैं। पाठशाला व कॉलेज के रंग मंचों पर कई बार वेश विचित्र के सिलसिले में किसी किसी छात्र द्वारा आदिवासी के वस्त्राभूषणों को पहन कर उसके चरित्र की भूमिका निभाई जाती है। इन बातों से स्पष्ट हो जाता है कि हम सब कहीं न कही लोक संस्कृति के साथ बहुत गहराई से जुड़े हुए हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *P-K- Mohanthi] Encyclopeadia of scheduled tribes in India] page no-212*
2. *डॉ. एम. एम. लावनिया एवं शशि के जैन, भारत में जनजातियों का समाजशास्त्र, पृ. 2*
3. *डॉ. ललित लड्ढा भील जनजाति पहचान एवं विकास, पृ.95*
4. *डॉ. ललित लड्ढा, राजस्थान के आदिवासियों में शिक्षा का विकास, पृ. 17*
5. *उधृत रमणिका गुप्ता शौर्य एवं विद्रोह, पृ. 88*
6. *डॉ. ललित लड्ढा भील जनजाति पहचान एवं विकास, पृ. 47*
7. *राधेश्याम शर्मा, ट्राइम (त्रैमासिक), खंड, 25 मार्च – जून 1993, पृ. 86*
8. *डॉ. ललित लड्ढा, राजस्थान के आदिवासियों में शिक्षा का विकास, पृ. 15*

स्वामी दयानन्द का शैक्षिक दृष्टिकोण व प्रासंगिकता

डॉ. चित्रा आचार्य
सहायक आचार्य, जयनारायण मोहनलाल पुरोहित राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, फलोदी
shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

भारतीय संस्कृति में ज्ञान के प्रकाश स्तंभ के रूप में अवतीर्ण होने वाले महापुरूष स्वामी दयानन्द सरस्वती एक महान देश भक्त व उच्चश्रेणी के समाज सेवी थे। उनका प्रभावशाली व्यक्तित्व और असीम ज्ञानकोश उन्हें इतिहास में विशेष स्थान प्रदान करता है। ज्ञानी सर्वगुण समपन्न स्वामी जी का सम्पूर्ण जीवन समाज कल्याण के कार्यो में बिता था। उनकी हार्दिक अभिलाषा थी की वैदिक सूत्रों का वर्तमान जीवन की समस्याओं से संबंध स्थापित हो। स्वामी जी ने समाज कल्याण व सुधार आंदोलन में शिक्षा को समाज में पनुरूत्थान का प्रभावशाली अंग बनाया। प्लेटों के समान दयानन्द जी ने शिक्षा को व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है। उनकी राष्ट्रीय शिक्षा में प्रजातात्रिक अवधारणा दिखाई देती है। स्वामी जी के अनुसार ''जिससे विद्या, सभ्यता, धर्मात्मा बढती हो और अविद्या दोष छूटे उसकों शिक्षा कहते है। ''स्वामी जी ने 'सबके लिए तथा सर्वाणीय विकास युक्त शिक्षा पद्धति का समर्थन किया' उन्होने शिक्षा में शारिरीक, मानसिक, नैतिक सभी पक्षों का प्रधानता दी है। शिक्षा के क्षेत्र में स्वामी जी का योगदान अद्वितीय रहा है जो आज भी प्रासगिक है। जन–शिक्षा, स्त्री शिक्षा, निशुल्क व अनिवार्य शिक्षा, पाठ्यक्रम निर्माण जीवन पर्यन्त अध्ययन, व्याख्यान, विधि तर्क पर बल, प्रायोगिक या व्यावहारिक विधि आदि अवधारणाओं के प्रणेता स्वामी स्वामी जी ही माने जाते है जिनके विचार शिक्षा के क्षेत्र का आधार स्तंभ है। स्वामी जी द्वारा प्रतिपादित अनिवार्य शिक्षा के विचार को भारतीय संविधान के राज्य की नीति के निर्देशक तत्वों में सम्मिलित किया गया है। स्वामी जी ने अपनी शिक्षा योजना में प्राचीन एवं आधुनिक भारतीय आदर्शो का सुन्दर समन्वय किया है। जो आज भी प्रशसंनीय है।

संकेताक्षर : *शिक्षा का महत्व, स्त्री शिक्षा, प्रासांगिकता, स्वामी दयानन्द, शैक्षिक दृष्टिकोण।*

भारतीय संस्कृति में ज्ञान मार्ग के प्रणेता वेद के प्रकाश मे सत्य को पा करके तथा सत्य के प्रकाश को आने वाली पीढीयों से परिचित कराने का प्रयास स्वामी दयानंद सरस्वती ने किया। इनकी हार्दिक अभिलाषा थी कि वैदिक सूत्रों का वर्तमान जीवन की समस्याओं से सम्बन्ध स्थापित हो जाए। इसके लिए शिक्षा मे उन्होने सकारात्मक कार्यक्रम की झलक देखी और जन जन मे शैक्षिक चेतना का होना जरूरी समझा उनका विश्वास था कि शिक्षा ही एक ऐसा शक्तिशाली शस्त्र है, जिसके द्वारा हिन्दू समाज मे प्रचलित कुरीतियों को अधिक प्रभावशाली ढंग से समाप्त करना संभव है, अतः सुधार आंदोलन मे शिक्षा को समाज मे पुनरूत्थान का प्रभावशाली अंग बनाया गया, उन्होने मनु के इस कथन का समर्थन किया कि राज्य तथा समाज दोनो के द्वारा सब लोगों के लिए अनिवार्य कर दिया जाना चाहिए कि वे अपने बच्चों के पांचवे अथवा आठवें वर्ष के बाद विद्यालय भेजे। इस आयु के बाद बालक को विलय मे नही भेजना एक दण्डनीय अपराध होना चाहिए। पुनरूत्थान के युग के नेताओं एवं समाज सुधारकों मे दयानन्द जी का स्थान अति महत्वपूर्ण है।

पृष्टभूमि – उन्नीसवीं शताब्दी मे भारतीय संस्कृति अपने पतन के कगार पर थी। इसी समय एक तेजस्वी महापुरूष ने भारत में जन्म लिया जिसने अपनी प्रचंड विद्वता, गंभीर अध्ययन, अकाट्य तार्किकता व कठोर यथार्थवादी विचारधारा से सुषुप्त भारतीय आत्मा को झकझोरा वह थे महर्षि दयानंद। स्वामी दयानंद सरस्वती का जन्म सन्

1824 में हुआ। मूलशंकर उनका बचपन का नाम था, धर्म सुधार हेतु अग्रणी रहे दयानंद सरस्वती ने 1875 ने मुंबई मे आर्य समाज की स्थापना की थी और पारवण्ड खण्डिनी पताका फहराकर कई उल्लेखनीय कार्य किए इस महान शिक्षाविद् की भावनाएं अपनी संस्कृति की रक्षा हेतु एक आंदोलन के रूप मे प्रस्फुटित हो उठी। साथ ही इन्होने वैदिक युग की ओर पुनरावर्तन की स्पष्ट घोषणा की इसलिए भारत के मार्टिन लूथर कहलाएं।

शिक्षा का अर्थ – स्वामी दयानंद के अनुसार शिक्षा का अर्थ है 'शिक्षा' जिससे विद्या, सभ्यता, धर्मात्मता, जितेन्द्रयातानि की बढती हो और अविद्यादि दोष छूटें उसको शिक्षा कहते है विद्या सत्य एवं असत्य अथवा यर्थाथ ज्ञान एवं मिथ्या ज्ञान में भेद स्पष्ट करने का सर्वोतम साधन है। स्वामी जी विद्या को बहुत अधिक महत्व देते थे उसे वे सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक मानते थे। विद्याा धन सभी धनों मे श्रेष्ठ है स्वामी जी के अनुसार 'वे माता–पिता धन्य है जो संतानों को ब्रह्मचर्य, उतम शिक्षा और विद्याा से शरीर व आत्मा के पूर्ण बल को बढावे। जिससे संतान मातृ पति, सास, ससुर, राजा, प्रजा, पडोसी, इष्ट मित्र और संतानादि से यथायोग्य धर्म का बर्ताव करे, इसकों जितना व्यय करें उतना ही बढता जाये, अन्य सब कोष व्यय सक घट जाते है, इस कोष को कोई चुरा नही सकता।''

शिक्षा का लक्ष्य –स्वामी जी शिक्षा के द्वारा सर्वांगीण विकास चाहते थे उन्होने शिक्षा में शारीरिक, मानसिक नैतिक व सभी पक्षों को प्रधानता दी है। जहां जीवन की व्यावहारिकता हेतु मानव को तैयार करना चाहा वहां उसे आत्म साक्षात्कार हेतु भी प्रेरित किया है स्वामी जी के अनुसार ''जो मनुष्य विद्याा और विद्या के स्वरूप को साथ ही साथ जानता है वह विद्या कर्मो पासना से मृत्यु को जीतकर विद्या अर्थात् ज्ञान से मोक्ष को प्राप्त कर सकता है।'' इस प्रकार स्वामी जी ने शिक्षा के उद्धेश्य मे आत्मानुभूति के उद्धेश्य को भी महत्व प्रदान किया। तत्कालिन परिस्थितियों से संस्कृति की रक्षा हेतु स्वामी जी ने शिक्षा का उद्धेश्य वैदिक धर्म तथा संस्कृति का पुनरूत्थान भी घोषित किया।

शिक्षा का पाठ्यक्रम –स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश, संस्कार विधि तथा ऋग्वेवदादिभाष्य भूमिका नामक ग्रन्थों में वैदिक शिक्षा के आदर्शो के अनुरूप छात्रों के लिए पाठ्यक्रम का विधान किया है। सर्वप्रथम छात्रों को भाषा के वर्णो के उच्चारण की विधि तथा व्याकरण का ज्ञान कराया जाना चाहिए। इसके बाद चारों वेदों, षड्, दर्शन, उपनिषद् ब्राह्मण ग्रन्थों तथा मनुस्मृति एवं वाल्मीकी रामायण आदि ग्रन्थों का भी अध्ययन कराया जाना चाहिए। उन्होने अग्रलिखित लौकिक विद्याओं को भी पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया है – वैद्यक (चिकित्साशास्त्र) धनुर्वेद, गांधर्ववेद (संगीत), राजविद्या (राजनीतिशास्त्र) यन्त्र–विद्या, शिल्प–शास्त्र ज्योतिष विद्या, भूगोल भूगर्भशास्त्र आदि।स्वामी दयानन्द ने पाठ्यक्रम में संस्कृत के साथ ही हिन्दी भाषा के अध्ययन को विशेष महत्व दिया है। वे अन्य देशज (भारतीय) भाषाओं के अध्ययन के भी पक्षधर थे। यह उल्लेखनीय है कि अपने कठोर भारतीय दृष्टिकोण के बावजूद दयानन्द ने अग्रेंजी भाषा एवं पाश्चात्या शिक्षा के विभिन्न विषयों के अध्ययन का निषेध नही किया है।

शिक्षिण विधियॉ –तत्कालीन शिक्षा प्रणाली को अनुपयुक्त घोषित कर स्वामी जी ने अनुभव किया कि अच्छी व विवेकपूर्ण राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली के बिना देश में वांछित सांस्कृतिक पुनर्जागरण असंभव है। अतः उन्होने प्राचीन आदर्शो के स्तंभ पर आधारित एक नवीन शिक्षा प्रणाली को महत्व दिया जिसके आधार पर विद्यार्थी परिश्रम द्वारा मन व शरीर को अनुशासित कर जीवन में व्यावहारिक रूप से प्रत्येक परिस्थिति का सामना कर सके शिक्षण के लिए उन्होने जिन विधियों की उपयोगिता स्वीकार की है, वह इस प्रकार है–

उपदेश अथवा व्याख्यान विधि – उपदेश का अर्थ शिक्षक की उस क्रिया से है जिसके द्वारा वह बच्चों को सत्य–असत्य उचित अनुचित के बारे मे बताता है। कभी–कभी वह अपने कथनों के पक्ष अथवा विपक्ष में प्रमाण भी देता चलता है। स्वामी जी इस विधि को शिक्षा की प्रमुख विधि मानते थे।

ठस्वाध्याय विधि –स्वामी जी बच्चों के लिए गुरू आज्ञा से व स्वेच्छा से ग्रन्थों का अध्ययन करना आवश्यक समझते थे। इनका मत था कि ब्रह्मचारी को पठनीय ग्रथों का स्वयं अध्याय करना चाहिए।

ब्रत्यक्षानुभव विधि –स्वामी जी का मत था कि इंद्रियों का संबंध मन से होता है और मन का संबंध आत्मा से है। अतः हमें प्रत्यक्षानुभव द्वारा भी सीखना चाहिए, इस विधि में अवलोकन व परीक्षण, दोनों के अवसर मिलते है।

क्तर्क विधि –स्वामी जी तर्क विधि के समर्थक थे, तर्क की इस विधि में विश्लेषण और संश्लेषण दोनों की आवश्यकता पडती है।

व्यावहारिक विधि –स्वामी जी इस बात को स्वीकार करते थे कि आचरण, गुरू सेवा, खेल कूद, व्यायाम, गृहकार्य, संगीत, धनुर्विद्या, आयुर्वेद और शिल्प की शिक्षा प्रायोगिक विधि ये ही दी जा सकती है इसे वे व्यावहारिक विधि कहते थे।

विद्यालय संकल्पना –स्वामी दयानन्द ने बालक बालिकाओं की शिक्ष के लिए प्राचीन भारत की गुरूकुल पद्धति का पूर्ण समर्थन किया है। स्वामीदयानन्द के अनुसार ऐसा राजनियम होना चाहिए कि पॉचवें या आठवें वर्ष के बाद कोई भी अपने लड़कों और लड़कियों को घर में नहीं रख सके और उन्हें विद्या अध्ययन हेतु गुरूकुल (विद्यालय) में अवश्य ही भेज दे। विद्यालय नगर या ग्राम से चार कोस दूर तथा एकान्त में होने चाहिए तथा लडके और लड़कियों के विद्यालय भी एक दूसरे से दो कोस दूर होने चाहिए। लड़कियों के विद्यालय में शिक्षक, भृत्य, सेवक आदि सभी पदों पर केवल स्त्रियॉ ही होनी चाहिए और इसी प्रकार लड़कों के विद्यालय में इन सभी पदों पर केवल पुरूष ही नियुक्ति होने चाहिए। उनके अध्यापकों द्वारा उन्हें इस प्रकार से रखा जाना चाहिए कि वे उतम विद्या, शिक्षा एवं स्वभाव को प्राप्त हों और उनके शरीर व आत्मा बलयुक्त होकर उनके आनन्द में स्थायी वृद्धि करें।

विद्यालय में सभी विद्यार्थियों को एक जैसे वस्त्र, भोजन, आसन आदि प्रदान किये जाने चाहिए, अर्थात् सभी विद्यार्थियों से बिना किसी भेद–भाव के समान व्यवहार किया जाना चाहिए, चाहे वे राजा या दरिद्र की सन्तान हों। तब तक विद्याध्यन पूर्ण नहीं हो जाये विद्यार्थियों एवं उनके माता पिता आदि को एक दूसरे से मिलने नही दिया जाना चाहिए और न उनके बीच किसी प्रकार का पत्राचार ही होना चाहिए, ताकि सभी विद्यार्थी सांसारिक चिन्ताओं से मुक्त रहकर केवल विद्या अध्ययन का ही कार्य करें।

शिक्षक संकल्पना –स्वामी दयानन्द ने शिक्षकों के चयन में विशेष सावधानी रखने का सुझाव दिए है कि शिक्षक योग्य सर्वगुण सम्पन्न होने चाहिए। शिक्षा के विविध लक्ष्यों की प्राप्ति में सफलता व असफलता उसके अध्यापक वर्ग पर निर्भर करती है। शिक्षक पवित्र तथा निष्काम भाव से शिक्षण कार्य करने वाला होना चाहिए। स्वामी जी का मानना थाकि शिक्षक का चरित्र अत्यंत उच्चकोटि का होना चाहिए। स्वामी जी की धारणानुकूल शिष्य व गुरू में पिता पुत्र का संबंध होना चाहिए तथा वातावरध प्रेम व सहानुभूतिपूर्ण हो।

प्रो. भवानीलाल भारतीय के अनुसार स्वामी दयानन्द ने अध्यापकों का यह कर्तव्य बताया है कि वे छात्रों मे ऐसी सत्य–बुद्धि पैदा करें कि वे सत्य विज्ञान तथा सृष्टि विद्या के रहस्यों को जानने के साथ ही परमात्मा की दिव्य सता का भी साक्षत्कार करे सके।

विद्यार्थी संकल्पना –स्वामी दयानन्द विद्यार्थियों से अपेक्षा करते थे कि वे संयमित व ब्रह्मचारी होकर पच्चीस वर्ष तक आचार्यकुल में अध्ययन करें तथा अपने अंदर उन सभी नैतिक व आध्यात्मिक गुणों का समावेश करे जो वैदिक आश्रमों के विद्यार्थियों के थे। स्वामी जी ने विद्यार्थियों के गुणों पर विचार करते हुए कहा है कि विद्या कि प्राप्ति हेतु उन्हे अंग्रलिखित प्रमुख दोवो को अवश्य ही त्याग देना चाहिए– आलस्य, नशा, मोह–ग्रस्तता, चपलता, व्यर्थ के किस्से कहानी सुनना या सुनाना, पढते–पढते रूक जाना, अंहकार तथा सुंख की कामना।

अनुशासन संकल्पना –स्वामी जी प्राचीन पंरपरा के समर्थक थे उनके अनुसार विद्यार्थि को ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत करना चाहिए। शिष्य इस प्रकार का आचरण तभी करेंगें, जब गुरू उनके सामने उचित आचरण करें। शिक्षा के क्षेत्र में स्वामी जी अनुशासन के महत्व को स्वीकार करते थे। स्वामी जी कठोर शारीरिक व मानसिक अनुशासन के पक्ष में थे। उन्होने लिखा है, ''जो माता–पिता, आचार्य, संतान एवं शिष्यों का ताडन करते है, वे मानो अपनी संतानों एवं शिष्यों को अपने हाथ से अमृत पिला रहे है और जो संतानों और शिष्यों का लाडन करते है,वे अपने संतानों एवं शिष्यों का लाडन करते है, वे अपने संतानों और शिष्यों को विष पिलाकर नष्ट–भ्रष्ट कर देते है। लाड़न से संतान और शिष्य दोषयुक्त तथा ताड़ना से गुणयुक्त होते है।''

स्त्री शिक्षा संकल्पना –स्वामी दयानन्द स्त्री शिक्षा के प्रबल समर्थक थे। वे कहते थे कि वेद स्त्री का निषेध कहीं नहीं करता, उन्हें वेदाध्ययन का अधिकार है। वे उपनयन संस्कार के बाद ब्रह्मचारी रहकर पच्चीस वर्ष तक अध्ययन करें। लड़कियों के लिए पृथक विद्यालय की स्थापना चाहते थे, जहॉ अध्यापक, भृत्यतथा अन्य कर्मचारी भी पुरूष न हो, केवल स्त्रियॉ ही हों।

धार्मिक शिक्षा –स्वामी जी ने सभी के लिए धर्म धारण

करना श्रेयस्कर माना, क्योंकि धर्म सत्याचरण पर चलने के लिए अतः प्रेरणा देता है। वे सांप्रदायिकता के कट्टर विरोधी थे तथा सभी धर्मो को मिलाने और उनमें समन्वय स्थाप्ति करने पर बल देते थे।

राष्ट्रीय शिक्षा –स्वामी दयानन्द की दूर दृष्टि राष्ट्रीय विकास की महता को परख चुकी थी। उन्होनें सुप्त राष्ट्र में एक नवीन चेतना का संचार करने का प्रयास किया अपने गौरव को पुनः नवजीवन देकर राष्ट्र की महिमा को बढाना चाहा। अतः उन्होने शिक्षा को भी राष्ट्रीय संस्कृति, आदर्श व आवश्यकताओं के अनुकूल होने पर बल दिया। वे मानते थे कि शिक्षा का अधिकतम लाभ उठाया जा सकता है, जब इसे राष्ट्रीय स्वरूप में ढाल दिया जाए। राष्ट्रीयता का विकास करना होगा, जहॉ पर कोई भी ऐसा कार्य न हो जिससे राष्ट्रीय एकता कुंठित हो। इस प्रकार, शिक्षा ही वह माध्यम है जो राष्ट्रीयता की भावना मानव तक पहॅूचा सकने में समर्थ है।

प्रासंगिकता

भारतवर्ष ऋषि मुनियों की तपो भूमि है। यह वह पवित्र भूमि है इसलिए आवश्यकता है कि हम स्वामी जी के विचारों को आत्मसात करे और नव भारत के निर्माण में योगदान दे।जहाँ हिन्दु संस्कृति फली फूली और वेदो की ऋचांए लिखी गई। साथ ही इसी पवित्र व कर्मभूमि पर मनु, कौटिल्य , शुक्राचार्य , राजाराम मोहन राय जन्में। ये वे लोग थे जिन्होने भारतीय जनता की आवश्यकता के अनुरूप कार्य किये। इसी कडी में स्वामी दयानन्द सरस्वती का नाम लिया जाता है। उन्होने समसामायिक परिस्थितियो के अनुसार अपने शिक्षा, राजनीति, धर्म भारतीय राष्ट्रवाद व समाज सुधार के क्षेत्र में अपने विचार दिए।

स्वामी दयानन्द सरस्वती शिक्षा संबंधी विचारो की प्रासंगिकता यह है कि वर्तमान समय में युवा पीढ़ी के नैतिक मूल्यों का पतन हो रहा है स्वामी जी बालक के चारित्रिक विकास के लिए वेदो, मनुस्मृति, वाल्मिकी रामायण, विदुर नीति एवं महाभारत के अंशो का अध्ययन कराने पर बल देते थे। जिससे भारतीय संस्कृति के मूल स्वरूप को सुरक्षित रखा जा सके।वर्तमान समय में एक ओर ज्वलंत समस्या उभरकर सामने आ रही है वह है शिक्षा संस्थाओं में बढ़ते अपराध।

स्वामी जी के अनुसार अगर शिक्षक प्रभावशाली व्यक्तित्व का धनी,उच्च गुणो से युक्त , वेदो का ज्ञाता, मानसिक विचारो से रहित और स्वस्थ होगा। गुरू शिष्य मे पिता पुत्र का संबंध होगा, शिष्य ब्रह्मचर्य धर्म का पालन करते हुए अनुशासन में रहेगा तो अपराधो का ग्राफ स्वतः ही घट जाएगा।

स्वामी जी स्त्री शिक्षा के प्रबल समर्थक थे। उनके अनुसार बच्चेकी प्रथम पाठशाला उसकी मां होती है। अगर एक स्त्री शिक्षित होगी तो वह एक संस्कारी युवा वर्ग का निर्माण कर देशहित का कार्य करेगी।

स्वामी जी हिन्दी व अंग्रेजी के साथ साथ आधुनिक शास्त्रोंव विज्ञान के अध्ययन को भी स्थान देते थे उनके अनुसार स्वाहयाय,प्रत्यक्षानुभव, उपदेश, तर्क व व्यवहार की विधियों के द्वारा कुशल शिक्षण प्रदान किया जा सकता है तथा विद्यार्थियो की जिज्ञासा को शांत किया जा सकता है।स्वामी जी राष्ट्रीय जागरण के प्रणेता मातृभाषा के समर्थक और शिक्षा में समानता के अधिकार की बात करते थे वर्तमान में ये वे बिन्दू है जिन पर विचार किया जाना आवश्यक है।

शिक्षा के माध्यम से स्वामी जी छात्रो को संगठित करना चाहते थे। तथा मातृभाषा के उपयोग से भारतीय संस्कृति से परिचित कराना चाहते थे। वर्तमान में हम अंग्रेजी भाषा को अधिक महत्व दे रहे है। जिसके कारण हमारे बालक हमारे वेदो, पुराणो और उपनिषदो से वंचित हो रहे है। जिससे सर्वागीण गुणो का विकास नही हो रहा। जो आत्मीयता मातृभाषा में आ सकती है वह अन्य किसी भाषा में संभव नही है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *गुप्त, लक्ष्मीनारायण और मदनमोहन 2005.महान भारतीय शिक्षाशास्त्री. कैलाश प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ 120– 139 ग्रोवर, इन्द्रा. 2001. संसार के महान शिक्षाशास्त्री. विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी. पृ 243 – 248*
2. *त्यागी, जी. एस.डी. और पी.डी. पाठक. 2010 शिक्षा के सामान्य सिद्धांत. विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा. पृ.387 –396*
3. *पांडेय, रामशकल. 1999. विश्व के श्रेष्ठ शिक्षा शास्त्री. विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा. पृ 190–206.*
4. *पांडेय, रामशकल और बीना कपूर 1998. शिक्षा के दार्शनिक आधार. विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा पृ 171 –177.*
5. *शर्मा, मणि. 2005 समकालीन भारतीय शिक्षण*

दर्शन. एच.पी.भार्गव बुक हाउस, आगरा. पृ 143 – 148

6. *सरस्वती, महर्षि दयानन्द.2002 सत्यार्थ प्रकाश. आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली. पृ 21 – 51.*
7. *भारतीय आधुनिक शिक्षा, वर्ष 37, अंक 3 जनवरी 2017, प्रकाशन प्रीग एन.सी.ई. आर.टी. कैम्पस श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली*
8. *रुहेला, एस.पी (2015) ''शिक्षा के दार्शनिक तथा सामाजशास्त्रीय आधार'', अग्रवाल पब्लिकेशन्स आगरा।*
9. *पाण्डेय, रामशकल, (2008), ''शिक्षा की दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय पृष्टभूमि'', विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।*
10. *ओड, एल.के. (2010) ''शिक्षा की दार्शनिक पृष्टभूमी'', राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर।*
11. *शर्मा, मणि (2005) ''समकालीन भारतीय शिक्षा दर्शन'', एच.पी. भार्गव बुक हाऊस, आगरा।*
12. *गुप्ता, लक्ष्मीनारायण, मदनमोहन (2005) ''महान भारतीय शिक्षाशास्त्री'', कैलाश प्रकाशन, इलाहाबाद।*

सैंधव सभ्यता कालीन भारतीय आभूषण परम्परा का अध्ययन

अंकिता मीना
शोधार्थी, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

मानव सभ्यता के उद्भव और विकास पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि सभ्यता के विकास में सौन्दर्य भावना का भी योगदान रहा है, जिसमें आभूषण महत्वपूर्ण रहे हैं। आभूषणों के अध्ययन के प्रसंग में, आभूषणों की परिभाषा उनका अर्थ तथा उनको धारण करने के उद्देश्य पर विचार करना आवश्यक है। प्रस्तुत शोध पत्र में सैंधव सभ्यता कालखण्ड को आधार बनाकर तत्कालीन आभूषण परम्परा का विवेचन किया गया है। सैंधव सभ्यता के पुरातात्विक साक्ष्यों से प्राप्त आभूषण परक शब्दों का संग्रह करने का ध्येय है। ये शब्द किन आभूषणों के द्योतक थे ? इनका स्वरूप क्या था ? ये कौनसी धातु से बनाये जाते थे ? ये शरीर के किस भाग में पहने जाते थे ? इस संदर्भ में प्रस्तुत शोध पत्र में विस्तारपूर्वक विश्लेषण किया गया है।

संकेताक्षर : *हड़प्पा, मोहनजोदड़ो, पुरातात्विक स्त्रोत, आभूषणों के आकार-प्रकार, मनके।*

मानव की सहज सौन्दर्य रूचि की अभिव्यक्ति के माध्यमों में आभूषण सर्वाधिक महत्वपूर्ण रहा है। जीवन में जो कुछ श्रेष्ठ, कल्याणप्रद एवं सुंदर है, वह आभूषण से तुलनीय है। आभूषण की शाब्दिक व्युत्पति है – 'आ समन्तात् भूषणम् अलंकरणम्।' जो शरीर की शोभ को बढ़ाये उसे आभूषण कहते हैं। आभूषण के प्रति मनुष्य का विशेषतः स्त्री का आकर्षण आदिकाल से रहा है। बिना आभूषण के वनिता का सुन्दर मुख भी सुशोभित नहीं होता –

'न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनिता मुखम्।'
भामहकृत काव्यालंकार – 1/13

राजशेखर ने कर्पूरमंजरी (1/31) में प्रतिपादित किया है कि नैसर्गिक सुन्दर मनुष्य की शोभा आभूषणों से और अधिक निखर उठती है –

''णिसग्ग – चंगस्स वि माणुसस्स।
सोहा समुम्मीलदि भूसणेहि।।''

सौन्दर्य प्रवृत्ति की प्रबल भावना के कारण ही आभूषणों का निर्माण तथा उसमें निरन्तर परिष्कार और विकास हुआ। विश्व के सभी देशों, जातियों एवं सभ्यताओं में आभूषणों को धारण करने की परम्परा प्रारम्भ से मिलती है। भारतवर्ष में अत्यंत प्राचीन काल से ही सभ्यता के विभिन्न स्तरों में आभूषण दैनन्दिनी जीवन से घनिष्ठ रूपेण सम्बन्ध रहे हैं। विश्व की अन्य प्राचीन सभ्यताओं की भांति सैंधव सभ्यता में भी आभूषणों का प्रचलन रहा है। विविध पुरास्थलों हड़प्पा, मोहनजोदड़ो, अल्हादीनों, लोथल, धौलावीरा, कुणाल, मण्डी आदि से स्वर्ण एवं रजत के साथ ही शंख, सीप, पक्की मिट्टी एवं मनकों से निर्मित आभूषणों के प्रमाण समाज में आभूषणों के सामान्य प्रचलन एवं वृहद प्रयोग को स्पष्ट करते हैं। इन आभूषणों का अंकन तद्युगीन मृण्मयमूर्तियों में भी पहचाना जा सकता है। मनकों की लम्बी-लम्बी लड़ियों से बने विभिन्न रूप वाले आभूषण इस काल के प्रमुख आभूषण थे। तत्कालीन स्त्री-पुरूष दोनों ही स्वयं को आभूषणों से अलंकृत करते थे पर पुरूष आकृतियों में तुलनात्मक दृष्टि से कम आभूषण दिखायी देते हैं।[1] आभूषणों के निर्माण में मनको का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान था। संभवतः चन्हूदड़ों मनके बनाने का प्रमुख

केन्द्र था, जहां से मनके सुमेर तथा अन्य देशों को भी भेजे जाते थे।[2] ये मनके सोना, चाँदी, ताँबा, पत्थर, चमकदार, रंगीन तथा पक्की मिट्टी, शेख, अगेट, स्फटिक, लाजवर्द आदि सामग्री से विभिन्न आकार प्रकार में बनाये जाते थे (चित्र सं. 1)। हड्डी तथा हाथी दांत के मनकों के भी उदाहरण मिलते हैं। लोथल से रंग-बिरंगे मनके मिले हैं। सैंधव निवासी मनकों को बनाने और उन्हें अलंकृत करने की कला में पूर्णतया निपुण थे। विभिन्न आकार-प्रकार के मनकों का प्रयोग विशेष रूप से हार बनाने में किया जाता था।

सैंधव निवासियों द्वारा प्रयोग में लाये जाने वाले विभिन्न आभूषणों का अलग-अलग विस्तार पूर्वक विवेचन भी यहां अपेक्षित है -

शिरोभूषण

सैंधव सभ्यता से प्राप्त स्त्री-पुरूष मूर्तियों को देखने और पुरातात्विक सामग्रियों के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि स्त्री और पुरूष माथे पर सोने-चाँदी से बनी हुई एक पट्टिका पहनते थे। सम्भवतः इसका प्रयोग केशों को यथास्थान व्यवस्थित रखने के लिए किया जाता था। प्राक् सिंधु सभ्यता के कुल्ली संस्कृति से प्राप्त एक मृण पुरूष आकृति के माथे पर पहनी गयी पट्टिका कन्धे तक लटकती हुई प्रदर्शित है।[3] हड़प्पा से प्राप्त सिलखड़ी की मूर्तियों में भी इस प्रकार की पट्टिका (केशबन्ध) प्रदर्शित है।[4] हड़प्पा से ही एक ऐसा आभूषण अंश प्राप्त हुआ है, जिसे देखने से प्रतीत होता है कि यह माथे पर पहने जाने वाली स्वर्ण पट्टिका का अंश है।[5] इस प्रकार के आभूषण आज भी 'चौक' नाम से प्रचलित है। राजस्थानी विवाहित स्त्रियों का यह एक विशेष आभूषण है।

मोहनजोदड़ों से एक ऐसी स्वर्ण पट्टिका प्राप्त हुई है।[6] जिसके मध्य एवं किनारे-किनारे छिद्र बने हुए है, साथ ही इसके पहनने का उदाहरण मोहनजोदड़ों की योगी की मूर्ति (चित्र सं. 2) में देखा जा सकता है।[7] मोहनजोदड़ों से चांदी की पट्टिका भी मिलती है, जिस पर छोटे-छोटे बिन्दुओं का अलंकरण है।[8]

कर्णाभूषण

कानों को बींधकर उनमें धातुनिर्मित तार के आभूषण पहनने का प्रचलन प्राचीन काल में ही हो गया था। हड़प्पा से कई प्रकार के कर्णाभूषण मिले है जिनमें वर्तमान कर्णफूल के समान और लटकने वाले कर्णाभूषण प्रमुख है।[9] कुछ कर्णाभूषणों के मध्य छिद्र भी मिले हैं। कर्णाभूषणों पर विभिन्न प्रकार के अलंकरण भी है। ये आभूषण स्टेटाइट, तांबे तथा कांसे से बने होते थे। हड़प्पा से तीन कोण वाले कर्णफूल के समान कर्णाभूषण भी मिले हैं।[10] गोल बटन जैसे भी कुछ कर्णाभूषण मिले हैं जो सामान्यतः चपटे आकार के हैं।

हड़प्पा की तुलना में मोहनजोदड़ों से बहुत कम कर्णाभूषण प्राप्त हुए हैं। आकार-प्रकार में ये अधिकांशतः हड़प्पा के ही समान है। मोहनजोदड़ों के कर्णाभूषण अधिकांशतः चक्राकार सोना, चांदी, कांसा, तांबा एवं तार के बने हैं।[11] कभी-कभी तार को दुहरा और तिहरा भी लपेट दिया गया है। आज भी ऐसे चक्राकार स्वर्ण कर्णाभूषणों का प्रचलन है। मोहनजोदड़ों से चांदी के कर्णफूल भी प्राप्त हुए है।[12] कुछ कीलाकार और कुछ कोणाकार कर्णाभूषण भी मिले हैं जिनके किनारे पर मनके लगे हैं। चतुष्कोणीय आभूषण सितारे के नमूने के हैं। ये आभूषण स्त्रियों में लोकप्रिय थे क्योंकि पुरूषाकृतियों में कर्णाभूषण दिखायी नहीं देते।

कण्ठाभूषण

सैंधव सभ्यता के अवशेषों से ज्ञात होता है कि इस समय कण्ठ में तीन प्रकार के आभूषण पहने जाते थे। हँसली - जैसा कण्ठ में कसा हुआ आभूषण, छोटा और बड़ा हार, जो पत्थरों के रंगीन मनको को पिरोकर बनाये जाते थे। गले के अधिकांशत आभूषण मनकों से बने हैं (चित्र सं. 3-4)। धातुओं की पट्टियों से भी हार बनाये जाते थे। मृण्मूर्तियों में इस प्रकार के आभूषण स्पष्टतः मिलते है (चित्र सं. 5)।[13] हड़प्पा से गले का ऐसा आभूषण मिला है जिसमें 4 पंक्तियों में 240 सोने के गोल मनकों का प्रयोग किया गया है।

सभ्यता के उत्खनन से चांदी के पात्र में रखे हुए आभूषण भी प्राप्त हुए है। इनमें एक हार भी है जो हल्के हरे रंग के चमकदार यशब (जेड) के मनकों से निर्मित है। हार के सामने की ओर अगेट पत्थर के सात लटकन सोने के एक मोटे तार की सहायता से लटके हुए हैं (चित्र सं. 6)। मोहनजोदड़ों से तांबे के पात्र में रखा और लम्बे अकीक के मनकों से बना एक हार भी मिला है।[14] हार के एक अन्य उदाहरण में प्रत्येक छः लम्बे मनकों के समूह गोल मनकों की सहायता से विभक्त है। इसमें बांधने के लिए पीछे की ओर डोरी लगी है (चित्र सं.7)।

हस्ताभूषण

अधिकांश आकृतियों के खण्डित होने के कारण हाथ में पहने जाने वाले आभूषणों की विशेष जानकारी नहीं मिलती है केवल कुछ आकृतियों में ही बाहु या कलाई पर आभूषण दिखायी देते हैं।[15] हड़प्पा से प्राप्त एक पुरूषाकृति गोल मनकों का कंगन पहने है जिससे स्पष्ट है कि पुरूष भी कंगन पहनते थे।[16] मोहनजोदड़ों से प्राप्त पुरूष आकृति भी भुजबन्ध पहने है जिस पर कमल के आकार का अलंकरण है।[17] मृण्मूर्तियों में भुजबन्ध नहीं दिखायी देता। सम्भवतः यह आभूषण कुछ विशेष वर्गों में ही प्रचलित था।

मोहनजोदड़ों से सोना, चांदी, कांसा, तांबा, सीपी, मिट्टी आदि के बने कंगन के उदाहरण मिलते हैं।[18] कंगन रंगीन तथा अलंकृत भी होते थे। चन्हुदड़ों से भी कई प्रकार के कंगन मिले हैं।[19] कंगन एक ही हाथ में पहने जाने की प्रथा थी जिसकी पुष्टि मोहनजोदड़ों की नर्तकी की कांस्य प्रतिमा से होती है (चित्र सं.8)।

सैंधववासी चूड़ियां भी पहनते थे। ये चूड़ियां आकार में अण्डाकार थी तथा इनके कोर सोने के कंगन के समान है। संभवतः ये आभूषण इतने हल्के होते थे कि इन्हें सरलता से पहना जा सकता था।

मुद्रिका

हड़प्पा से प्राप्त एक मृतक अवशेष में मुद्रिका पहनने के चिन्ह है।[20] मृतक के दाहिने हाथ की अंगुली में तांबे की एक मुद्रिका है। रोपड़ के भी एक मृतक अवशेष में मध्य की अंगुली में तांबे की मुद्रिका मिली है।[21] मुद्रिकायें शंख, चांदी, तांबा, कांसा, सोना, मिट्टी, पत्थर आदि सामग्री से बनायी जाती थी। लोथल से भी तांबे की मुद्रिकायें मिली हैं। मोहनजोदड़ों से तांबे के तार की बनी तीन, चार अथवा पांच उमेठनो वाली मुद्रिकायें भी मिली है।[22]

कटिभूषण

सैंधव सभ्यता के अवशेष मेखला नामक कटिभूषण की प्राचीनता के द्योतक है। स्त्री और पुरूष दोनों में मेखला का प्रचलन था। मेखला सामान्यतः मनकों और धातु के टुकड़ों से बनी कई लड़ियों वाली होती थी।[23] हड़प्पा की एक पुरूष मृण्मूर्ति में कोणाकार और चपटे तथा गोल आकार के मनकों की तीन लड़ियों वाली मेखला दिखायी देती है।[24] मोहनजोदड़ों की एक आकृति में नाभि के नीचे धातु की तीन पट्टियों वाली मेखला भी है।[25] मेखला को अलंकृत करने के लिए लड़ियों के मध्य में उभारदार अलंकरण होता था। संभवतः मेखला का प्रयोग कमर में वस्त्र को यथास्थान रखने के लिए किया जाता था। हड़प्पा की आकृतियों से इस बात की पुष्टि होती है।[26]

पादाभूषण

पैरों में आभूषण धारण करने का चलन सैंधव सभ्यता में ही हो चुका था। अधिकांश आकृतियों के पैर टूटे होने के कारण इन आभूषणों के स्पष्ट स्वरूप ज्ञात नहीं होते। हड़प्पा से मिले मृतकों के अवशेषों में मनकों के नुपूर पहनने के उदाहरण मिले हैं।[27] मोहनजोदड़ों की एक कांसे की मूर्ति में कई फेरो वाले बुनावटदार आभूषण हैं।[28] हड़प्पा के एक मृण्फलक पर नुपूर के चिन्ह है।[29] इसी प्रकार मोहनजोदड़ों की एक मृण्आकृति के पैरों में दो गोलाकार आभूषण है।[30] एक पाषाण प्रतिमा में मनकों के नुपूर पहनने के चिन्ह मिले है। एक अन्य आकृति के नुपूर पर छोटे-छोटे वृतों का अलंकरण भी है। कुछ ऐसी चूड़ियां भी मिली है जिन्हें संभवतः पैरों में पहना जाता था।

निष्कर्ष

इस प्रकार हम निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि सैंधव सभ्यता का क्षेत्र यद्यपि विस्तृत है, जिसमें मुख्य पुरास्थलों हड़प्पा, मोहनजोदड़ों, कालीबंगा, लोथल, चन्हुदड़ो, धौलावीरा, कुणाल, माण्डी आदि से प्राप्त मुहरों, प्रस्तर, कांस्य एवं मृण्मूर्तियों के अवशेषों में विभिन्न प्रकार के आभूषणों के साक्ष्य प्राप्त होते हैं। कर्णफूल, चूड़ियां, मुद्रिका, मेखला, बाजूबन्द आदि इस काल के प्रमुख आभूषण थे। स्पष्ट है कि आभूषणों के प्रयोग में स्त्री-पुरूष जैसी कोई भेदक रेखा नहीं रही है। सभी वर्गों और जाति के लोगों ने किसी न किसी प्रकार के आभूषणों से स्वयं को अलंकृत किया। आभूषण नख से शिख तक के सभी अंगों में धारण किये जाते थे। अंगों के अनुसार ही उनका आकार-प्रकार भी होता था। इनके निर्माण के माध्यम के रूप में किसी धातु विशेष के प्रति कोई आग्रह नहीं था। परिस्थिति, रूचि एवं आर्थिक तथा सामाजिक स्थितियों के आधार पर इनका उपादान का चुनाव होता था। यही कारण था कि मिट्टी, हाथी दांत एवं शंख से लेकर कांसे, तांबा, सोना, चांदी, मनकों आदि तक के आभूषणों का निर्माण हुआ।

चित्र सं.1 मनके

चित्र सं.2 पुरुष आकृति, मोहनजोदड़ो

चित्र सं.3 कण्ठाभूषण, मोहनजोदड़ो

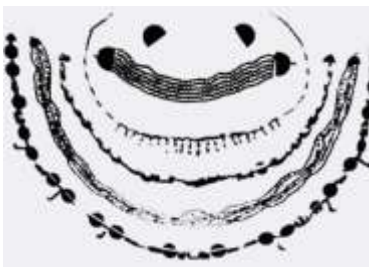

चित्र सं.4 कण्ठाभूषण, मोहनजोदड़ो

चित्र सं.5 स्त्री (मृण्मूर्ति) सैंन्धव सभ्यता

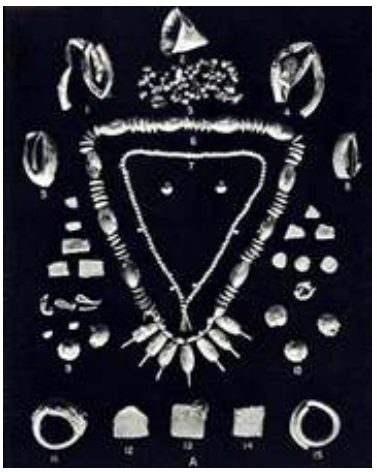

चित्र सं.6 कण्ठाभूषण, मोहनजोदड़ो

चित्र सं.7 कण्ठाभूषण, मोहनजोदड़ो

ISSN 2277-5587

चित्र सं.8 कांस्य मूर्ति, मोहनजोदड़ो

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *मार्शल, जॉन मोहनजोदड़ों एण्ड इण्डस सिविलाइजेशन, खण्ड–3, लंदन, 1931, फ.94, आ.11.*
2. *मैके, ई. चन्हुदड़ो एक्सकबेशन्स, न्यू हैवेन, 1943, पृ. 190.*
3. *राय, गोविन्द चन्द्र स्टडीज इन दि डेपलपमेंट ऑफ ऑर्नामेन्टस एण्ड ज्वेलरी इन प्रोटोहिस्टॉरिक इण्डिया, वाराणसी, 1964, फ. 6, आ.सी.*
4. *अग्रवाल, वी.एस., भारतीय कला, वाराणसी 1971, पृ. 215*
5. *वत्स, एम.एस., एक्सकवेशन एट हड़प्पा, खण्ड–2, दिल्ली 1940 फ. 137, आ. 22.*
6. *मार्शल, जॉन, तदैव, फ. 137, आ.ए.–6.*
7. *तदैव, फ. 94, आ. 1*
8. *मैके, ई. फर्दर एक्सकवेशन्स एट मोहनजोदड़ो खण्ड–1, दिल्ली 1937–38, पृ. 526, फ. 135, आ.4*
9. *वत्स, एम.एस., तदैव, खण्ड–2, फ. 139, आ. 26–28.*
10. *तदैव, फ. 139, आ. 26–28*
11. *मार्शल, जॉन, तदैव, खण्ड–2, पृ. 519, खण्ड–3, फ. 143, आ. 11; फ. 148, आ.1.*
12. *तदैव, खण्ड–3, फ. 151, आ. 11.*
13. *वत्स, एम.एस., तदैव, खण्ड–3, फ.76, आ. 21; मार्शल, जॉन, तदैव, खण्ड–2, फ. 94, आ.14*
14. *मार्शल, जॉन, तदैव, खण्ड–3, फ. 151, आ.बी.*
15. *वत्स, एम.एस., तदैव, खण्ड–2, फ. 76, आ.20.*
16. *तदैव, खण्ड–2, फ.76, आ. 20.*
17. *मार्शल, जॉन, तदैव, खण्ड–3, फ.98, आ.1.*
18. *तदैव, खण्ड–2, पृ. 529.*
19. *मैके, ई., चन्हुदडो, एक्सकबेशन्स, पृ. 190.*
20. *व्हीलर, आर.ई.एम., 'हड़प्पा', एन्शियन्ट इण्डिया, सं. 3, 1946, पृ. 86*
21. *ए. घोष, इण्डियन आर्कियोलॉजी–ए रिव्यू, 1954–55, पृ.1.*
22. *मार्शल, जॉन, तदैव, खण्ड–3, फ. 148, आ.4*
23. *वत्स, एम.एस., तदैव, खण्ड–2, फ. 76, आ. 12, फ.77, आ.51*
24. *राय, गोविन्द चन्द्र, तदैव, फ.19, आ.ए.*
25. *मार्शल, जॉन, तदैव, खण्ड–3, फ.94, आ.14*
26. *वत्स, एम.एस., तदैव, खण्ड–2, 77, आ. 51, 53*
27. *व्हीलर, आर.ई.एम., तदैव, पृ. 86.*
28. *मैके, ई., तदैव, खण्ड–1, पृ. 273.*
29. *व्हीलर, आर.ई.एम., तदैव, फ. 57, आ.17.*
30. *मार्शल, जॉन, तदैव, खण्ड–3, फ. 147, आ. 28, 21, 31–33*

मध्यकालीन राजस्थान के शिलालेखों में राजस्व व्यवस्था : एक अध्ययन (1200 से 1526 ईस्वी तक)

कीर्ति कल्ला
शोधार्थी, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

शिलालेख किसी भी काल के इतिहास को जानने में महत्त्वपूर्ण प्राथमिक स्त्रोत के रूप में प्रयुक्त होते है। प्राचनी काल से भारतीय इतिहास के विभिन्न आयामों को जानने में शिलालेख एक महत्त्वपूर्ण स्त्रोत है। शिलालेखों से काल विशेष के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक इत्यादि स्थितियों की स्पष्ट जानकारियां प्राप्त होती है। प्राचीन काल की भाँति पूर्व मध्यकालीन एंव मध्यकालीन भारतीय इतिहास की स्पष्ट जानकारी संबंधित काल के शिलालेख स्त्रातों से प्राप्त होती है। मध्यकाल में क्षैत्रिय ऐतिहासिक स्त्रोतों के रूप में शिलालेखों का महत्त्व अत्यधिक बढ़ जाता है। इस काल में भारत के विभिन्न राज्यवंशों से संबंधित शिलालेख प्राप्त होते है। राजपूताना मध्यकालीन इतिहास से संबंधित विविध जानकारियाँ हमें राजपूताना के विभिन्न भागों से प्राप्त शिलालेखों से होती है। इसमें विभिन्न ऐतिहासिक तथ्यों की भाँति आर्थिक इतिहास की जानकारियां भी प्राप्त हो जाती है। आर्थिक इतिहास में व्यापार-वाणिज्य, व्यापारिक मार्ग, कर व्यवस्था, राजस्व व्यवस्था इत्यादि तथ्यों की विस्तृत जानकारी उपलब्ध होती है।

संकेताक्षर : *राजस्थान के शिलालेख, मध्यकाल, मण्डपिका, लाग, कर, राजस्व व्यवस्था।*

राज्य में कृषक, श्रमिक, व्यापारी और शिल्पकार प्रमुख करदाता होते थे। राजा पर इनकी रक्षा का दायित्व था। अतः राजा को उनसे कर, भाग और शुल्क लेने तथा उन पर दण्ड लगाने का अधिकार था। राज्य की आय के तीन प्रमुख साधन थे। भाग (उपज में राजा का भाग), शुल्क (चुंगी) एवं दण्ड से प्राप्त धन। शोधकाल के अभिलेखों व दानपत्रों में राज्य की आय के निम्नलिखित साधन उल्लिखित हैं–

1. भाग या उदङ्ग 2. हिरण्य 3. भोग 4. शुल्क, जो मण्डपिका पर वसूल किए जाते थे। 5. दण्ड 6. आभाव्य या फुटकर कर।

ए.एस. अल्तेकर ने उदङ्ग को 'भागकर' की संज्ञा दी है। वी.वी. मिराशी ने भी उदङ्ग को भागकर के अनुरुप ही स्वीकार किया है। दशरथ शर्मा ने इस सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि उदङ्ग भूमिकर के रुप में उन व्यक्तियों से लिया जाता था। जो अपनी परम्परागत भूमि जोतते थे। यह भूमिकर अभिलेखों में उदङ्ग के स्थान पर 'भाग' भी कहा गया है। वे अल्तेकर से सहमति प्रकट करते हुए उदङ्ग और भाग को पृथक् कर नहीं मानते। परन्तु लल्लनजी गोपाल उदङ्ग और भाग को दो अलग-अलग भूमि करों के रुप में स्वीकार करते हैं। इस मत में उन्होंने कोई ठोस प्रमाण नहीं दिए हैं। उनका कहना है कि उदङ्ग और भाग दोनों शब्दों का एक ही स्थान पर एक गुप्तकालीन अभिलेख[1] में उल्लेख हुआ है। परन्तु हमारे शोधकाल में उदङ्ग और भाग एक ही भूमिकर का नाम था। जो स्थायी कृषकों से वसूल किया जाता था।

भाग या उदङ्ग एक निश्चित भूमिकर था। यह सामान्यतः उपज का 1/6 भाग होता था। यह अनाज के रुप में वसूल किया जाता था। स्मृतिकारों ने रजा को उपज का 1/6, 1/8 और 1/12 हिस्सा 'भाग' के रूप में प्राप्त करने का अधिकारी बताया है। राजनीति प्रकाश के आधार पर 'विष्णुधर्मोत्तर' में कहा गया है कि राजा शूकधान्य (जौ, गेहूं इत्यादि) का 1/6 भाग शिम्बोधान्य का दाल का (1/8 भाग) वर्षों से न जोते गए खेत (बंजर भूमि) से उत्पन्न अन्न

का 1/10 भाग तथा वर्षा ऋतु में उत्पन्न अन्न का 1/6 हिस्सा भाग के रूप में लेने का अधिकारी है।[2]

तृतीय पृथ्वीराज चाहमान के वि.सं. 1236 के फलौदी अभिलेख में उपज का 1/5 भाग कर के रूप में लिए जाने का उल्लेख है।[3] कुछ भूमि इस प्रकार की होती थी जिस पर कोई भी व्यक्ति खेती कर सकता था। इस प्रकार की खेती से राज्य 'भाग' के रूप में जो कर लेता था। वह 'उदङ्ग' से कुछ अधिक होता था। इसका संकेत हमें राजौर अभिलेख में मिलता है।[4]

राजा जब उपज का हिस्सा मुद्रा के रुप में लेता था। तो वह कर 'हिरण्यक' कहलाता था। द्वितीय ध्रुव के शक संवत् 757 के बड़ौदा दानपत्र में 'हिरण्य' और धान्य विपरीतार्थक शब्दों के रूप में प्रयुक्त है।[5] इससे यह स्पष्ट होता है कि 'हिरण्य' नामक कर मुद्रा के रूप में लिया जाता था। राजस्थान के अभिलेखों में 'हिरण्य' शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में हुआ है।[6]

राजस्थान के अभिलेखों में भोग नामक भूमि कर का भी उल्लेख है। ग्रामवासी फल, सब्जी, पुष्प, दूध, दही, लकड़ी इत्यादि राजा को उसके सैद्धांतिक भू स्वामित्व के बदले दिया करते थे। इसे भोग कहा जाता था। वि. सं. 1306 के अभिलेख में उल्लेखित है कि अम्मभोग के रूप में ....., कपूर, केसर ये सभी दम्म के दाम पर मिलता था।[7]

हरिषेण रचित 'वृहतकथाकोष' में राजा के दशांगभोगों का उल्लेख मिलता है।[8] अल्तेकर में भोग को उपरिकर की संज्ञा दी है। परन्तु इसके लिए कोई प्रमाण नहीं दिए हैं। पर नौसोरी लेख (996 वि.सं.) में ये दोनों भोग और ऊपरिकर को अलग-अलग माना है।[9] कल्हणदेव के साण्डेराव प्रस्तर अभिलेख में राजकीय भोग का विवरण दिया गया है।[10]

'दान' और 'शुल्क' आयात और निर्यात पर लिये जाने वाले चुंगी कर थे। ऐसे करों को 'मण्डपिका' अर्थात् चुंगी चौकी पर चुकाना होता था। एक राज्य में ऐसी अनेक मण्डपिकाएँ होती थीं। 1434 ई. के देलवाड़ा के लेख में मंडपिका से धर्मचिंतामणि की पूजा के लिए 14 टंका दिलाया जाना अंकित है। देलवाड़ा की मंडपिका से 5 टंका, देलवाड़ा के मापा (एक प्रकार का टैक्स) से 4 टंका, देलवाड़ा के मण्हेडावटा पर (मण के बोझ पर लिया जाने वाला कर) 2 टंका, देलवाड़ा के खारीवटा पर (नमक के कर पर) 2 टंका और देलवाड़ा के पटसूत्रीय (कपड़ा तथ सूत) पर 1 टंका लेने की व्यवस्था थी।[11]

शुल्क राज्य की आय का प्रमुख स्रोत माना जाता था। शुल्क दरों के सम्बन्धों में स्मृतिकारों में मतैक्य नहीं है। याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार राजा आयात और निर्यात की जाने वाली वस्तुओं पर 20 प्रतिशत कर लेने का अधिकारी था।[12] अग्निपुराण में कहा गया है कि विदेशी व्यापारियों से लिए जाने वाले शुल्क की दर अधिक होनी चाहिए। उसे 5 प्रतिशत से अधिक लाभ नहीं मिलना चाहिए।[13] शुल्क दो प्रकार के होते थे। प्रथम वे जो स्थल मार्ग द्वारा लाये जाने वाले सामान पर लिए जाते थे। उनकी वसूली मण्डपिका के माध्यम से होती थी। दूसरे वे जो जल मार्ग द्वारा लाए जाने वाले सामान पर लिए जाते थे। इनकी वसूली घाटों पर स्थित चौकियों पर की जाती थी। राजस्थान में इस प्रकार के शुल्क का उल्लेख अभिलेखों में अनुपलब्ध है। परमार राज्य में प्रथम प्रकार के शुल्क को मण्डपिकदाय तथा द्वितीय प्रकार के शुल्क को घट्टादाय की संज्ञा दी गई थी।[14]

राहदारी या मार्गादाय (यातायात कर) जैसे कर लेने की भी प्रथा थी। चौलुक्य[15] गहड़वाल[16] तथा चाहमान[17] अभिलेखों में इस विषय में जानकारी मिलती है।

वि.सं. 1352 के चौहान सामंतसिंह देव के अभिलेख से ज्ञात होता है कि जूना के भग्न ऋषभदेव मंदिर के हित में महाजनों के द्वारा लाग देन की स्वीकृति दी गई जो व्यापारी ऊँट, घोड़े, बैल आदि लेकर आते थे। उनसे निश्चित कर लिया जाता था।

10 ऊँटों के साथ – कारवाँ

20 बैलों के साथ – बालद

इन दोनों में से प्रत्येक पर दो पायला (धनमाप) और अर्द्धार्द्ध 10 विषोपक लाग या कर के रूप में लेने की आज्ञा थी।[18] चोलपिका नामक कर का विवरण भी प्राप्त होता है। नगर के बाहर से आये प्रत्येक चोलपिका पर 50 ताम्बूल पत्ते कर के रूप में लिए जाते थे। परमार शासक प्रतापसिंह के पटनारायण के अभिलेख के अनुसार मण्डौली गाँव की 'चोलपिका' से प्राप्त आय को राजपु; गंगा और करमसिंह ने पटनारायण मदिर में एकादशी के खर्चे के लिए दान में दी थी।[19]

'दण्ड' के अंतर्गत वे कर आते थे जो अपराधियों से दण्ड स्वरूप लिए जाते थे या जिन्हें पराजित शत्रु को देने के लिए बाध्य किया जाता था। इसमें मुद्रा, द्रव्य, वस्तु, पशु इत्यादि सम्मिलित होते थे। स्मृतिकारों ने 'दस' अपराधों का उल्लेख किया है। नारद ने इन अपराधों

की यह सूची दी है – 1. राजा की आज्ञा का उल्लंघन 2. स्त्रीवध 3. वर्ण संकरता (वर्ण मिश्रण युक्त अवैध संतान) 4. परस्त्रीगमन 5. चौर्य 6. बिना पति के गर्भधारण करना 7. वाकपारुष्य (कटु शब्दों द्वारा मानहानि) 8. अश्लीलता (क्रीड़ा, जुगुप्सा और अमंगल की व्यंजना) 9. दण्डपारुष (निर्दय होकर मारपीट करना) 10. गर्भपात। इन अपराधों के लिए अर्थदण्ड की व्यवस्था थी।[20]

जब कोई ग्राम कृषि कार्य के लिए किसी को दे दिया जाता था तब सामान्यतया उस गाँव की अर्थदण्ड धनराशि उसके स्वामी की ही समझी जाती थी। जबकि उसकी वसूली वस्तुतः ग्राम भोक्ता द्वारा होती थी।[21]

उपर्युक्त करों के अतिरिक्त कई अन्य कर भी लिए जाते थे जिन्हें 'आभाव्य' की संज्ञा दी गई है। द्वितीय महेन्द्रपाल के प्रतापगढ़ अभिलेख में 'स्कन्धक' 'मारगणक' आदि करों के लिए 'आभाव्य' शब्दों का प्रयोग किया गया है।[22] 'स्कन्धक' कर कंधों पर ले जाने वालो सामान पर लिया जाता रहा होगा। अल्तेकर के अनुसार स्कन्धक एक लाग थी। ग्रामवासी दौरा करने वाले राजकीय अधिकारी का सामान ढोने का प्रबंध करते थे। कंधे पर उठाकर ले जाते थे। इसलिए इस लाग का नाम ही 'स्कन्धक' प्रचलित हो गया था।[23]

मारगणक एक अन्य लाग अथवा कर था जो ग्रामवासियों व नगरवासियों से वसूल किया जाता था। दशरथ शर्मा के अनुसार कुछ विशेष प्रयोजन हेतु राजकीय कर्मचारियों और ग्राम पंचों को अपने क्षेत्र में लोगों के पास चंदा मांगने के लिए जाना पड़ता था। इस धनराशि का राजकीय उच्च पदाधिकारियों या राजपरिवार के सदस्यों के आगमन पर उपयोग किया जाता था।[24]

मण्डपिकाओं के माध्यम से तलाताराभव्य, सेलहधाभाव्य और बलाधिपाभाव्य आदि करों को वसूल करने का उल्लेख मिलता है। तलार[25] नगर कोतवाल सेलहथ[26] (ग्रामीण क्षेत्र का पदाधिकारी) और बलाधिप[27] सैनिक अधिकारी जो नगर मण्डपिका के प्रबंध के लिए नियुक्त होता था का वेतन आंशिक रूप अथवा पूर्ण रूप से उक्त 'आभाव्यों' से एकत्र धनराशि से दिया जाता था।

राज. में रामपाल के राज्यकाल के नाड़लाई पाषाण अभिलेख में 'आत्मपायल' शब्द का प्रयोग मिलता है।[28] पायल एक तौल[29] का परिचायक है। यह समुचित रूपेण ज्ञात नहीं है कि यह कर किन वस्तुओं पर लिया जाता था। वि.सं. 1333 तथा वि.सं. 1334 महाराजकुल चाचिगदेव के अभिलेख में तलपद व हलसहीया हलसहड़ी का उल्लेख हुआ है।[30] एक वल्लभी अभिलेख[31] के आधार पर कीलहार्न ने 'तलपड़' को स्वतल का पर्याय माना है और इसका अभिप्राय भूमि से माना है। यू.एन. घोषाल के अनुसार यह वह भूमि थी जिसकी आय का पूर्णतया मूल्यांकन हो चुका होता था।[32] हलसही[33] कर एक हल द्वारा बुवाई की उपज पर आंका जाता था।

अभिलेखों में 'निधान' का भी प्रयोग हुआ है। यू.एन. घोषाल ने इसे कृषि भूमि पर एक प्रकार का कर माना है। परन्तु वि.सं. 1223 के केल्हणदेव के बामनेरा ताम्रपत्र से ज्ञात होता है कि इसका संबंध निरवात निधि से था।[34] लेखपद्धति में नवनिधान[35] शब्द का उल्लेख मिलता है। परम्परा से भू गर्भ में नवप्रकार की निधि मानी जाती थी। जिस पर राजा का अधिकार समझा जाता था। अभ्यान्तर सिद्धि[36] शब्द द्वितीय भर्तृवृहद के हांसोट ताम्रपत्र में मिलता है। इससे यह ज्ञात होता है कि खनिज रूप में उपलब्ध भू गर्भ निधि राजकीय सम्पत्ति है तथा उन पर कर लगाना राजा का अधिकार है। दानपत्रों में इस अधिकार को भी भोक्ता को दिये जाने का उल्लेख है।

राज्य की आय का एक मुख्य स्रोत सामंतों से प्राप्त उपहार भेंट तथा निश्चित वार्षिक धनराशि था। इसके अतिरिक्त युद्ध में लूट से भी काफी धन व हाथी घोड़े मिल जाते थे। 1488 ई. की एकलिंगजी के मंदिर की दक्षिणद्वार प्रशस्ति[37] में उल्लेखित है कि क्षैत्रसिंह ने ऐल (ईडर) के गढ़ को जीतकर राजा रणमल्ल को कैद किया। उसका सारा खजाना छीन लिया। युवराज की हैसियत से लाखा ने रणक्षेत्र में जोगा दुर्गाधिप को परास्त कर उसके हाथी तथा घोड़े छीन लिए। रायमल ने गयासुद्दीन को चित्तौड़ में परास्त किया और खेराबाद को नष्ट कर वहाँ से दण्ड इकट्ठा किया।

परन्तु आय का यह साधन अनिश्चित होता था। आलोच्यकाल में राजकीय व्यय का विवरण विशेष स्पष्ट नहीं है। राजकीय व्यय सामान्यतः सार्वजनिक कार्यों, राज्य कर्मचारियों के वेतन, शिक्षा तथा व्यक्तिगत और सार्वजनिक दान आदि रुपों मे होता था। ब्राह्मण, मंदिरों, विद्वानों, लेखकों, कवियों को दान दिए जाते थे। सार्वजनिक निर्माण, कुएं, सरोवर, बावड़ियाँ, मंदिर आदि बनाए जाते थे।

निरंतर युद्धों में सेना पर राज्य की आय द्वारा खर्च किया जाता था। राजसभाओं की भव्यता पर भी खर्च किया जाता था। राजा अपने और अपने परिवार पर भी खर्च किया करते थे। 'मालसोल्लास' के अनुसार राजा को सामन्यतः आय का केवल 3/4 भाग खर्च करना चाहिए और शेष 1/4 भाग स्थायी या सुरक्षित कोष में जमा करवाना चाहिए।[38]

संदर्भ ग्रंथ सूची

1 *कार्पस, 3, 39*

2 *काणे, पी.वी. धर्मशास्त्र का इतिहास 2, पृ. 671*

3 *डॉ. तैस्सीतोरी द्वारा जर्नल प्रॉसि. ऑफ एशिया. सोसायटी बंगाल खण्ड 12, पृ. 93 पर संपादित*

4 *ई.आई. 3, पृ. 263*

5 *एच.आई.जी. 2, सं. 127*

6 *रा.थू.ए., पृ. 325 पर उद्धृत*

7 *एपिग्राफिक इंडिका*

8 *दशांगभाग – भाजन, भोजन, शय्या, वाहन, आसन, नाट्य, पुर, निधि, रत्न और चमू*

9 *एच.आई.जी. पृ. 23*

10 *ई.आई. 11 पृ. 47*

11 *जैन लेख संग्रह भा. 2, संख्या 2006, पृ. 255–256*

12 *याज्ञवल्क्य स्मृति, 2/261*

13 *अग्निपुराण, 23, 23–24*

14 *द परमारज, पृ. 232*

15 *आई.ए. 6, पृ. 204*

16 *ई.आई. 14, पृ. 194–95*

17 *वही, 11, पृ. 59–60*

18 *श्री पूर्णचन्द्र नाहर का जैन लेख संग्रह भाग–1, नं. 918, पृ. 244*

सरदार सुमेर रिपोर्ट, जोधपुर, 30 सितम्बर 1929 वॉ. III

19 *वही, 45, पृ. 79*

20 *काणे, पी.वी. धर्मशास्त्र का इतिहास, पृ. 716, 717*

21 *द्र. लेख पद्धति, पृ. 12, 16*

22 *ई.आई. 14, पृ. 176–188*

23 *अल्तेकर, प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, पृ. 205, द्र. ई.आई. 3, पृ. 266*

24 *रा.थू.द एजेज, पृ. 327–328*

25 *त्रिविक्रम और हेमचन्द्र 'तलार' को पुराध्यक्ष और नगराध्यक्ष कहा है।*

26 *कान्हड़दे प्रबंध, 4, चौ. 40*

27 *द्र.ई.आई., 11, पृ. 46*

28 *वही, पृ. 41*

29 *वही, 9, पृ. 64*

30 *श्री कप्तान जैक्सन द्वारा 'बॉम्बे गजेटियर' भाग 1, खंड 1, पृ. 480*

मुनि श्री जिनविजयजी द्वारा सम्पादित 'प्राचीन जैन लेख संग्रह' भाग 2, लेखांक 402, पृ.सं. 249 पर उपलब्ध

31 *अ.चौ. डायनेस्टी, पृ. 236 पर उद्धृत*

32 *घोषाल, यू.एन., हिन्दू रेवेन्यू सिस्टम, पृ. 298*

33 *द्र., वि.सं. 1332 का भीनमाल अभिलेख*

34 *ई.आई. 13, पृ. 210*

35 *लेखपद्धति, पृ. 6*

36 *ई.आई. 12, पृ. 202*

37 *भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स, नं. 9, पृ. 117–133*

38 *गोपीनाथ शर्मा, बिब्लियोग्राफी, पृ. 9*

बौद्ध धर्म में दिक् देवता एवं दिशा पूजा संकल्पना

सौरभ कुमार मीना
शोधार्थी, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

प्राचीन भारतीय वैदिक, श्रमण और लोक परम्पराओं में असंख्य देवी-देवताओं की पूजा-उपासना का प्रचलन था, जिसका मुख्य उद्देश्य, अपने अभीष्ट की प्राप्ति करना था। मंदिर और मूर्तियाँ ही मुख्य रूप से उपासना के केन्द्र बिन्दु थे। इनमें दिक्पाल अथवा दिक्देवता भी प्रमुख रहे, जिनकी मूर्तियाँ भारत के अंदर व भारतीय क्षेत्रों की सीमा से परे भी प्राप्त होती है। दिक्देवताओं की परम्परा अत्यंत प्राचीन होते हुए भी प्राचीन ग्रंथों में उनकी संख्या और नामों में बड़ी भिन्नता पायी जाती है। ये दिक्देवता प्रत्येक दिशा के अधिष्ठातृ देवता थे। दिशाऐं सुदूर अतीत काल से पूज्य रही हैं। बौद्ध धर्म में दिशा-पूजकों को दिशाव्रतिक कहा गया है। बौद्धों की चतुर्महाराजिक देवों की कल्पना पूर्णतः दिशा परम्परा पर आधारित है। बौद्ध साहित्य में चार महाराजाओं अथवा दिक् देवताओं का उल्लेख मिलता है, इनमें यक्षों का राजा वैश्रवण उत्तर दिशा का, गंधर्वों का राजा धृतराष्ट्र पूर्व दिशा का, कुम्भाण्डों का राजा विरूढक दक्षिण दिशा का, नागों का राजा विरुपाक्ष पश्चिम दिशा का रक्षक स्वीकार किया गया है जिसे बौद्ध कला में प्रमुखता के साथ दिखाया गया है।

संकेताक्षर : *बौद्ध धर्म, दिशा, पूजा, दिक् देवता, बौद्ध साहित्य, बौद्ध कला।*

प्राचीन भारत के अन्यान्य लौकिक धर्मों में दिशा-पूजा का महत्वपूर्ण स्थान है। दिशाएँ सुदूर अतीत काल से पूज्य रही है और प्रत्येक दिशा के अधिष्ठातृ देवता भी थे, जिन्हें दिक्पाल या लोकपाल आदि नामों से जाना जाता था।

"दिशो ज्योतिष्मतीरभ्यावर्ते।
ता में द्रविणं यच्छन्तु ता में ब्राह्मणवर्चसम्।।"

– अथर्ववेद 10/5/38

(अथवा मैं दमकती हुई दिशाओं की परिक्रमा करते हुए उनसे ब्रह्मचर्य और ऐश्वर्य की याचना करती हूँ।)

देवत्व की कल्पना के उदय के साथ धर्म की उत्पत्ति होने पर जब दिशाओं को दैवीय माना जाने लगा तो सही अर्थों में दिशाओं की पूजा प्रारम्भ हुई। धर्म के उदय की प्रारम्भिक अवस्था में विभिन्न लौकिक धर्मों के साथ क्रिया-प्रतिक्रिया के फलस्वरूप दिशा-पूजा परम्परा की अनेक धाराऐं प्रवाहित हुई। वैदिक धर्म, जैन व बौद्ध धर्म आदि वृहत्त धर्मों जैसे नाग पूजा, वृक्ष पूजा, जल पूजा आदि लौकिक धर्मों में दिशा पूजा के तत्व अंगीकृत होते हैं। दिशा को देवत्व के रूप में प्रतिष्ठित होने के पश्चात् ही दिक्पाल अथवा दिक्देवता की परिकल्पना का अभ्युदय एवं विकास हुआ। बौद्ध धर्म में दिशाओं और दिक्देवताओं का सम्बंध दिखाई देता है जो लौकिक धर्म के प्रभाव महत्व को उद्घाटित करता है।

बौद्ध धर्म में दिशा-पूजा

बौद्ध साहित्य में दिशा-पूजा से सम्बन्धित सूचनाएँ उपलब्ध है। बौद्ध ग्रंथ सुत्तनिपात की टीका महानिद्देश में दिशा-पूजा को दिशाव्रत[1] एवं दिशा-पूजकों को दिशाव्रतिक[2] शब्दों से अभिहित किया गया है। बौद्ध ग्रंथ दीघ-निकाय के सिगालोवाद सुत्त[3] में दिशा-पूजा के विषय में विस्तार से चर्चा की गयी है। इस सुत्त में यह संदर्भ प्राप्त होता है कि राजगृह निवासी सिगाल नामक एक ग्रहस्थ का पुत्र प्रातः काल ही उठकर राजगृह से निकलकर गीले वस्त्रों एवं

गीले केशें सहित हाथ जोड़कर क्रमशः पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, उपर तथा नीचे सभी दिशाओं को नमस्कार एवं अर्चना करता था। उसी समय राजगृह में महात्मा बुद्ध भिक्षाटन हेतु प्रवेश कर रहे थे, उनहोंने सिगाल को उपर्युक्त विधि से दिशाओं को नमस्कार करते हुए देखा जिसके फलस्वरूप उन्होंने सिगाल से प्रश्न किया कि तुम प्रातःकाल उठकर दिशाओं को नमस्कार क्यों कर रहे हो। महात्मा बुद्ध ने उसे यह उपदेश दिया कि आर्य धर्म में दिशाओं को इस प्रकार नमस्कार नहीं किया जाता। बुद्ध ने उसे उपदेश दिया कि माता-पिता को पूर्व दिशा, गुरू को दक्षिण दिशा, स्त्री-पुरूषों को पश्चिम, मित्रों को उत्तर दिशा, दास एवं भृत्यों को नीचे (अधौ) की दिशा तथा श्रमण एवं ब्राह्मणों को ऊर्ध्व दिशा के समान समझना चहिए। इनके प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन करने वाला ही दिशाओं के नमस्कार का फल पाता है। यह उल्लेख हुआ है कि सिगाल गौतम बुद्ध की शिक्षा से प्रभावित होकर बौद्ध धर्म को ग्रहण कर लिया।

उपर्युक्त साक्ष्य से बौद्ध धर्म पर भी दिशा-पूजा के विधि-विधानों का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। यह तथ्य इस ओर संकेत करता है कि दिशा व्रतिक प्रातःकाल स्नान कर पूर्व दिशा से प्रारम्भ कर दक्षिणावर्त में दिशाओं की स्तुति करते थे, जिससे स्पष्ट है कि दिशा-पूजा के विधि-विधान वैदिक धर्म में याज्ञिक विधानों से पूर्णतया भिन्न एवं सरल थे। गौतम बुद्ध द्वारा उपदेशिक सिगाल नामक दिशा-व्रतिक का अपना दिशा-धर्म छोड़कर बौद्ध धर्म जैसे वृहत धर्मों के अभ्युदय एवं उनके प्रसार ने दिशा धर्म जैसे लोक धर्म के अस्तित्व को प्रभावित किया गया।

बौद्ध परम्परा में दिशाओं के रक्षक देवताओं की कल्पना हुई है। चारों दिशाओं के रक्षक इन देवताओं को बौद्ध साहित्य में चातुर्महाराजिक देव[4] या चत्तारों महाराजानों[5] कहा गया है। ये चातुर्महाराजिक देव चार प्रकार के लौकिक देवताओं गंधर्व, कुम्भाण्डों, नाग एवं यक्षों के अधिपति है। उनका निवास स्थान सुमेरु पर्वत हैं। वे बौद्ध मान्यता के स्वर्ग (सुखवती) द्वार की रक्षा करते हैं। लोकपाल योद्धाओं जैसे वस्त्र कव, जूता और मुकुट धारण करते हैं।[6] महापंचराज मठों के रक्षक हैं। वे जादूगर और ज्योतिष भी समझे जाते हैं। वे टोप धारण करते हैं। परन्तु दिक्पालों की संख्या निश्चित नहीं है। बौद्ध मान्यता के अनुसार लोकपालों की संख्या 4, 8, 10 अथवा 14 भी बताई गयी है।[7]

पालि साहित्य में चार लोकपाल, चार महाराज (चत्तारोमहाराजानो) कहलाते थे। इनमें से गंधर्वों का अधिपति धृतराष्ट्र पूर्व दिशा का, कुम्भाण्डो का अधिपति विरूढक दक्षिण दिशा का, नागों का अधिपति विरूपाक्ष पश्चिम दिशा का और यक्षों (कुबेर) का अधिपति वैश्रवण उत्तर दिशा का स्वामी माना जाता था।

चाइल्डर्स के शब्द कोष में अभिधानप्पदीपिका आदि का उल्लेख हुआ है। जहां धतरत्थ को उत्तर, विरूल्ह अथवा विरूहक को दक्षिण विरूपक्ख को पश्चिम और वेस्सवण को पूर्व दिशा सौंपी गयी है। महामायूरी में कुबेर को पूर्व दिशा का रक्षक कहा गया है।[8] इनमें कुबेर का नाम ही वैश्रवण, पांचिक या जम्भल था। संस्कृत बौद्ध साहित्य कुबेर का सम्बन्ध मणिभद्र, धृतराष्ट्र का सूर्य, विरूढक का यम और विरूपाक्ष का वरुण के साथ स्थापित करते हैं।[9]

बौद्ध धर्म में द्वार अथवा दिशाओं के रक्षकों की उत्पत्ति का आधार हिन्दू मान्यतायें हैं। बौद्ध साहित्य चार प्रमुख उर्ध्व और अधो दिशा की देवियों का भी उल्लेख करता है। इसी संदर्भ में पंचरक्षा देवियों का उल्लेख भी महत्वपूर्ण है। वे मनुष्यों को बुरी आत्माओं, व्याधि, दुर्भिक्ष आदि से रक्षा करती है। वज्रयान शाखा के चार द्वार पर देवियों का उल्लेख भी मिला है। ये देवियाँ चोर आदि से घर की रक्षा करती हैं।

बौद्ध धर्म में दिशाओं से देवताओं को सम्बन्धित करने के साथ-साथ दिशाओं से पशुओं को सम्बन्धित करने की परम्परा भी प्रचलित थी। बौद्ध धर्म में अनोतप्त सरोवर को कल्पना की गई है। इसके चार द्वार बताये गये हैं, जिन पर चार रक्षक पशुओं यथा पूर्व में हाथी, दक्षिण में अश्व, पश्चिम में वृषभ एवं उत्तर में सिंह के स्थित होने की मान्यता थी।[10] दिशाओं से पशुओं को सम्बद्ध करने की परम्परा हमें हड़प्पा काल से ही प्राप्त होने लगती है। यह परम्परा ऐतिहासिक काल में भी विद्यमान रही।

बौद्ध धर्म में दिक् देवता

बौद्ध धर्म में दिशाओं से देवताओं को संबंधित करने की परम्परा प्रचलित थी। चारों दिशाओं के रक्षक इन देवताओं को बौद्ध साहित्य में चातुर्महाराजिक देव या चत्तारों महाराजानो कहा गया है। ये चातुर्महाराजिक देव चार प्रकार के लौकिक देवताओं जैसे गंधर्व, कुम्भाण्ड, नाग एवं यज्ञों के अधिपति (महाराज) हैं। पूर्व, दक्षिण, पश्चिम एवं उत्तर दिशा के क्रमशः गंधर्व

राज, धृतराष्ट्र, कुम्भाण्डराज विरूढक, नागराज विरूपाक्ष एवं यक्षराज वैश्रवण (कुबेर) रक्षक देव है।[11] बौद्ध धर्म में चातुर्महाराजिक देवों की कल्पना इस धर्म में दिशा धर्म एवं अन्य चार लौकिक धर्मों के विलय का प्रतिफल है।

बौद्ध साहित्य में इन चातुर्महाराजिक देवों की विशेषताओं का विस्तृत विवरण प्राप्त होता है। दीघ–निकाय[12] में यह वर्णन प्राप्त होता है कि चातुर्महाराजिक देव बोधिसत्व की रक्षा उनके जन्म के समय से ही करते हैं। मज्झिम निकाय[13] में वर्णन हुआ है कि चातुर्महाराजिक देव दीर्घायु, सुंदर तथा सुख सम्पन्न होते हैं। अंगुत्तर निकाय[14] के अनुसार दया आदि अच्छे गुणों से युक्त लोग चातुर्महाराजिक देव–लोक में जन्म लेते हैं।

चातुर्महाराजिक देवों की कल्पना को बौद्ध कला (स्तूप स्थापत्य) में भी अभिव्यक्त किया गया है। बौद्ध कला में स्तूप के चतुर्दिक वेदिका निर्मित की जाती थी तथा इस वेदिका में प्रत्येक दिशा के तोरण द्वार पर उस दिशा के महाराजिक देव का अंकन किया जाता था। उदाहरणार्थ – सांची[15] एवं भरहुत[16] स्तूप के तोरण द्वारों पर इन चतुर्महाराजिक देवों का अंकन हुआ है। कनिंघम ने भरहुत स्तूप से दो महाराजिक देवों को स्तम्भों पर अंकित पाया है। कुबेर (कपिरोयखो) को उत्तरी तोरण पर तथा विरूढक को दक्षिण तोरण द्वार से प्राप्त किया है। धृतराष्ट्र एवं विरूपाक्ष से संबंधित क्रमशः पूर्वी और पश्चिमी तोरण द्वारों के स्तम्भ पर इनका अंकन नहीं मिलता है

बौद्ध साहित्य एवं साँची भरहुत के स्तूपों से ज्ञात होता है कि लोकपालों या दिक्पालों के सम्बन्ध में लोक की मान्यता भिन्न थी। उसके अनुसार पूर्व दिशा का लोकपाल गंधर्वों का राजा धृतराष्ट्र, दक्षिण दिशा में कुम्भाण्डों का विरूढक, पश्चिम दिशा में नागों का राजा विरूपाक्ष, उत्तर दिशा में कुबेर का राजा वैश्रवण था। उन्हें लोक में चातुर्महाराजिक या चारा बड़े देवता कहा जाता था। इनके नाम एवं उनकी स्तुति का उल्लेख अथर्ववेद में उद्धृत है। वहां उनके ''गन्धर्वाप्सरसः कुम्भमुष्क नाग एवं पुण्यजन''[17] कहा गया है।

धृतराष्ट्र

यह गंधर्वों का शासक है। पूर्व दिशा का संरक्षक देव है। इसका रंग श्वेत है। इसका लांछ्न सारंगी है।[18] गंधर्वों को पूर्व दिशा के स्वामी धृतराष्ट्र का परिचर कहा गया है। दीघनिकाय में उल्लेख मिलता है कि पूर्व दिशा का पालनकर्ता एवं यशस्वी महाराज धृतराष्ट्र, गंधर्वों का अधिपति है। साँची के पूर्वी तोरण द्वार के बाएँ स्तम्भ के आंतरिक किनारे पर एक श्वेत यक्ष की आकृति उत्कीर्ण है, जिसे धृतराष्ट्र माना जा सकता है। बौद्धमठों में इसकी प्रतिमाएँ पूर्व दिशा में उत्कीर्ण की गयी है। यह श्वेत वर्ण का है। (चित्र सं. 1)

विरूढक

यह कुम्भाण्डों का मुखिया है। दक्षिण दिशा का शासक है। इसका रंग लाल है। इनकी लाक्षणिक विशेषताओं में हाथों के सिर के चमड़े के एक शिरस्त्राण एवं एक लम्बा खडग होना चाहिए। दक्षिण के राजा विरूढक की एक मूर्ति प्राप्त हुई है जिसके सिर पर हाथी के सिर के चमड़े के एक सिरस्त्राण का प्रदर्शन हुआ है।

भरहुत (म.प्र.) स्तूप के बड़े घेरे के दक्षिणी तोरण के कोने के स्तम्भ के अंतिम छोर पर यक्ष विरूढक की प्रतिभा बलुए पत्थर से निर्मित है। नेपाली परम्परा में विरूढक दक्षिण दिशा का राजा है। वह समेरु पर्वत के मध्य में स्थित सुदर्शन नगर में स्थित है। इसका वर्ण लाल है। दांयी भुजा में तलवार लिए हुए व बाँयी भुजा घुटने पर अवलम्बित है। नेपाल के बौद्ध मठों एवं मंदिरों के प्रवेश द्वार पर इस देवता की प्रतिमा उत्कीर्ण है। (चित्र सं.2)

विरूपाक्ष

यह नागों का शासक है। पश्चिम दिशा का राजा है। इसका रंग लाल है। इसकी लाक्षणिक विशेषताएँ रत्न एवं सॉप है। पश्चिमी दिशा का लाल राजा एवं संभवतः शिव का बौद्ध रूप विरुपाक्ष, जो हिन्दू देवशास्त्र में नागराज है कि एक मूर्ति अजंता के गुफा सं. 1 से प्राप्त हुआ है। भरहुत के स्तूपों पर विरुपाक्ष एवं नागों की स्थिति पश्चिम की तरफ है। दक्षिण तोरण के कोने के स्तम्भ के आंतरिक फलक पर 4/2 फीट ऊँची एक नाग की आकृति (राजारूप) बनी है। मूर्ति के सिर पर पाँच सर्पों की छत्री (फण है) (चित्र सं. 3)। अजंता के चैत्य संख्या–19 के अग्रभाग पर बाएँ तरफ की दीवार पर नाग एवं पत्नी की मूर्ति अंकित है। मूर्ति का समय 475 ई. है।[19]

वैश्रवण

कुबेर अभवा वैश्रवण को धनद, धनपति, यक्षराज इत्यादि भी कहा जाता है। धन का यह हिन्दू देव उत्तर दिशा का शासक है। इसकी लक्षणिक विशेषताएं एक

ध्वजायुक्त भाला, एक चूहा अथवा नकुल जो रत्नों को उगलते हों। इनका रंग पीला होता है। वैश्रवण को गुह्यकपति, जंभल आदि नामों से भी जाना जाता है। पेशावर से एक बड़ी और भव्य कुबेर की मूर्ति प्राप्त हुई है। बौद्ध आख्यानों एवं प्रतिमाशास्त्र में यक्षों के राजा कुबेर, वैश्रवण उत्तर दिशा के रक्षक है एवं उनकी राजधानी अलका अथवा अलकापुरी है।

भरहुत स्तूप में वैश्रवण एवं उनके यज्ञों का प्रासाद उत्तर की तरफ प्रदर्शित है। कुबेर का गोत्रीय नाम वैश्रवण है। सभी यक्षों के राजा है। सांची के स्तूप सं. तीन के तोरणद्वार के स्तम्भों पर कुबेर अथवा पंचिक के प्रसन्न पारिवारिक जीवन का चित्रण दृष्टव्य है।

जंभल

रंग–श्वेत अथवा श्याम

प्रतीक – जांभर और नकुल

आभूषण – बोधिसत्व जैसा

विशेष लक्षण और प्रकार – एक सिर, दो भुजाऐं, ललितासन मुद्रा, जंभर दाहिने और नकुल बायें हाथ में। नाग पर आसीन, त्रिशूल बायें हाथ में और नकुल दाहिने हाथ में।

जंभल प्रारम्भ में एक यक्ष के रूप में प्रख्यात थे, जो ध्यानी बुद्धों से भी प्राचीनतम है। इन्हें अक्षोभ्य या रत्नसंभव की संतान कहा गया है। जंभल की प्रतिमाएँ जावा, तिब्बत, चीन और नेपाल से भी प्राप्ति हुई है। जंभल बौद्ध कुबेर है। नेपाल से एक जंभल प्रतिभा (चित्र सं. 4) ललितासन मुद्रा में बैठे हुए, उसका दाहिना पैर लटक रहा है। दायें हाथ में फल तथा बायें हाथ में स्वर्ण पात्र है। वह बड़े उदरवाला तथा आभूषणों से लदा हुआ है। बौद्ध देवशास्त्र में कुबेर को जंभल के रूप में जाना जाता है। पभोसा (इलाहाबाद – उ.प्र.) से प्राप्त कुबेर अथवा जंभल की प्रतिमा बलुए पत्थर की 660 0.500 मी. माप की है। प्रतिभा नवीं शताब्दी की है।

पंञ्चिक

मध्य देश का कुबेर या वैश्रवण देवता ही गंधार कला में पंञ्चिक नाम से जाना जाता था। पंञ्चिक की मूर्तियों की लाक्षणिक विशेषताओं में वह आभूषण धारण किये हुए ललितासन मुद्रा में पैर लटकाये हुए बैठे प्रदर्शित है (चित्र सं. 5)। पंञ्चिक कुबेर की सेना में सेनापति था। संभवतः यही कारण है कि गंधार कला में उसके दाहिने हाथ में भाला और बायें हाथ में एक थैला रहता है। गांधार कला में कुबेर (पंञ्चिक) तथा उनकी पत्नी हारीती का पर्याप्त अंकन हुआ है। वे उदरयुक्त, स्थूलकाय एवं बहुमूल्य आभूषणों से युक्त चित्रित है। आसन मुद्रा में कुबेर देवता की एक सौम्य प्रतिमा सहरी बहलोल से प्राप्त हुई है। यह प्रतिमा (चित्र सं. 6) स्लेटी बलुए पत्थर की है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारत में बौद्ध धर्म में दिशा पूजा और दिक् देवताओं का महत्वपूर्ण स्थान है। दिशा पूजा ने बौद्ध धर्म को प्रभावित किया है। बौद्ध धर्म में चातुर्महाराजिक देवों की कल्पना इस धर्म में दिशा धर्म एवं अन्य चार लौकिक धर्मों के विलय का प्रतिफल है। यहां यह भी दृष्टव्य है कि बौद्ध धर्म में दिशाओं को वह स्थान नहीं प्रदान किया गया है जो यक्ष, नाग, कुम्भाण्ड एवं गंधर्व आदि लौकिक देवताओं को प्राप्त है। चातुर्महाराजिक देवों की परिकल्पना में दिशाएं पृष्ठभूमि में चली गयी है, जबकि उपर्युक्त अन्य लौकिक देवताओं को समान धरातल पर प्रतिष्ठित किया गया है। बौद्ध धर्म में दिशा पूजा के विधि विधानों के साथ ही दिशाओं के रक्षक के रूप में दिक् देवताओं की परम्परा का समावेश हो चुका था जो लौकिक धर्म के प्रभाव महत्व को उद्घाटित करता है।

चित्र सं.1 धृतराष्ट्र (नेपाल)

चित्र सं.2 विरूढक (नेपाल)

चित्र सं.3 विरुपाक्ष, भरहुत स्तूप (सतना – म.प्र.) (कलकत्ता संग्रहालय)

चित्र सं. 4 वैश्रवण (नेपाल)

चित्र सं.5 पंचिका सहरी बहलोल (पेशावर संग्रहालय)

चित्र सं.6 कुबेर – हारीती, सहरी बहलोल (पेशावर संग्रहालय)

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *सुत्तनिपात, महानिद्देश पालि 1,13, 133*
2. *तदैव – 1,4,25*
3. *दीघनिकाय सिगालोवाद सुत्त – 3, 9*
4. *दिव्यावदान : सम्पादक पी.एल. वैद्य दरभंगा, 1959, पृष्ठ 52, 135*
5. *दीघनिकाय 2, 207, 3, 194*
6. *टावाकर, एन.जी. – दि एसेज थ्रेइंग न्यू लाइट आन दि गन्धर्वास दि अप्सरास, दि यक्षस एण्ड दि किन्नराज, पृष्ठ 69–70*
7. *सर. एल.वूली. : उर ऑफ चल्डीज, पृष्ठ 82*
8. *हेनरिक, जिमर–दि आर्ट ऑफ इण्डियन एशिया, पृष्ठ 364*
9. *वान, हालिस्टीन : तिसवुसतिक, पृष्ठ 97, 122*
10. *संयुक्त निकाय, अट्ठकथा–2, 438*
11. *दीघनिकाय : 2, 202, 3, 194*
12. *दीघनिकाय : 2, 257 (अट्ठकथा)*
13. *मज्झिम निकाय : संजारुप्पतिसुत्त – 3, 2, 10*
14. *अंगुत्तरनिकाय : संजारुप्पतिसुत्त – 3, 2, 10*
15. *अग्रवाल, वासेदवशरण : भारतीय कला, वाराणसी 1977, पृष्ठ 134*
16. *तदैव, पृष्ठ 172*
17. *अथर्ववेद – 11, 9, 17, 8, 6, 15*
18. *बून्स, डब्लू, फेडरिक : बुद्धिस्ट ए ण्ड हिन्दू आइक्नोग्राफी, पृष्ठ 206*
19. *दुरेशी, दुलारी : केव. टेम्पिल आफ अजन्ता एण्ड एलोरा, पृष्ठ 287–289*
20. *सिंह, अमरेन्द्र : भारतीय लोकमानस और परम्परा में यक्ष किन्नर और दिक्पाल, पृष्ठ 204*

महाराजा मानसिंह की पड़दायत बड़ा चपलराय की बही में वर्णित ''बावड़ी एवं बाग से प्राप्त आय और व्यय का विवरण''

shodhshree@gmail.com

डॉ. अनिला पुरोहित
एसोसिएट प्रोफेसर, राजकीय डूंगर महाविद्यालय, बीकानेर

शोध सारांश

मारवाड़ के शासकों द्वारा अपनी रानियों, पासवानों एवं पड़दायतों आदि को विवाह अथवा रनिवास मे प्रवेश के अवसर पर गाँवों के पट्टे मेहरबानी करके दिये जाते थे। इससे प्राप्त होने वाली आय को रेख कहा जाता था और रेख का अर्थ गाँवो की अनुमानित आय है। वे इस आय को अपनी बुद्धि से निजी अर्थात सेविकाओं एवं डावड़ियों, लोकहितकारी, धार्मिक एवं सामाजिक सेवा के कार्यो पर खर्च करती थीं। महाराजा मानसिंह की ख्यातानुसार उनकी पड़दायत चपलराम थी। इसने सोजती दरवाजे के बाहर एक बावड़ी का निर्माण करवा कर उस पर एक बगीचा लगाया। बही के अनुसार इससे होने वाली आय को वह विभिन्न प्रकार के कार्यो पर खर्च करती थी। इससे हमें यह जानकारी प्राप्त होती है कि बाग में फल, फूल और सब्जियों को उगाकर उन्हें मण्डी में बेचा जाता था। बाद में बावड़ी पर पानी निकालने के लिए अरहट लगाया गया और उसमें मिट्टी के भर जाने पर राज्य की सहायता लेकर निकालने के लिए धन खर्च किया जाता था। अरहट का दिगार दूर जाने पर नया लगवाया गया, उस पर हुए खर्च की जानकारी प्राप्त होती है।

संकेताक्षर : *पड़दायत, पट्टे, रेख, बही, बावड़ी, अरहट, बगीचा, मण्डी।*

मारवाड़ की महिलाओं का जनकल्याण के कार्य में महत्वपूर्ण योगदान रहा हैं। मारवाड़ में रानियों पासवानों एवं पड़दायतों आदि के द्वारा अपनी निजी आय से उन्होंने जनकल्याण के अनेक कार्यों को संपादित किया था। मारवाड़ के शासकों द्वारा अपनी रानियों पासवानों एवं पड़दायतों आदि को विवाह के अवसर पर अथवा रनिवास में प्रवेश के अवसर गांवों के पट्टे इनायत किये जाते थे। जिससे प्राप्त आय को रेख कहा जाता था। रेख का अर्थ है गांवों की अनुमानित आय।[1] गांवों की रेख के आधार पर रनिवास में रानी पासवान एवं पड़दायत आदि की विशेष प्रतिष्ठा, मान आदि का अनुमान लगाया जाता था। रानियाँ पासवान और पड़दायतो द्वारा इन गाँवों से प्राप्त आय को अपने स्वविवेक से खर्च करती थी। इसका उपयोग अपने निजी व्यय में सेविकाओं एवं डावड़ियों पर खर्च, लोकहितकारी कार्यो पर खर्च, धार्मिक कार्यो पर खर्च तथा समाज सेवा के कार्यों में खर्च करती थी। मारवाड़ ने उनके द्वारा बनवाये गये मन्दिर, तालाब, कुएं, बावड़ियाँ एंव बगीचे आदि इस बात के साक्षी है कि वे अपने पट्टे गांवों से प्राप्त आय को जन सामान्य के कल्याण के लिए उद्धारहृदय से व्यय करती थी।

महाराजा मानसिंह की ख्यात के अनुसार महाराजा मानसिंह के 13 रानियाँ और 12 पड़दायते थी।[2] इसमें से एक पड़दायत बड़ा चपलराय थी। जिन्होंने सोजती दरवाजे के बाहर एक बावड़ी का निर्माण करवाकर उस पर एक बगीचा लगाया था।[3] बही के अनुसार बाग से एक वर्ष में जो आय प्राप्त हुई उस प्राप्त आय को कौन–कौन से कार्यो पर खर्च किया गया। उसकी जानकारी मिलती है।[4] बही से हमें यह जानकारी मिलती है कि बाग में कौन–कौन से फलों फूलों और सब्जियों को उगाया जाता था और उसको मण्डी में किस मूल्य पर बेचा जाता था। उसका उल्लेख मिलता है। बावड़ी के निर्माण के बाद उस पर पानी निकालने के लिए अरहट लगाया गया था तथा बावड़ी में मिट्टी भर जाने पर उसको राज्य की सहायता से निकालने पर कितना खर्च किया गया। उसका वर्णन मिलता है। इस कार्य में लगे मजदूर वर्ग को दिया गया पारिश्रमिक कार्य में लाये गये औजारो तथा निर्माण सामग्री की जानकारी मिलती है। उस समय प्रचलित मुद्रा की (विजयशाही) की जानकारी भी लिती है। जो निम्नलिखित हैं–

बाग से प्राप्त आय का विवरण

बही के अनुसार अश्विन माह में 2 रू. के मक्का के भुट्टे एवं 11 आने के (44 पैसे) के गूंदे के पत्ते तथा आठ आना और तीन पैसे की शंकरकंद (35 पैसे) को बेचा गया।[5]

कार्तिक माह में 10 पैसे और मार्गशीर्ष के माह में 2रू. 6 पैसे के फूल मण्डी में बेचे गये। पौष वदि 7 (सप्तमी) से माघ सुदि पूर्णिमा तक पेम दी किस्म के बेर पौने बारह मण सवा सात सेर बेर कुल 67 रू. और 6 आने (24 पैसे) में मण्डी में मदिना नामक आसामी को बेचे गये।[6]

सर्दियों के मौसम में गुलाब के फूलों का अधिक उत्पादन होने पर 23 रू. के गुलाब के फूलों को मण्डी में बेचा गया। गर्मियों के मौसम में बाग में ककड़ियों का उत्पादन होने पर वैशाख सुदि 6 (छठ) से वैशाख सुदि 11 (ग्यारस) तक मण्डी में 18 रू. की ककड़िया बेचने का उल्लेख मिलता है।[7]

रबी की फसल में गेंहू और जौ का उत्पादन होने पर चैत्र सुदि 13 को साढ़े छः मण गेंहू और 1 मण जौ मेहरानगढ़ दुर्ग में भेजा गया।

वैशाख सुदि 4 (चौथ) 4 आने 3 पैसे का खाखला (गेंहू की कटाई के बाद जो घास-फूल रह जाता है जो सुखने के बाद पशुओं के खाने के काम में आता है। वह सुखा चारा खाखला कहलाता हैं) घांची साबर को बेचा गया।

फाल्गुन सुदि 14 (चौदस) 1 रू. का गेहू होरा को बेचा गया।[8]

देवस्थान तालके पर किया गया व्यय

वही से देवस्थान तालके के अन्तर्गत धार्मिक कार्यो पर जो खर्च किया गया उसका पूरा ब्यौरा मिलता हैं- जैसे फाल्गुन माह सुदि 13 (तैरस) को बाग में भौमियाजी की पूजा करवाई गई उस पर डेढ़ आना (6 पैसे) खर्च हुए (पूजा के समय ब्राह्मण को खाने-पीने का सामान दिया गया वह दुर्ग से आया था)

कुंजबिहारी मन्दिर मे चैत्र वदि पंचमी को ठाकुरजी के उत्सव का आयोजन किया गया उसमें ठाकुर जी के श्रृंगार के लिए गुलाब के फूलों पर चार आने खर्च किये गये। वैशाख माह की सुदि 14 (चौदस) को बाग में भौमियाजी को 3 पैसे का नारियल चढ़ाया गया।[9]

अकाल के समय बावड़ी पर पानी भरने के लि महिलाएं आती थी। कई बार कलश अथवा घड़े (मिट्टी के बने होने के कारण) टूट जाते थे। पुण्य कार्य के लिए इन महिलाओं धड़े राज्य की ओर दिये जाते थे। पड़दायत बड़ा चपल राय ने पुण्य कार्य हेतु इन महिलाओं को कलश दिये थे उसका उल्लेख मिलता हैं जैसे- कुल 13 रूपये आठ आना दो पैसे (13.34 रूपये) के घडे कुम्हार जेठा से भूरे खां के मार्फत खरीदे गये। 1 रू. के 60 घड़े मिलते थे यह घड़े ज्येष्ठ माह में वदि 11, ज्येष्ठ सुदि 5, ज्येष्ठ सुदि 10, आषाढ़ माह में वदि 3, 5, 7, 9, 14 तथा आषाढ़ माह की सुदि 12 और आषाढ़ सुदि पूर्णिमा को खरीदे गये।[10]

कुंए के पानी से हौद भराया गया। पानी कुएं से खिंचने के लिए माली गंगाराम से बैलो की जोड़ी किराये पर मंगवाई थी। जिसे प्रतिदिन का किराया आठ आना (32 पैसे) दिये जाते थे। आषाढ़ वदि 1 (एकम) से वदि 9 नवमी तक साढ़े नौ दिन कुल 4 रूपये 12 आने दिये गये।[11]

कार्तिक सुदि 4 को 1 रू. साद ब्राह्मण को दिया गया। पानी छानने के लिए गलना (कपड़ा) 1 रू. का खरीदा गया ब्राह्मणों को देने के लिए मार्गशीर्ष वदि 12 को अपुरबाी बाग में आया। उसे आठ आना दिये गया। माघ सुदि 10 को 1रू. ब्राह्मणों को दिया गया। आठ आना सादणियों (वैष्णवों की औरतो) को दिया गया गया।[12]

बाग में कार्यरत श्रमिकों को दिया गया पारिश्रमिक का विवरण

बाग में कार्यरत श्रमिकों को 91 रू. का पारिश्रमिक दिया गया उसका उल्लेख बही में मिलता है, यथा वि. स. 1895 ज्येष्ठ वदि 7 से वि.सं. 1896 ज्येष्ठ वदि 7 तक 12 महिनों का 48 रू. का पारिश्रमिक माली असरिया को दिया गया। प्रति महिना 4 रू. के हिसाब से।[13]

संवत 1895 अश्विन वदि पूर्णिमा से संवत 1896 पौने चार महिने का पारिश्रमिक 15रू. सागड़ी चाकर बखता को दिया गया।

(सागड़ी चाकर- किसान के पास कृषि कार्य करने वाला नौकर)। बाग में काम करने वाले माली गंगामूला को कार्तिक वदि 1 (एकम) से वैशाख सुदि पूर्णिमा तक का पारिश्रमिक 28 रू. (कुल 7 महिने और प्रति माह 4रू. के हिसाब) दिया गया।[14] माघ माह मे गुलाब के पौधो की गुड़ाई (कटिंग करने पर) करने पर माली को 1रू. 2 आने दिये गये। बाग में बेर के पौधो की रखवाली

करने के लिए छतिया भील को रखा गया था उसे 4 आना (16 पैसे) दिये गये।[15]

बावड़ी पर किया गया व्यय का ब्यौरा

बावड़ी के निर्माण के बाद समय पर अरहट लगाने पर, मिट्टी भर जाने पर मिट्टी निकालने कार्य तथा अरहट का दिगार दूर जाने पर नया लगावाया गया था उस पर जो व्यय किया गया था उसकी जानकारी मिलती हैं– जैसे आषाढ़ माह में बावड़ी के निर्माण के बाद उस पर अरहट लगाने और डिगार लगाने पर 21.53 रूपये खर्च किये गये।[16] (बावड़ी से पानी निकालने के लिए लोहे की चकरी द्वारा लगाने को अरहट कहा जाता है। अरहट पर लगने वाले लकड़ी का डंडा दिगार कहलाता हैं)

ज्येष्ठ माह में बावड़ी में मिट्टी भर जाने पर ओढ़ियों (लोहे की तगारी) मिट्टी निकालने का कार्य सिपाही भूरे खां मार्फत कराया गया। उसका पारिश्रमिक मजदूरों को 24.5 रू. दिये गये। सावन सुदि 9 को अरहट का दिगार टूट जाने पर नया लगवाया गया 2.32 रू. सुथार मनारा को लकड़ी खरीदने के दिये गये। सुथार घना को डिगार लगाने के 23 पैसे मजदूरी के दिये गये। भादवा माह में पुनः अरहट का डिगार टूट जाने पर नया लगाने के लिए वदि 2 को 2.32 रू. सुथार मनारा को 14 पैसे सुथार घना को मजदूरी के दिये गये।[17] कार्तिक वदि 2 बावड़ी की अरहट की माण (अरहट पर लगी वह डोरी जिन पर पानी के घडिये (कलश) बांध जाते हैं) टूट जाने पर नई बनवायी गई। उसके लिए 5रू. की दो मण कोरी मूंज खरीदी गई। माण बनाकर लगाने के लिए कोरालिया को 5 पैसे पारिश्रमिक दिया गया। 5रू. घडिया (मिट्टी के कलश) कुम्हार जोधा चैनपुरा वाले से खरीदे गये।[18]

अन्य मदों पर किया गया व्यय का विवरण

भादवा माह सुदि 12 को अंग्रेजों का डेरा (शमियाना) बाग में लगा था। उसकी सुरक्षा के लिए 4रू. पुरबिया नंदा को दिये गये।[19]

श्रावण सुदि 8 को 25 रू. रामो को दिये गये, कार्तिक सुदि 12 का माली को 8रू. बाजरी देने का उल्लेख मिलता है।[20]

बाग और बावड़ी पर खर्च करने के बाद 40.58 रू. की आमदनी हुई (फुटकर वस्तुएं बेचने पर) उसमें 30.58 रूपये फाल्गुन सुदि 11 को रामो के हस्ते दुर्ग में भेजे गये चैत्र सुदि 3 को अमरो के हस्ते 10रू. भेजे गये।[21]

इस प्रकार पड़दायत बड़ा चपलराय की बही से स्पष्ट होता है कि राज्य की और पड़दायतों को खर्च करने के गांवों के पट्टे दिये जाते थे। उसकी आय को वह आवश्यक कार्यो पर खर्च करने के साथ–साथ कुएं, बावड़ी, बाग तथा धार्मिक कार्यो पर खर्च करती थी। परन्तु यह भी सत्य है कि महाराजा मानसिंह का सम्पूर्ण शासन काल एक तरफ नाथो का आंतक तो दूसरी तरफ अंग्रेजों से सन्धि करने के पश्चात् खिराज की राशि की नियमित अदायगी और उनके बढ़ते हस्तक्षेप के कारण राज्य की आर्थिक स्थिति शोचनीय थी। उसके बावजूद संवत 1895–1896 पड़दायत द्वारा जनहित में बाग–बावड़ी का निर्माण निःसन्देह प्रशांसनीय कार्य था। यह उनके उद्धार हृदय का परिचायक है। जो जन सेवा के प्रति उनके उत्तरदायित्व को भी पूरा करता है। मारवाड़ की प्रजा को जल की कमी न रहे इसलिए जल स्त्रोतों को विशेष रूप से प्राथमिकता दी जाती थी।

डॉ हुकमसिंह भाटी के अनुसार जोधपुर उस समय विजयशाही सिक्का प्रचलन में था एक विजय शाही रूपये में 16 आना होते है। 1 आना में 4 पैसे होते थे। 1 पैसे में 3 पाई होती थी। इस प्रकार एक चांदी के विजयशाही रूपये में 64 पैसे होते थे।

पण्डित विश्वेश्वर नाथ रेऊ के अनुसारजोधपुर में महाराजा विजयसिंह ने वि.सं. 1837 (1780 ई.) में विजयशाही सिक्का चलाया था। जो चांदी का रूपया था।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *हुक्मसिंह भाटीः सं.ः मारवाड़ रा ठिकाणां री विगत, सं. पृ. 6, राजस्थानी शोध संस्था–चौपासनी, जोधपुर, 1998*
2. *जितेन्द्र कुमार जैन और डॉ. नारायण सिंह भाटीः सं. महाराजा मानसिंह री ख्यातः, पृ. 235–239, राजस्थान प्राच्य विधा प्रतिष्ठान जोधपुर द्वितीय संस्करण, 1997*
3. *पड़दायत बड़ा चपलराय की बही, क्रमांक 260 महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश शोध केन्द्र संग्रहित है। जो वि.सं. 1895 (1838 ई.) कुल 10 पृष्ठ है। यह उनकी एक मात्र बही है।*
4. *वही ; पृ. 1*
5. *वही ; पृ. 2*
6. *वही ; पृ. 2*

7. वही ; पृ. 3
8. वही ; पृ. 3
9. वही ; पृ. 4
10. वही ; पृ. 4
11. वही, पृ. 4
12. वही ; पृ. 4
13. वही ; पृ. 5
14. वही ; पृ. 5
15. वही ; पृ. 6
16. वही ; पृ. 6
17. वही ; पृ. 6
18. वही ; पृ. 7
19. वही ; पृ. 7
20. वही ; पृ. 1
21. वही ; पृ. 5
22. डॉ हुकमसिंह भाटी सं. मारवाड़ रा परगना री फरसत, पृ. 241, प्रथम संस्करण 2005, राजस्थानी शोध संस्थान, चौपासनी,
23. पण्डित विश्वेश्वर नाथ रेऊ मारवाड़ का इतिहास – भाग–ए पृ. सं. 346 प्प संस्करण, 2009 महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश शोध केन्द्र

 ISSN 2277-5587

राणा राजसिंह के सांस्कृतिक अवदान का ऐतिहासिक अध्ययन

डॉ. भगवान सिंह शेखावत
सहायक आचार्य, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

मध्यकालीन भारत के इतिहास में राजस्थान का योगदान विशिष्ट है जहां शस्त्र व शास्त्र का अतुलनीय समन्वय हुआ है जहां के अमर योद्धाओं ने एक तरफ अद्‌भुत रण कौशल व वीरता के नए अध्याय लिखे हैं वहीं दूसरी और सांस्कृतिक क्षेत्र में भी अपना योगदान देकर अपने वंश की कीर्ति को नया आयाम प्रदान किया है। वीर प्रसविनी राजस्थानी धरा का मेदपाट प्रदेश इस दृष्टि से अग्रणी है जो राष्ट्रीयता वह स्वाभिमान की गंगोत्री हैं वहीं सांस्कृतिक विकास की उर्वर भूमि भी है जिनमें मेवाड़ के महाराणा राजसिंह का नाम अग्रणी है जिन्होंने स्थापत्य, मूर्तिकला, चित्रकला व संगीत के क्षेत्र में अभूतपूर्व योगदान देकर स्वयं व अपने वंश की कीर्ति को स्थायित्व प्रदान किया।

संकेताक्षर : *मेदपाट, महाराणा, शिलालेख, स्थापत्य, प्रशस्ति, मुगल, चित्रशैली।*

वीर प्रसविनी राजस्थानी धरा के दक्षिणी भाग में अवस्थित मेवाड़ प्रदेश के शासकों ने राजपूताना को राजनीति के उच्चतम शिखर पर पहुंचाकर राष्ट्रीय पहचान ही नहीं दिलाई बल्कि सांस्कृतिक क्षेत्र में भी ऐतिहासिक योगदान दिया। मेदपाट प्रदेश राष्ट्रीयता की उत्कृष्ट भावना व स्वाभिमान का उद्‌गम स्थल रहा है। गुहिल वंशी शासकों में बप्पारावल से लेकर राणा कुंभा, राणा सांगा, राणा उदय सिंह, राणा प्रताप, राणा राजसिंह जैसे शासकों ने मेवाड़ प्रदेश के गौरव को नया आयाम दिया जिनमें राणा राजसिंह का योगदान अभूतपूर्व है।

राजसिंह महाराणा जगतसिंह द्वितीय के पुत्र व उत्तराधिकारी का जन्म रानी जनादे बाई मेड़तणी के गर्भ से दिनांक 24 सितंबर 1629 को हुआ था।[1] राणा जगजीत सिंह की मृत्यु के बाद 1652 ई. को राज सिंह 23 वर्ष की आयु में मेवाड़ का शासक बना। राणा राजसिंह के समकक्ष मुगल बादशाह औरंगजेब था जिससे राज सिंह का प्रारंभिक संबंध संतोषपूर्ण थे परंतु शीघ्र ही औरंगजेब की संकीर्ण धार्मिक नीति, चारुमति प्रकरण आदि कारणों से मुगल व मेवाड़ के राजनीतिक संबंध कटु हो गये, उस विपरीत परिस्थिति में राजसिंह ने सांस्कृतिक प्रगति की तरफ न केवल ध्यान आकृष्ट किया बल्कि उसे चरम उत्कर्ष पर पहुंचाया।

राणा राजसिंह के शासनकाल में साहित्य का सर्वाधिक विकास हुआ। राजसिंह के शासनकाल में यजुर्वेद हविर्यज्ञकाण्डम्, वाजसनेयी संहिता, युद्धि मयूख, नित्य श्राद्ध विधि, राम कल्पद्रुम, तीर्थरत्नाकरम्, चमत्कार चिंतामणि, गोवध व्यवस्थादीप, वास्यदीप, सीमंत पद्धति, जातकम पद्धति, उपनीत पद्धति, मातृ महालय, श्राद्ध पद्धति, सर्व कर्म साधारण प्रयोग, मंथान भैरवागमनम् देव प्रतिष्ठा पद्धति, कालिका पुराणम्, शिवार्चन विधि, सेतु माहात्म्यम्, वराह संहिता, दशकर्म आदि ग्रंथों की पाण्डुलिपियाँ तैयार की गई जो सरस्वती भण्डार, उदयपुर में विद्यमान है।[2] राणा राजसिंह साहित्यकारों के आश्रयदाता थे जिनके दरबार में तत्कालीन समय के कई विद्वान थे जिनमें रणछोड़ भट्ट का सर्वाधिक प्रमुख स्थान था। रणछोड़ भट्ट के द्वारा रचित प्रमुख कृतियों में ''राजप्रशस्ति महाकाव्य तथा अमरकाव्य'' प्रमुख है। राजप्रशस्ति में राणा राजसिंह की उपलब्धियों का विस्तृत वर्णन मिलता है। महाकाव्य के प्रथम 5 सर्गो में राजसिंह के पूर्व शासकों का वर्णन है। छठे से सोलहवे सर्ग तक राजसिंह के

शासनकाल की घटनाओं का विस्तृत वर्णन है जो इस महाकाव्य का मुख्य भाग है। शेष सर्गो में मुगल–मेवाड़ संबंधों पर प्रकाश डाला गया है। राणा राजसिंह कालीन एक अन्य साहित्यकार सदाशिव था जिसने ''राजरत्नाकर" नामक ग्रंथ की रचना की। लाल भाट ने 'राजसिंह प्रभा वर्णनम्' नामक काव्य लिखा।[3] मुकन्द ने 'राज सिंहास्टक' काव्य लिखा जो वस्तुतः राजसिंह का प्रशस्ति गान है। राणा राजसिंह के काल में संस्कृत भाषा के अतिरिक्त हिन्दी व राजस्थानी भाषा के साहित्यकारों को राजकीय संरक्षण मिला। डिंगल काव्यों में किशोरदास रचित 'राजप्रकाश' प्रमुख है जिससे तत्कालीन शासन व्यवस्था की जानकारी मिलती है। राजप्रकाश ग्रंथ में कवि और कविता का परिचय दिया गया है :–

''राणो प्रतपे राजसी, धर गिरपाट उधारे
राज प्रकासित नाम गाहे, कहि–कहि राव किसौर''

इसी क्रम में "खुमाण रासौ" ग्रंथ दौलत विजय ने लिखा जिसमें बप्पारावल से राजसिंह तक का वर्णन है। राणा राजसिंह के काल में मुगलों से सम्पर्क बढ़ा और आपसी पत्र व्यवहार भी हुआ जिससे फारसी प्रभाव भी पड़ा। राणा राजसिंह काल के कई ग्रंथों की प्रतिलिपि ओरियण्टल रिसर्च इन्सीट्युट, पूना में सुरक्षित है।[4]

राणा राजसिंह कालीन स्थापत्य में सर्वाधिक महत्वपूर्ण राजसमुन्द है जिसे गोमती नदी को रोककर बनाया गया है। रणछोड़ भट्ट कृत राजप्रशस्ति में इसके निर्माण का विस्तृत वर्णन है। इस बाँध में स्थानीय राजनगर के पत्थर को काम में लिया गया है जो वर्तमान में भी वहाँ प्रचुर मात्रा में मिलता है, इसे 'नौचौकी बांध' भी कहा जाता है क्योंकि बांध के नीचे चबूतरों पर 3–3 छतरियों वाले मण्डप बने हुए है जिन तीनों का योग नौ होता है। नौचौकी पर स्थित मण्डपों की बनावट वैसी है जैसे किसी समाधि छत्री, गरूड़ अथवा नन्दी की छत्रि की होती है। मण्डपों पर शिखर या गुम्बद नहीं है इनका तीन छत्री के समूहों में इस प्रकार का निर्माण हुआ है कि ये दिखने में बड़े सुन्दर प्रतीत होते है।[5] इन मण्डपों के स्तम्भों व छतों में सुन्दर खुदाई का काम है। खम्भों पर पशु–पक्षी तथा स्त्री की मूर्तियाँ बड़ी रोचक तरीके से खोदी हुई है। शीर्ष–पटों पर सूर्य, ब्रह्म, इन्द्र, इन्द्राणी, पार्षद, गन्धर्व, नर्तक–मण्डलियों की प्रतिमाऐं उत्कीर्ण हैं।[6] इस बांध के निर्माण के संबंध में लोक गाथा प्रचलित है कि राजसिंह जैसलमेर के रावल मनोहरदास की पुत्री कृष्णकुँअर से विवाह करने जैसलमेर गये थे, विवाह पश्चात् वापस लौटते समय उन्होंने राजनगर पड़ाव किया, वर्षा ऋतु होने के कारण गोमती नदी में पानी का बहाव तेज था, उसी समय राजसिंह ने गोमती नदी के पानी को रोककर बांध बनाने का सोचा। ई. 1661–62 में उदयपुर राज्य में भयानक अकाल पड़ा। राणा राजसिंह ने अकाल पीड़ित प्रजा को सहायता पहुँचाने के लिए इस बांध का निर्माण करवाया। रणछोड़ भट्ट ने लिखा है–

तड़ागंत्रागता नद्यो गोमती नाम मयुक्।
कैलवास्थ नदी सिंधो गंगाया विवशुर्यथा।।

अर्थात् जिस प्रकार गंगा आदि नदियां समुद्र में गिरी है उसी प्रकार राजसमुन्द के भी गोमती, ताल, केलवा नदी गिरती है।

नौचौकी बांध का तोरण द्वारा 17वीं शताब्दी का सर्वश्रेष्ठ तोरण द्वार जो शुद्ध हिन्दी शैली में बना है। राजसमुन्द में कई सेतु है जिनमें–

1. मुख्य सेतु
2. निम्ब सेतु
3. भद्र सेतु
4. कांकरोली सेतु
5. आसोटिया ग्राम सेतु
6. वांसोल ग्राम सेतु

चित्र – राजसमन्द झील व नौचौकी शिलालेख

नौचौकी बांध के एक चबूतरे पर नृसिंहावतार, माखनचोरलीला, गोवर्धन पर्वत को धारण करते कृष्ण, गजेन्द्र मोक्ष जैसे पौराणिक कथानकों के दृश्य उत्कीर्ण है। चबूतरे पर हाथी, घोड़ा, बैल आदि पशुओं को भी उत्कीर्ण किया गया है।[7] चबूतरों से राजसिंह कालीन उत्कृष्ट तक्षण कला का पता चलता है।

राणा राजसिंह के काल में स्थापत्य के क्षेत्र में पटरानी चारुमति द्वारा राजनगर में बनी बावड़ी, रंगसागर का तालाब, इन्द्रसागर, त्रिमुखी वासी जनासागर आदि उत्कृष्ट जल संस्कृति के उदाहरण है। मेवाड़ चित्र शैली राजपूताना चित्र शैलियों का प्राचीनतम केन्द्र रहा है। राणा राजसिंह के पिता महाराणा जगतसिंह का काल मेवाड़ चित्रकला का स्वर्णयुग माना जाता है जिस

परम्परा को राजसिंह ने आगे बढ़ाने का प्रयास किया। इस काल की मुख्य विशेषता मेवाड़ चित्रशैली पर पड़ने वाला मुगल प्रभाव है। इसी समय मेवाड़ में एक नई चित्र शैली का उद्‌गम हुआ जिसे ''नाथद्वारा चित्र शैली'' कहा जाता है, नाथद्वारा वल्लभ सम्प्रदाय के प्रमुख केन्द्र के रूप में उभरा। इस शैली के चित्रों के सृजन में मौलिक आधार श्रीनाथजी के प्राकट्य, आचार्यो के दैनिक जीवन और कृष्णलीला थे।[8] नाथद्वारा शब्द नाथद्वार से बना है जिसमें नाथ का अर्थ भगवान से है। द्वार का अर्थ चौखट से है अर्थात् नाथद्वारा का शाब्दिक अर्थ "ईश्वर का द्वार" है। औरंगजेब ने संकीण धार्मिक नीति के तहत मन्दिरों को शिकार बनाया जिसके तहत ब्रज प्रदेश के सनातनी लोगों ने बड़े भव्य मन्दिरों से मूर्तियों को स्थानान्तरित कर उन्हें सुरक्षित रखने का उपाया बनाया। गोवर्धन पर्वत पर स्थित वल्लभ सम्प्रदाय वालो के गिरराज के प्रमुख मन्दिर की श्रीनाथजी की मूर्ति को लेकर वहाँ के मुख्य गोसाई दामोदरजी सपरिवार व अन्य पुजारियों को साथ लेकर गोवर्धन से वि.सं. 1726 को चल पड़े।[9] मूर्ति को लेकर किशनगढ़, चौपासनी (जोधपुर) होते हुए वे मेवाड़ पहुँचें। मेवाड़ के राणा राजसिंह मूर्तियों को मेवाड़ में रखने का प्रस्ताव स्वीकारते हुए कहा –

''जब मेरे एक लाख राजपूतों के सिर कट जायेंगे उसके बाद आलमगीर इस मूर्ति के हाथ लगा सकेंगा।''[10]

चित्र – श्रीनाथ जी मूर्ति, नाथद्वारा

महाराणा ने चौपासनी (जोधपुर) से मूर्तियाँ मेवाड़ मंगवाई और सिहाँड़ ग्राम (उदयपुर से 12 कोस उत्तर की ओर बनास नदी के तट पर) में श्रीनाथजी का मन्दिर स्थापित किया गया, राणा ने गोसाई वर्ग को मन्दिर स्थापन में सभी सुविधाऐं प्रदान की। इसी प्रकार गोवर्धन वाले द्वारकाधीश की मूर्ति भी मेवाड़ में लाई गई और कांकरोली में इसकी प्रतिष्ठा कराई गई। राणा राजसिंह के समय ही मेवाड़ (नाथद्वारा) से ही हवेली–संगीत परम्परा प्रारम्भ हुई।

सुस्पष्ट है कि मध्यकालीन राजस्थान के इतिहास में महाराणा राजसिंह ऐसे शासक हुये है जिन्होंने राजनीतिक स्तर पर संकीर्ण मुगल धार्मिक नीति का प्रतिरोध किया वहीं सांस्कृतिक क्षेत्र में स्थापत्य, मूर्तिकला, चित्र व संगीत कला को संरक्षण प्रदान कर स्वयं व अपने वंश की महिमा को स्थायित्व प्रदान किया।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *गो.ही. ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ. 529*
2. *आर.पी.व्यास, महाराणा राजसिंह, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर पृ. 130*
3. *श्रीराम शर्मा, महाराणा राजसिंह एण्ड हिज टाइम्स, पृ. 125*
4. *जी. एन. शर्मा, सोशल लाइफ इन मेडीइवल राजस्थान, पृ. 257*
5. *आर.पी.व्यास, महाराणा राजसिंह, पृ. 141*
6. *वही, पृ. 141*
7. *राज प्रशस्ति, सर्ग 8, श्लोक 51–52*
8. *श्यामलदास, वीर विनोद, भाग–1, पृ. 335*
9. *वही, पृ. 452*
10. *गो.ही.ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास, पृ. 547*
11. *कठमणी : कांकरोली का इतिहास, पृ. 14*

भारत में महिला सशक्तिकरणः– यथार्थ या मिथक

shodhshree@gmail.com

डॉ. आशुतोष मीना
अस्सिटेंट प्रोफेसर, राजकीय महाविद्यालय नांगल राजावतान (मीणा हाईकोर्ट)

शोध सारांश

महिला सशक्तिकरण से अभिप्राय है आर्थिक, सामाजिक, भौतिक, शारीरिक, मानसिक, शैक्षणिक, राजनीतिक इत्यादि सभी स्तरों पर महिलाओं को सशक्त बनाने की प्रक्रिया है। देश में महिलाएं सम्मानित जीवन जीने के लिए संघर्ष कर रही हैं। शैक्षिक व आर्थिक स्थिति में सुधार के बावजूद आधुनिक भारतीय समाज में महिलाएं सुरक्षित नहीं हैं। भारत में लिंग असमानता, पितृसत्तात्मक समाज व परम्परागत रूढ़िवादी मान्यताएं महिलाओं के सशक्तिकरण और विकास में बाधा के लिए जिम्मेदार हैं। संवैधानिक और कानूनी प्रावधानों के बावजूद दमनकारी सामाजिक प्रथाओं, रीति–रिवाजों व सामाजिक–आर्थिक सुरक्षा के अभाव के कारण महिलाएं शिक्षा व अधिकारों से वंचित हैं। आधुनिक समय में केंद्र व राज्य सरकारों द्वारा महिला अधिकारों की रक्षा, शिक्षा, रोजगार और सुरक्षा के लिए राष्ट्रीय व राज्य स्तर पर महिला विकास के लिए विभिन्न योजनाएं चलाई जा रही हैं। महिला सशक्तिकरण महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक ताकत में सुधार लाकर व उनकी आत्म–शक्ति को बढ़ाकर प्राप्त किया जा सकता है। प्रस्तुत शोध पत्र में लिंग असमानता, शिक्षा, स्वास्थ्य, राजनीतिक, आर्थिक, प्रशासनिक व न्यायिक व्यवस्था में भागीदारी के आधार पर महिला सशक्तिकरण की वास्तविक स्थिति का अध्ययन करने का प्रयास किया गया है।

संकेताक्षर : *महिला अधिकार, सशक्तिकरण, असमानता, समाज, संवैधानिक, प्रशासन।*

‘‘किसी समुदाय की प्रगति महिलाओं की प्रगति से आंकी जाती है।’’ –डॉ. बी. आर. अम्बेडकर[1]

महिला सशक्तिकरण की अवधारणा सर्वप्रथम 1985 में नैरोबी में इंटरनेशनल वूमेन कॉंफ्रेंस में सामने आयी। महिला सशक्तिकरण से अभिप्राय इस प्रकार के वातावरण से है जिसमें महिला स्वयं के व्यक्तित्व विकास के लिए स्वतंत्र निर्णायक स्थिति में हो। महिलाओं के उच्च पद पर आसीन होने पर उसके साथ लिंग के आधार पर भेदभाव न हो। महिला सशक्तिकरण के लिए शिक्षा मील का पत्थर है, शिक्षित होकर ही महिलाएं चुनौतियों का सामना व परम्परागत भूमिका में परिवर्तन कर अपने जीवन स्तर को बदल सकती हैं। यदि भारत को महाशक्ति बनना है तो महिला शिक्षा को प्राथमिकता के केन्द्र में रखना होगा।

ग्लोबल जेंडर गैप रिपोर्ट 2020 के अनुसार भारत की रैंक 112 है। आर्थिक भागीदारी और अवसर के आधार पर 149, शैक्षणिक उपलब्धि के आधार पर 112, स्वास्थ्य व उत्तर जीवितता के आधार पर 150 व राजनीतिक सशक्तिकरण के आधार पर रैंक 18 है।[2] भारत में महिलाओं की स्थिति वैश्विक दौर में अच्छी नहीं है जबकि महिला सशक्तिकरण के लिए राष्ट्रीय महिला आयोग, राज्य महिला आयोग, महिला एवं बाल विकास मंत्रालय कार्यरत हैं। संविधान के प्रावधान महिलाओं को समान अधिकारों की पुष्टि करते हैं। केन्द्र सरकार ने राष्ट्रीय महिला नीति–2001 व महिला नीति 2016 (ड्रॉफ्ट) जारी की।

महिला सशक्तिकरण के लिए संवैधानिक प्रावधान

संविधान की प्रस्तावना में स्त्री व पुरूष सभी को सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक न्याय के आधार पर व्यक्ति को

 ISSN 2277-5587

गरिमा के साथ जीने व समान अवसर का उल्लेख है। संविधान का अनुच्छेद 14 महिलाओं व पुरूषों सभी को विधि के समक्ष समानता, अनुच्छेद 15(1) लिंग के आधार पर भेदभाव निषेध, अनुच्छेद 15(3) राज्य को महिलाओं के लिए सकारात्मक कदम उठाने के लिए प्रावधान, अनुच्छेद 16 महिलाओं को रोजगार के समान अवसर, अनुच्छेद 39(a) महिलाओं को निःशुल्क विधिक सहायता, स्त्री पुरूष को आजीविका के पर्याप्त साधन की सुरक्षा, अनुच्छेद 39(d) समान कार्य के लिए समान वेतन, अनुच्छेद 42 काम की मानवीय दशाओं को सुनिश्चित करने के लिए प्रसूती सहायता, अनुच्छेद 46 महिलाओं के लिए शिक्षा व आर्थिक हितों के लिए व्यवस्था, अनुच्छेद 47 में पोषाहार व लोक स्वास्थ्य को सुधारना, अनुच्छेद 51(A)(e) महिला की गरिमा के विरूद्ध प्रथा पर प्रतिबंध इत्यादि का प्रावधान करते हैं।[3]

पूर्व की महिला नीति व प्रयास

राष्ट्रीय योजना (1976) स्वास्थ्य, परिवार नियोजन, पोषण, शिक्षा, रोजगार, कानून और सामाजिक कल्याण के क्षेत्रों पर विशेष ध्यान देने के साथ संयुक्त राष्ट्र 'वर्ल्ड प्लान ऑफ एक्शन फॉर वूमेन' पर आधारित दिशा–निर्देश प्रदान करते हुए, महिलाओं के लिए कार्ययोजना निर्माण व कार्यान्वयन के लिए लागू की गयी। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 महिलाओं को शैक्षिक अवसर प्रदान करने पर केंद्रित थी। 73 वें व 74 वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम से स्थानीय निकायों में महिलाओं की एक तिहाई भागीदारी सुनिश्चित की।

भारत सरकार ने महिलाओं की उन्नति, समावेशी विकास, सशक्तिकरण और महिलाओं के खिलाफ सभी प्रकार के भेदभाव को समाप्त करने के उद्देश्य से 2001 में राष्ट्रीय महिला नीति जारी की। 2016 में 'सामाजिक रूप से समावेशी अधिकार–आधारित दृष्टिकोण' के पालन के लिए राष्ट्रीय महिला नीति का ड्राफ्ट जारी किया। भारत संयुक्त राष्ट्र के कई सम्मेलन 'प्राइमरिली कंवेन्शन ऑन एलिमिनेशन ऑफ ऑल फॉर्म्स ऑफ डिस्क्रिमिनेशन अगेंस्ट वूमेन (CEDAW), 'बीजिंग प्लेटफॉर्म फॉर एक्शन एंड कन्वेंशन ऑन राइट्स ऑफ द चाइल्ड' के लिए एक हस्ताक्षरकर्ता भी है।

महिला सशक्तिकरण के लिए प्रमुख अधिनियम

भारत सरकार ने समय–समय पर कई कानून लागू किये हैं, जैसे प्रसूति प्रसुविधा अधिनियम 1961, दहेज निषेध अधिनियम 1961 (संशोधन 1986), समान पारिश्रमिक अधिनियम 1976, बाल विवाह निरोधक अधिनियम 2006, प्रसव पूर्व निदान तकनीक अधिनियम 1994, राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम 1990, घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम 2005, कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न (निवारण, निषेध व निदान) अधिनियम 2013। बच्चों का लैंगिक अपराधों से सरंक्षण अधिनियम (POCSO) 2012 लागू किया।

महिला शिक्षा की स्थिति

2011 में महिलाओं का साक्षरता प्रतिशत 65.46 था, यह पुरूष साक्षरता 82.14 प्रतिशत से 16.68 प्रतिशत कम है। राजस्थान में महिला साक्षरता का प्रतिशत 52.7 है।[4] अन्य देशों में, ब्राजील में 97.9 प्रतिशत, रूस में 99.8 प्रतिशत, नाइजीरिया में 86.5 प्रतिशत, चीन में 98.5 प्रतिशत महिलाएं साक्षर हैं।[5] भारत में प्रारम्भिक स्तर तक 4.74 प्रतिशत व माध्यमिक स्तर तक 17.3 प्रतिशत लड़कियाँ पढ़ाई छोड़ देती हैं।[6] भारत में महिला शिक्षा की स्थिति दयनीय है।

उच्च शिक्षा में महिलाएं

गांवों में स्नातक महिलाएं 2.2 प्रतिशत व शहरों में 13 प्रतिशत हैं।[7] 2018–19 में उच्च शिक्षा में एस.टी. –एस.सी. की पंजीकृत महिलाएं क्रमशः 16.5 प्रतिशत व 23.3 प्रतिशत थी।[8] ऑल इंडिया सर्वे ऑफ हायर एजुकेशन रिपोर्ट 2018–19 के अनुसार देश में शिक्षकों की कुल संख्या 14,16,299 है, जिनमें से लगभग 42.2 प्रतिशत महिला शिक्षक हैं। सबसे कम लिंगानुपात बिहार में है जहाँ केवल 21.03 प्रतिशत, दूसरे स्थान पर झारखंड जहाँ 30.2 और उत्तर प्रदेश में 32.3 प्रतिशत महिला शिक्षक हैं। प्रति 100 पुरूष शिक्षकों पर महिलाओं का अनुपात–प्रोफेसर 37, एसोसिएट प्रोफेसर 58 और सहायक प्रोफेसर 74 है। देश में महिलाओं के लिए 16 विश्वविद्यालय हैं, राजस्थान 3, तलिनाडु 2, आंध्रप्रदेश, आसाम, बिहार, दिल्ली, उड़ीसा, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र, उत्तराखंड व पश्चिमी बंगाल में एक–एक विश्वविद्यालय है।[9]

लिंगानुपात

भारत में लिंगानुपात 940 महिला प्रति हजार पुरूष

वैश्विक औसत लिंगानुपात 990 से बहुत कम है। 201 देशों के विश्व लिंगानुपात में नेपाल 1, चीन 3, रूस 9, श्रीलंका 22 व भारत 189वे स्थान पर है।[10] केरल में लिंगानुपात 1058 एवं हरियाणा में 861 है। ग्रामीण भारत में लिंगानुपात 946 एवं शहरों में 900 ही रह गया है। राजस्थान में 0–6 वर्ष में लिंगानुपात 888, इसी आयु वर्ग में ग्रामीण में 892, शहरों में 874 है।[11] आंकड़ा स्पष्ट करता है कि कन्या भ्रूण हत्या शिक्षित समाज व शहरों में सर्वाधिक हो रही है। यदि इस पर रोक नहीं लगी तो आने वाले वर्षो में भयावह स्थिति हो सकती है, महिला–पुरूष का प्राकृतिक संतुलन बिगड़ जाएगा। हमें इन सभी घटकों पर गहन चिन्तन करना चाहिए ताकि भारत के लिंगानुपात को बेहतर किया जा सके।

महिलाओं के विरूद्ध अपराध

देश में महिलाओं के विरूद्ध लगभग 1.5 लाख अपराध सालाना दर्ज किए जाते हैं। राष्ट्रीय महिला आयोग को 2020 में घरेलू हिंसा के 5297 व दहेज की 3788 शिकायतें प्राप्त हुई।[12] नेशनल क्राइम रिकार्ड ब्यूरो के अनुसार 2019 में महिलाओं के विरूद्ध बलात्कार के 32260, महिलाओं के अपहरण के 72780, दहेज हत्या के 8233, दहेज सम्बन्धी अत्याचार के 13674 के मामले दर्ज हुए। 2019 में देश में महिलाओं के विरूद्ध कुल 405861 मामले दर्ज हुए। महिलाओं के विरूद्ध अपराध में उत्तरप्रदेश के बाद राजस्थान का दूसरा स्थान है। राजस्थान बलात्कार के मामलों में देश में प्रथम है जहाँ 2019 में बलात्कार के 6051 केस दर्ज हुए।[13] भारत महिलाओं के लिए विश्व में 9वां सबसे असुरक्षित देश है।[14] नेशनल क्राइम रिकार्ड ब्यूरो रिपोर्ट 2019 के अनुसार भारत में महिलाओं के साथ प्रति 16 मिनट में बलात्कार होता है। महिलाओं के लिए सबसे असुरक्षित शहरों में दिल्ली, जयपुर, मुम्बई, हैदराबाद व इन्दौर हैं।

खाप पंचायत व ऑनर किलिंग विवाद का प्रभाव हरियाणा, पश्चिमी उत्तरप्रदेश और राजस्थान के कुछ क्षेत्रों में है जहाँ अंतर्जातीय विवाह के मामले में झूठी शान के लिए ऑनर किलिंग की शिकार महिलाएं होती हैं। महिलाओं का यौन शोषण, वेश्यावृत्ति में घसीटना, विदेशों में बेचना, लड़कियों की खरीद फरोख्त इत्यादि भारत के समाचार पत्रों के लिए सामान्य घटनाएं हैं।

महिलाओं का स्वास्थ्य

महिलाओं का स्वास्थ्य जैविक, सामाजिक व सांस्कृतिक घटकों से प्रभावित होता है जैसे–कम आयु में शादी, निरक्षरता, अशिक्षा, गरीबी, कुपोषण, असुरक्षित गर्भपात, प्रदूषित वातावरण, रोजगार के न्यूनतम अवसर, यौन प्रताड़ना, घरेलू हिंसा, लैंगिक असमानता, रूढ़िवादी प्रथाएं, लड़का व लड़की की परिवेश में भेदभाव, अंधविश्वास, अवैज्ञानिक जीवन शैली व अपर्याप्त स्वास्थ्य सेवाएं। सही कहा गया है कि निरक्षर मां के बच्चे साक्षर मां के बच्चे की तुलना मे दो बार कुपोषित होते हैं। WHO के अनुसार मातृत्व मृत्यु में भारत की 2017 में प्रति 10 हजार पर मातृत्व मृत्यु दर 122 थी और विश्व में 130वीं रैंक थी। भारत में मातृत्व मृत्यु दर यूएसए से 57 गुना अधिक व पाकिस्तान व श्रीलंका की स्थिति हमसे अच्छी है।[15] नेशनल हेल्थ प्रोफाइल (सेन्ट्रल ब्यूरो ऑफ हेल्थ इंटेलीजेंस) के अनुसार 10 हजार की जनसंख्या पर 37.6 फिजीशियन और नर्स हैं। नेशनल फेमिली हेल्थ सर्वे–3 के अनुसार 2019–20 में 55.3 प्रतिशत महिलाएं एनीमिया से ग्रस्त थी, गर्भवती महिलाओं में यह प्रतिशत 57.9 था। भारत का 75 प्रतिशत स्वास्थ्य सेवा बुनियादी ढांचा शहरी क्षेत्रों में स्थित है और सकल घरेलू उत्पाद का केवल 1.3 प्रतिशत स्वास्थ्य सेवाओं के लिए है, जो कि वैश्विक औसत 6 प्रतिशत से काफी कम है। 2017 में सीएजी रिपोर्ट में पाया गया कि सर्वेक्षण में शामिल 514 पीएचसी में से 161 में प्रसव के लिए उचित सुविधाएं नहीं थीं। NFHS–4 (2015–2016) के अनुसार 2015 में घर में प्रसव 20.8 प्रतिशत, सरकारी अस्पताल में 52.1 व निजि अस्पताल में 27.1 प्रतिशत प्रसव हुए।[16] NFHS-4 (2014–2015) के अनुसार अनुसूचित जनजाति में संस्थागत प्रसव 68.1 व अनुसूचित जाति में 78.4 प्रतिशत है। 2018 में मेडिकल जर्नल लांसेट द्वारा जारी हेल्थकेयर एक्सेस एंड क्वालिटी इंडेक्स में भारत स्वास्थ्य देखभाल की गुणवत्ता और पहुंच के मामले में 195 देशों में से 145 वें स्थान पर है जो कि चीन (48), श्रीलंका (71), बांग्लादेश (133) जैसे देशों की तुलना में बहुत कम है।

महिलाओं का विधायिका में प्रतिनिधित्व

17वीं लोकसभा में महिलाओं की संख्या 78 (14.3 प्रतिशत) अब तक की सर्वाधिक संख्या है। राज्य सभा में महिलाएं 25 (10.2 प्रतिशत) है। पहली बार संसद में महिला सदस्यों का आँकड़ा 100 से अधिक 103 हुआ है।[17] अब तक राज्य सभा में महिला सदस्यों का औसत 9.5 प्रतिशत रहा है, 2014 में यह औसत 12.7 प्रतिशत था। इंटर पार्लियामेंट यूनियन के

अनुसार महिला सांसदों का विश्व औसत 25.5 प्रतिशत है।[18] राष्ट्रीय संसद में महिलाओं की रैंकिंग के मामले में भारत का विश्व में 148वाँ स्थान है।[19] वर्तमान केन्द्रीय मंत्रीपरिषद में दो केबिनेट मंत्री सहित 8.9 प्रतिशत महिला सदस्य हैं। 1952 से 2021 तक कुल 75 महिला केबिनेट मंत्री रही हैं। राजस्थान सरकार के मत्रीपरिषद में 21 में से एक सिर्फ एक महिला राज्यमंत्री है।[20] भारत में अब तक 16 महिला मुख्यमंत्री रह चुकी हैं, तमिलनाडु एकमात्र एसा राज्य है जहाँ तीन मुख्यमंत्री रही। 2019 में भारत में कुल 4896 सांसद/विधायकों में से 418 (9 प्रतिशत) महिला थी।[21]

विधानसभाओं में महिला सदस्यों की स्थिति

क्र. सं.	राज्य	निवार्चन वर्ष	कुल सीट	महिला सदस्य	प्रतिशत
1	छत्तीसगढ़	2018	90	13	14.44
2	पश्चिमी बंगाल	2016	280	39	13.92
3	झारखंड	2019	81	10	12.34
4	राजस्थान	2018	200	24	12.00
5	दिल्ली	2020	70	08	11.42
6	बिहार	2020	243	26	10.69
7	उत्तरप्रदेश	2017	398	42	10.55
8	हरियाणा	2019	90	09	10.00
9	सिक्किम	2019	32	03	09.37
10	तमिलनाडु	2016	225	21	09.33
11	उड़ीसा	2019	140	13	09.28
12	मध्यप्रदेश	2018	230	21	09.13
13	महाराष्ट्र	2019	288	24	08.33
14	आन्ध्रप्रदेश	2019	175	14	08.00
15	गुजरात	2017	182	13	07.14
16	उत्तराखंड	2017	70	05	07.14
17	आसाम	2016	126	08	06.35
18	हिमाचल प्रदेश	2017	68	04	05.88
19	केरल	2016	140	08	05.71
20	पंजाब	2017	117	06	05.12
21	मेघालय	2018	59	03	05.08
22	तेलंगाना	2018	118	06	05.04
23	गोवा	2017	40	05	05.00
24	अरूणाचलप्रदेश	2019	60	03	05.00
25	त्रिपुरा	2017	60	02	05.00
26	मणिपुर	2017	60	02	03.33
27	जम्मू–कश्मीर	2014	87	02	02.29
28	कर्नाटक	2018	223	07	03.13
29	नागालेंड	2018	59	00	00.00
30	पुदुचेरी	2016	30	04	13.33

स्रोतः निर्वाचन आयोग, भारत सरकार, https://eci.gov.in/statistical-report/statistical-reports/

पड़ोसी देश पाकिस्तान के संविधान के अनुच्छेद 51 व 106 के अनुसार नेशनल असेम्बली में 342 सीटों में से 60 महिलाओं व 10 अल्पसंख्यकों के लिए आरक्षित व राज्य विधायिका में महिलाओं व गैर मुस्लिमों के लिऐं सीटें आरक्षित हैं।[22]

उल्लेखनीय है कि 73वें व 74वें संविधान संशोधन के फलस्वरूप महिलाओं को ग्रामीण व शहरी निकायों में एक तिहाई आरक्षण दिया है। संसद में 33 प्रतिशत महिला आरक्षण बिल एक साहसिक कदम है लेकिन बिल राज्यसभा में अटका पड़ा है। राजनेताओं की इच्छा शक्ति के अभाव के कारण महिलाओं को संसद में पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं मिल पा रहा है। बिल के उत्साही समर्थकों में से एक, तृणमूल कांग्रेस ने 2019 के लोकसभा चुनावों में महिलाओं के लिए 40 प्रतिशत सीट आरक्षित करके एक कदम आगे बढ़ाया था।[23] महिलाओं के विधायिका में पर्याप्त प्रतिनिधित्व के लिए अभी बहुत लंबा रास्ता तय करना है।

राजकीय सेवा व प्रशासन में महिलाएं

लोकसभा में दिए आंकड़ों के अनुसार 2013 से लेकर 2017 तक सिविल सेवाओं में महिलाओं का प्रतिशत 19.67 से 24 प्रतिशत रहा।[24] अक्टूबर 2019 के आँकड़ों के अनुसार केंद्र सरकार में 88 सचिव रैंक के अधिकारियों में से केवल 11 महिलाएं थी, इनमें से एक–दो के पास ही महत्वपूर्ण विभाग थे। सरकारी आंकड़ों के अनुसार जून 2019 तक केंद्र सरकार में संयुक्त सचिव स्तर पर और इससे ऊपर काम करने वाले 700 अधिकारियों में से केवल 134 (19.14 प्रतिशत) महिलाएं थीं। 2020 की स्थिति के अनुसार केन्द्र शासित प्रदेशों सहित राज्यों में 36 मुख्य सचिवों में से सिर्फ पंजाब में मुख्य सचिव महिला थी।[25]

राज्यों में नियुक्त हुई महिला मुख्य सचिवों की सूची

क्र.सं.	नाम	राज्य	नियुक्ति वर्ष
1	पी पी त्रिवेदी	आसाम	1985
2	शेरिंग वाई दास	आसाम	2018
2	रिंचेन ओग्मू	सिक्किम	2013
3	निर्मला बुच	मध्यप्रदेश	1991
4	लक्ष्मी सिंह	झारखंड	2003
5	मीनाक्षी आनंद	हरियाणा	2005
6	प्रोमिला इस्सर	हरियाणा	2007
7	उर्वशी गुलाटी	हरियाणा	2009
8	शकुन्तला जाखू	हरियाणा	2014
9	केशनी आनंद अरोड़ा	हरियाणा	2019
10	पद्मा रामचंद्रन	केरल	1990
11	लिजी जेकब	केरल	2006
12	लीला गंगाधरन	केरल	2009
13	नलिनी नेटो	केरल	2017
14	एल तोचोंग	मिजोरम	2012
15	लालमाल्सवमा	मिजोरम	2014
16	कुशल सिंह	राजस्थान	2009
17	टेरेसा भट्टाचार्य	कर्नाटक	2000
18	मालती दास	कर्नाटक	2006
19	रत्ना प्रभा (एससी)	कर्नाटक	2018
20	लक्ष्मी प्रनेश	तमिलनाडु	2002
21	एस मालती	तमिलनाडु	2010

22	शीला बालकृष्णन	तमिलनाडु	2013
23	गिरिजा वैद्यनाथन	तमिलनाडु	2016
24	राजिन्द्र भट्टाचार्य	हिमाचल प्रदेश	2002
25	आशा स्वरूप	हिमाचल प्रदेश	2008
26	डॉ. मंजुला सुब्रमन्यम	गुजरात	2007
27	नीलम साहनी	आंध्र प्रदेश	2019
28	विनी महाजन	पंजाब	2020

स्रोतः

https://gad.assam.gov.in/information-services/honble-governors-honble-chief-ministers-and-chief-secretaries-of-assam

http://www.babusofindia.com/2013/03/sikkims-women-bride-price-rinchen-ongmu.html

https://www.mpinfo.org/MPinfoStatic/English/whoiswho/cslist.asp

https://www.telegraphindia.com/jharkhand/jharkhands-first-woman-chief-secretary-laxmi-singh-is-no-more/cid/1686973

http://csharyana.gov.in/roll_of_honour.htm

https://gad.kerala.gov.in/index.php/chief-secretaries]

https://www.business-standard.com/article/news-ians/new-chief-secretary-for-mizoram-114110100458_1.html

https://rajasthan.gov.in/Government/ChiefSecretary/Pages/FormerChiefSecretary.aspx

https://www.thehindu.com/news/national/karnataka/ratna-prabha-is-new-chief-secretary/article21041059.ece

https://www.asianage.com/india/politics/231216/after-income-tax-raids-tamil-nadu-axes-chief-secretary.html

https://hillpost.in/2008/06/ahsa-swaroop-takes-over-as-new-chief-secretary-of-himachal-pradesh/5638/

https://gad.gujarat.gov.in/cs-list.htm

https://ndmindia.mha.gov.in/chief-secretaries-of-all-states#

https://punjab.gov.in/chief-secretary/

राज्यों में नियुक्त महिला डीजीपी की सूची

क्र.सं.	नाम	राज्य	नियुक्ति वर्ष
1	कंचन भट्टाचार्य	उत्तराखंड	2004
2	लतिका सरन	तमिलनाडु	2010
3	नीलमणि राजू	कर्नाटक	2017
4	एस सुंदरी नंदा	पुदुचेरी	2018
5	आर श्रीलेखा	केरल	2020

स्रोतः

https://thewire.in/women/indias-first-woman-dgp-kanchan-chaudhary-bhattacharya-dies
https://www.deccanherald.com/content/46650/letika-saran-becomes-first-woman.html
https://bangaloremirror.indiatimes.com/bangalore/others/karnataka-gets-its-first-woman-dgp-neelamani-raju/articleshow/61374400.cms

https://www.thehindu.com/news/cities/puducherry/puducherrys-first-woman-dgp-assumes-office/article24315608.ece

https://www.newindianexpress.com/good-news/2020/may/28/meet-r-sreelekha-keralas-first-woman-dgp-2148851.html

भारत की प्रथम महिला डीजीपी कंचन चौधरी भट्टाचार्य थी। अन्य सभी डीजीपी उस राज्य की प्रथम डीजीपी हैं। 29 पुलिस महानिदेशकों में से 2020 में कर्नाटक में एकमात्र डीजीपी महिला थी।[26] महिला मुख्य सचिवों व डीजीपी के बहुत कम उदाहरण देखने को मिलते हैं। स्वतंत्र भारत में केबिनेट सचिव, आरबीआई गवर्नर, सीबीआई, आईबी, रॉ इत्यादि के चीफ पद पर एक भी महिला की नियुक्त नहीं हुई है।

1 जनवरी 2020 की स्थिति के अनुसार देश में 10.3 प्रतिशत महिला पुलिस कार्मिक हैं, राज्यों में 7.3, और पेरा मिलिटरी फोर्स में महिलाओं का प्रतिशत 2.98 है। एनआईए के पास 796 की कुल संख्या में सिर्फ 37 (4.64 प्रतिशत) महिला अधिकारी हैं, सीबीआई में विभिन्न शाखाओं में 475 महिला अधिकारी हैं जो कि 1 जनवरी, 2020 तक 5,964 कर्मियों का 7.96 प्रतिशत है।[27] मार्च 2021 की स्थिति के अनुसार दिल्ली महानगर में 178 पुलिस स्टेशनों में से महिला थाना प्रभारियों की संख्या शून्य व महिला थानों में भी पुरूष एसएचओ ही नियुक्त थे।[28]

भारतीय सेना में 4 प्रतिशत, आईआईटी संस्थानों में 7–10 प्रतिशत, आईआईएम संस्थानों में 20–40 प्रतिशत व इसरो में 14,246 कार्मिकों में से 20 प्रतिशत महिला हैं। भारतीय विदेश सेवा में 8 प्रतिशत व रेलवे में 7 प्रतिशत महिलाएं हैं। 88 प्रतिशत महिलाएं ग्रप सी में हैं। देश में सरकारी नौकरियों में महिलाएं 15 प्रतिशत हैं।[29] संयुक्त राष्ट्र के अनुसार रिसर्च डवलपमेंट संस्थानों में कार्यरत 2,80,000 वैज्ञानिक, इन्जीनियर, तकनीकी विशेषज्ञों में 14 प्रतिशत 39,389 ही महिलाएं हैं जबकि इसमें वैश्विक प्रतिशत 28.4 है।[30]

मार्च 2020 की स्थिति के अनुसार अनुसूचित वाणिज्यक बैंकों में अधिकारी वर्ग में 22.77, क्लर्क 32, अधीनस्थ 14 प्रतिशत सहित कुल 24 प्रतिशत महिलाएं कार्यरत हैं। मार्च 2019 में अनुसूचित वाणिज्यक बैंकों में महिला खाताधारक 32.8 प्रतिशत और इनमें जमा पूँजी 32.5 प्रतिशत थी।[31]

प्रशासनिक, पुलिस व अन्य सेवाओं में महिलाओं की संख्या से ज्यादा महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि महिला अधिकारियों को कितनी महत्वपूर्ण जिम्मेदारी दी जाती है।

न्यायपालिका में महिला

हाईकोर्ट व सुप्रीम कोर्ट में मात्र 11 प्रतिशत महिला जज हैं। सुप्रीम कोर्ट में प्रथम महिला जज अक्टूबर 1989 में नियुक्त हुई ।

सुप्रीम कोर्ट में अब तक महिला जजों की सूची

क्र.सं	नाम	कार्यकाल	
1	फतिमा बीबी	06.10.1989	29.04.1992
2	सुजाता वी मनोहर	08.11.1994	27.08.1999
3	रूमापाल	28.01.2000	02.06.2006
4	ज्ञानसुधा मिश्र	30.04.2010	27.04.2014
5	रंजना प्रकाश देसाई	13.09.2011	29.10.2014
6	आर. भानुमति	13.08.2014	19.07.2020
7	इंदु मल्होत्रा	27.04.2018	13.03.2021
8	इंदिरा बनर्जी	07.08.2018	23.09.2022

स्रोतः https://en.wikipedia.org/wiki/List_of_female_judges_of_the_Supreme_Court_of_India

सुप्रीम कोर्ट की वर्तमान में कुल स्वीकृत जजों की संख्या 34 है और सिर्फ एक महिला जज है। सुप्रीम कोर्ट के इतिहास में यह पहली बार वर्ष 2018 से 2020 के तक एक साथ तीन महिला जज रहीं। इंदु मल्होत्रा पहली जज थी जो सीधे बार काउन्सिल से नियुक्त हुई। दिनांक 01.04.2021 की स्थिति के अनुसार भारत में 25 हाईकोर्ट में कुल 1080 में से 77 जज ही महिलाएं हैं। जस्टिस हीमा कोहली देश में एकमात्र महिला चीफ जस्टिस, तेलंगाना हैं।

हाईकोर्ट में महिला जज

क्र.सं.	हाईकोर्ट का नाम	स्वीकृत संख्या	महिला जज	प्रतिशत
1	इलाहबाद	160	07	04.3
2	मद्रास	75	13	17.3
3	बॉम्बे	94	08	08.5
4	कलकत्ता	72	04	05.5
5	छत्तीसगढ़	22	02	09.0
6	दिल्ली	60	06	10.0
7	गोहाटी	24	01	04.1
8	गुजरात	52	05	09.6
9	पंजाब–हरियाणा	85	07	08.2
10	कर्नाटक	62	06	09.6
11	केरल	47	05	10.6
12	मध्यप्रदेश	53	02	03.7
13	तेलंगाना	24	02	08.3
14	आंध्रप्रदेश	37	03	08.1
15	जे.के.व लद्दाख	17	01	05.8
16	हिमाचल प्रदेश	13	01	07.6
17	झारखंड	25	01	04.0
18	उड़ीसा	27	01	03.7
19	राजस्थान	50	01	02.0
20	सिक्किम	03	01	33.3
21	मेघालय	04	00	00.0
22	त्रिपुरा	05	00	00.0
23	मणिपुर	05	00	00.0
24	उत्तराखंड	11	00	00.0
25	पटना	53	00	00.0
कुल	25	1080	77	7.1

स्रोतः– doj.gov.in (on 01-04-2021)

बिहार, उत्तराखंड, मेघालय, मणिपुर व त्रिपुरा में 2018 से एक भी महिला जज नहीं है। भारत में 672 जिला न्यायालय व 7 हजार अधीनस्थ न्यायालय हैं। द विधि सेंटर फॉर लीगल पॉलिसी इन इट्स रिपोर्ट ''टिल्टिंग द स्केल जेंडर इंबेलेंस इन लॉअर ज्यूडिशरी (2018)" के अनुसार अधीनस्थ न्याययलयों में महिला जजों की संख्या 27.6 प्रतिशत थी। इंडियन जस्टिस रिपोर्ट 2020 के अनुसार नवंबर 2019 तक अधीनस्थ न्यायालयों में महिला जज 30.1 प्रतिशत थी।[32] देश की आधी आबादी को न्यायिक प्रक्रिया व

भागीदारी से वंचित रखना न्यायसंगत नहीं कहा जा सकता है।

महिला रोजगार

भारत में 2018–19 में कामगार जनसंख्या का ग्रामीण महिला–पुरुष अनुपात 19:0::52:1 व शहरी अनुपात 14:5::52:7 था। ILO की ग्लोबल वेज रिपोर्ट 2018–19 में पाया कि 73 देशों के विस्तृत अध्ययन में भारत में महिला–पुरुष में औसत वेतनमान का अंतर सर्वाधिक 34.5 प्रतिशत है।[33]

जनवरी–मार्च 2019 व अप्रेल–जून 2019 तक सर्वे के अनुसार भारत में लोक निर्माण के अलावा अन्य कार्यों में प्रतिदिन औसत मजदूरी गांवों में महिला 190–199 रु, पुरुष 287–297 रु, शहरों में महिला 287–244 रु, पुरुष 358–368रु थी।[34] सांख्यिकी और कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय (MoSPI) रिपोर्ट में कहा गया है कि एक स्नातक महिला अपने पुरुष समकक्षों की तुलना में लगभग 24 प्रतिशत कम कमाती है। एक स्नातक पुरुष औसतन 805 रू प्रतिदिन जबकि महिला औसतन प्रतिदिन लगभग 609 रू कमाती है।[35]पुरुष से अधिक कार्य करने के बावजूद महिला को भुगतान की दरों में भेदभाव का सामना करना पड़ता है।

महिला एवं बाल विकास मंत्रालय

1985 में स्थापित महिला एवं बाल विकास विभाग को 2006 में मंत्रालय बनाया गया। यह भारत में महिला व बाल विकास के मामलों में नोडल एजेन्सी है जो सरकार व एनजीओ के साथ मिलकर महिलाओं व बच्चों के लिए नीति, योजना, कार्यक्रम, कानून/संशोधन विधान निमार्ण, निर्देशन और समन्वय करता है। ये कार्यक्रम सामान्य विकास कार्यक्रमों के साथ अनुपूरक या पूरक भूमिका निभाते हैं जैसे स्वास्थ्य, शिक्षा, ग्रामीण विकास इत्यादि। भारत में महिला विकास की निम्न योजनाएं अस्तित्व में हैं–

सरकार ने लैंगिक समानता को बढ़ावा देने के लिए फ्लैगशिप योजनाएं शुरू की हैं, जिसमें 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ, प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना (गरीबी रेखा से नीचे के घरों में महिलाओं को गैस कनेक्शन) और 2016 में शुरु की गई महिला–ई–हाट परियोजना एक ऑनलाइन मार्केटिंग अभियान है।[36] विधिक, पुलिस, स्वास्थ्य सेवाओं के लिए वन स्टेप सेंटर स्कीम, इन्दिरा गांधी मातृत्व सहयोग योजना, सबला (राजीव गांधी किशोरी सशक्तीकरण योजना), स्वाधार (कठिन परिस्थितियों में महिलाओं के लिए योजना), स्टेप स्कीम (महिलाओं को प्रशिक्षण व रोजगार कार्यक्रम के लिए सहायता), 2019 से शक्ति डेशबोर्ड, कामगार महिलाओं के लिए वूमेन होस्टल, उज्जवला (सेक्स व्यापार, वैश्यावृत्ति पर पाबंदी एवं पुनर्वास स्कीम), राज्य महिला सम्मान और जिला महिला सम्मान, अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस नारी शक्ति पुरस्कार, फैमिली काउन्सलिंग सेंटर स्कीम, जेन्डर बजट स्कीम, धनलक्ष्मी योजना, किशोरी शक्ति योजना, किशोरियों के लिए पोषक तत्व कार्यक्रम, राजीव गांधी राष्ट्रीय क्रेच स्कीम, स्वयं सहायता समूह योजना, स्वास्थ्य सखी योजना, राष्ट्रीय निर्भया कोष।

महिलाओं के कल्याण हेतु राज्यों द्वारा प्रयास

राजस्थान सरकार के महिला एवं बाल विकास विभाग द्वारा मुख्यमंत्री सात सूत्रीय महिला सशक्तिकरण योजना, संभाग स्तरीय रिसोर्स सेंटर, सामूहिक विवाहों हेतु अनुदान, जिला महिला सहायता समिति, महिला सुरक्षा सलाह केन्द्र, कलेवा योजना, महिलाओं को कम्प्यूटर बेसिक कोर्स का प्रशिक्षण योजना इत्यादि योजनाएं अस्तित्व में हैं।

महाराष्ट्र में अपंग, परित्यक्ता व आश्रयहीन महिलाओं को स्वरोजगार हेतु 'कामधेनु योजना', बिहार में 11 से 18 वर्ष की बालिकाओं के पोषण, शिक्षा तथा स्वास्थ्य में सुधार लाने के लिए 'किशोरी बालिका योजना', उत्तरप्रदेश में 18 से 35 वर्ष की आयु की अनुसूचित जाति की महिलाओं को प्रशिक्षित करके 500 रूपये प्रतिमाह देने के लिए 'स्वास्थ्य सखी योजना', हरियाणा में एस.टी.–एस.सी. की नवजात बालिकाओं के लिए 'अपनी बेटी अपना धन' योजना द्वारा 2500 रूपये सरकार द्वारा इंदिरा गांधी विकास पत्र के माध्यम से निवेश और पहले बच्चे लड़की के जन्म पर 500 रूपये प्रतिमाह 'देवीरुपक योजना', आंध्रप्रदेश में बालिका संरक्षण के लिए बालिकाओं को माध्यमिक स्तर तक शिक्षित करना व 18 वर्ष के बाद ही उसका विवाह सुनिश्चित करना।

मध्यप्रदेश की आदिवासी महिलाओं के कल्याण हेतु संचालित 'पंचधारा योजना' इसमें 5 उपयोजनाएं शामिल हैं–वात्सल्य योजना, ग्राम्य योजना, आयुष्मति योजना, सामाजिक सुरक्षा पेंशन योजना, कल्पवृक्ष योजना। मध्यप्रदेश में ग्रामीण इंजीनियर योजना से गांवों में महिलाओं को वरीयता देते हुए इंजीनियर उपलब्ध करना।

महिला सशक्तिकरण में बाधक तत्व

परंपरागत रूढ़िवादी समाज– महिला सशक्तिकरण की बाधा में भारतीय समाज का रुढिवादी और परम्परावादी होना मुख्य है। समाज स्त्री को घरेलू कार्यों तक ही सीमित देखता आया है और स्त्री को सिर्फ घर व घरवालों की देखभाल करने वाली भूमिका में ही देखना चाहता है। स्त्री का घर से बाहर निकलना, पढ़ने या नौकरी करने जाना रुढिवादियों को अखरता है। इसी कारण महिलाएं घर की देखभाल करती करती घर में कैदी बनकर रह गयी। स्त्री को शारीरिक, बौद्धिक व मानसिक विकास का स्वस्थ पर्यावरण न पहले मिलता था न आज मिलता है। कम उम्र में शादी से महिला कुपोषण की शिकार व कार्यबोझ के कारण स्वयं के विकास पर ध्यान नहीं देती। स्त्री से हर जगह त्याग की अपेक्षा की जाती है इसलिए स्त्री पढ़ने–लिखने, नौकरी इत्यादि की अपेक्षा नहीं करती।

अशिक्षाः महिला के आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक रूप से पिछड़े होने का एकमात्र कारण अशिक्षा है। शिक्षित होने व साक्षर होने में बहुत अन्तर है। तकनीकी शिक्षा के युग में अब महिला के सिर्फ साक्षर होने से महिला अपने अधिकारों की रक्षा व आर्थिक–सामाजिक विकास नहीं कर सकती। हम अभी 65–70 प्रतिशत साक्षरता के आंकड़े में महिला विकास ढूंढ़ रहे हैं। साक्षर या शिक्षित होने से आगे हम बौद्धिक व तार्किक होने के बारे में नहीं सोच रहे। सूचना व प्रौद्योगिकी के युग में अब प्रश्न यह होना चाहिए कि कितने लोग कम्प्यूटर साक्षर व टेक्नो–फ्रेंडली हैं।

अंधविश्वास– समाज में गहराई तक जमा हुआ अंधविश्वास हमें अंधा बना रहा है। भारत पारंपरिक समाज रहा है जो पुरानी मान्यताओं और चमत्कारों पर विश्वास करता है। कई महिलाओं द्वारा अपनी जीभ काटकार देवी को चढ़ाने की खबरें अखबार में छपती रहती हैं। बुरी नजर, किसी के शरीर में देवी–देवता, भूत व आत्मा का प्रवेश, पुत्र प्राप्ति व इलाज के लिए तांत्रिक–बाबाओं के चक्कर, कालसर्पदोष, साढ़ेसाती, ग्रहों का प्रभाव, टोने–टोटके, मासिक धर्म से महिला अपवित्र, लड़की का मांगलिक होना अशुभ, गंगा स्नान से पाप धोना, धार्मिक स्थलों पर तालाब–नदी में सिक्के डालना, सांप को देवता मानकर पूजना व दूध पिलाना, तंत्र–मंत्र शक्ति से सांप का जहर निकालना, पीपल पर भूत का निवास, कौए को पूर्वज मानकर भोजन, नवजात बच्चे को माँ का पहला गाढ़ा दूध नहीं पिलाना, निश्चित दिन–वार के अनुसार कार्य करना, शकुन–अपशकुन, पाप–पुण्य, पवित्र–अपवित्र, स्वर्ग–नरक, पिछले जन्म का फल, डांकण, चुड़ैल इत्यादि मान्यताएं समाज में आम दिनचर्या का हिस्सा हैं जिनका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है। सामान्यतः महिलाएं इन परम्पराओं का बिना वैज्ञानिक परीक्षण के चुपचाप पालन करती हैं। कई बाबा व प्रवचक गम्भीर आरोपों में जेल में हैं, रोज नए बाबा नए फ्लेवर में आते हैं और महिलाओं की आस्था का दोहन करते हैं। महिलाएं इन बाबाओं के चंगुल में जल्दी फंसती हैं। अधिकांश महिलाएं अंधविश्वास में समय, श्रम व धन नष्ट कर रही हैं।

सुझाव

- हमें हमारी शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन करके शिक्षक व विद्यार्थी दोनों ही रुपों में महिला को केन्द्र में रखना होगा। शिक्षण–अधिगम वैज्ञानिक दृष्टिकोण आधारित होना चाहिए। सुदूर स्थानों पर तकनीकी, कम्प्यूटर शिक्षा, इंटरनेट सेवा व गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा की व्यवस्था करनी चाहिए। बौद्धिक जागृति के लिए महिलाएं सूचनाओं से लैस होनी चाहिए।
- महिलाओं को रोजगार परक शिक्षा देने के साथ व्यापार कौशल प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।
- विभिन्न राज्यों में स्कूल शिक्षा, कॉलेज शिक्षा, तकनीकी शिक्षा व शोध कार्य के लिए महिलाओं को निशुल्क सुविधा व छात्रवृत्ति दी जानी चाहिए।
- अंधविश्वास, अंधश्रद्धा, परम्परागत अवैज्ञानिक रूढ़ियों–रीतिरिवाजों के जंजाल से महिलाओं को बाहर निकालने के लिए हर स्कूल, गांव, ढांणी, कस्बों में वैज्ञानिक शिक्षा व वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रचार–प्रसार करना चाहिए।
- स्वास्थ्य की दृष्टि से स्वास्थ्य जांच, प्रसव की सुविधाएं व संस्थागत प्रसव के लिए सरकार को प्रत्येक गांव में पर्याप्त स्टाफ, नर्स, कम्पाउण्डर व डॉक्टरों की व्यवस्था के साथ चिकित्सालय की स्थापना करनी चाहिए।

महिलाओं के लिए सरकार को निरंतर स्वास्थ्य जांच शिविर लगाने चाहिये।

- लिंगानुपात को सामान्य करने के लिये सरकार को बेटी के जन्म पर विशेष प्रोत्साहन योजना बनानी चाहिए ताकि स्वयं बेटी व माता–पिता सभी लाभान्वित हो सकें।
- प्रत्येक जिले में महिला थाने व प्रत्येक थाने में महिला डेस्क होनी चाहिए। छात्राओं व नौकरी पेशा महिलाओं की सहायता के लिए अलग से हेल्पलाईन–आपातकाल नम्बर हाने चाहिये। महिला विरूद्ध अपराधों के मामले में समय पर कोर्ट ट्रायल पूरी हो ताकि समय पर न्याय मिले।
- महिलाओं का राजकीय सेवाओं, प्रशासन व पुलिस प्रशासन में पर्याप्त प्रतिनिधित्व होना चाहिए।
- राजकीय सेवाओं में महिलाओं के लिए स्पष्ट तबादला नीति होनी चाहिए। महिला पर परिवार व राजकीय सेवा का दोहरा दायित्व होता है एसे में उनके पदस्थापन में उनकी सुविधा को वरीयता दी जानी चाहिए।
- महिलाओं को उनकी जनसंख्या के अनुपात में राजनीतिक प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए। एक तिहाई महिला आरक्षण बिल लोकसभा में पारित होना चाहिए ताकि महिलाएं राष्ट्रीय नीति व विधि निर्माण में अपनी भूमिका बढा सके।
- उच्च न्यायालयों, सर्वोच्च न्यायालय व अधिनस्थ न्यायालयों में महिलाओं का पर्याप्त प्रतिनिधित्व होना चाहिए।
- केन्द्र व राज्य के बजट में महिलाओं के लिए आवंटित राशि बढानी चाहिए तथा समस्त महिला विकास योजनाओं को समन्वित करके अम्बरेला पद्धति से कार्य योजनाओं को लागू करना चाहिए।
- राष्ट्रीय महिला आयोग को संवैधानिक दर्जा दिया जाए। इसके अध्यक्ष पद पर नियुक्ति राजनीतिक न होकर पूर्व महिला न्यायधीश को नियुक्त करना चाहिए ताकि राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की तरह राष्ट्रीय महिला आयोग भी प्रभावशील भूमिका निभा सके।

निष्कर्ष

संक्षेप में वैज्ञानिक दृष्टिकोण आधारित शिक्षा ही वह किंग पिन है जिस पर मनुष्य का विकास घूमता है। अतः जो महिला शिक्षित व जागरूक होगी उसमें सक्षमता स्वतः आ जाएगी। अगर महिला शिक्षित है तो न लिंग भेद होगा, न अत्याचार न अपराध तब महिला स्वयं निर्णायक की भूमिका में होगी। भारत की सरकार महिला नीति व अधिनियम और योजनाएं प्रथमदृष्ट्या आदर्शात्मक व सैद्धान्तिक प्रतीत होते है इन्हें वास्तविक धरातल पर सही तरीके से क्रियान्वित करने की आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1 *मणिकांचन, हिन्दी गृह पत्रिका, एमएमटीसी लिमिटेड, राजभाषा प्रभाग, कारपोरेट कार्यालय, नई दिल्ली पृ.सं. 402*

2. *http://www3.weforum.org/docs/WEF_GGGR_2020.pdf*

3. *भारत का संविधान*

4. *भारतीय जनगणना 2011, भारत सरकार*

5 *https://www.citypopulation.de/en/world/bymap/literacyratesfemales*

6 *https://www.thehindu.com/news/national/average-dropout-rate-of-girls-recorded-at-173-at-secondary-level-in-2018-19-wcd-ministry/article33761098.ece*

7. *Yasaswini, Y., Tharaka, U.B.B., &Bhagavanulu, D.V.S. (2017). Socio-economic Conditions of Rural Women – A Case Study. International Journal of Research and Scientific Innovation, 4(8), 52-53. Retrieved from https://www.rsisinternational.org/IJRSI/Issue45/52-53.pdf*

8. *AISHE-2018-19, HRD Ministry, Govt of India, http://aishe.nic.in/aishe/reports*

9. *AISHE-2018-19, HRD Ministry, Govt of India, http://aishe.nic.in/aishe/vreports*

10. *http://statisticstimes.com/demographics/countries-by-sex-ratio.php*

11 *https://www.census2011.co.in/sexratio.php*

12. *http://ncwapps.nic.in/frmReportNature.aspx?Year=2020*

13. *नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो–2019, गृह मंत्रालय, भारत सरकार*

14. https://worldpopulationreview.com/country-rankings/most-dangerous-countries-for-women
15. World Health Organisation (WHO). Global Strategy for infant and young child feeding. Geneva: World Health Organisation; 2003
16. IIPS, ICF. National Family Health Survey (NFHS-4), 2015–16: India. Mumbai: International Institute for Population Sciences 2017
17. निर्वाचन आयोग, भारत सरकार, https://eci.gov.in
18. https://www.ipu.org/women-in-parliament-2020
19. https://data.ipu.org/women-ranking?month=1&year=2021
20. https://rajassembly.nic.in
21. https://adrindia.org/sites/default/files /Women_representation_among_all_MPs_and_MLAs_English.pdf https://eci.gov.in
22. अनुच्छेद 51 व 106, पाकिस्तान का संविधान, http://www.pakistani.org/pakistan/constitution/
23. Saubhadra Chatterji and Avijit Ghosal, "Trinamool Congress declares 40% reservation for women candidates", Hindustan Times, 12 March 2019. https://www.hindustantimes.com/lok-sabha-elections/trinamool-congress-declares-40-reservation-for-women-candidates/story-5OwZzWfWRfdfl5q1gfiCnJ.html.
24. https://indianexpress.com/article/jobs/upsc-civil
25. https://ndmindia.mha.gov.in/chief-secretaries-of-all-states#
26. https://theprint.in/india/governance/how-the-indian-civil-services-continue-to-remain-a-boys-club/307370/
27. Data on Police Organizations, 2020, Bureau of Police Research & Development, Ministry of Home Affairs, Govt Of India, https://bprd.nic.in/WriteReadData/userfiles/file/202012291250220703686DOPO29.12.2020.pdf
28. https://www.indiatoday.in/cities/delhi/story /dcw-delhi-police-woman-sho-1780050-2021-03-16
29. https://www.rediff.com/business/special/railways-to-ias-where-are-the-women/20190404.htm
30. https://timesofindia.indiatimes.com/india/there-are-too-few-women-in-science/articleshow/63575929.cms
31. Basic Statistical Return-2, BSR-2, RBI ½ ¼ https://dbie.rbi.org.in/DBIE/dbie.rbi?site=publications#!9
32. https://www.tatatrusts.org/Upload/pdf/ijr-2020-overall-report-january-26.pdf
33. 'Global Wage Report 2018/19', International Labour Organization, p. 24. https://www.ilo.org/wcmsp5/groups/public/—dgreports/—dcomm/—publ/documents/publication/wcms_650553.pdf.
34. Periodic Labour Force Survey(PLFS), NSO, July 2018-June 2019
35. https://www.shethepeople.tv/news/women-graduates-earns-less-male-counterparts-reports/
36. Jayshree Sengupta, 'India slips on gender equality', Observer Research Foundation, 27 December 2019. https://www.orfonline.org/expert-speak/india-slips-gender-equality-59555/.

वेबलिंक

1. https://dopt.gov.in/
2. https://www.education.gov.in/hi
3. http://mospi.nic.in/
4. https://www.mohfw.gov.in/
5. www.wcd.nic.in
6. www.wcd.Rajasthan.gov.in
7. https://ncrb.gov.in/
8. www.delh.policygroup.com

Renuka Ray: An Unwavering Nationalist and a Crusader of Rights and Equality

Dr. Manisha Pandey Tiwari
Post Doctoral Research Fellow, UGC, New Delhi

shodhshree@gmail.com

Abstract

Renuka Ray (1904–1997) was one of the most eminent figures amongst the enlightened band of women who came into the forefront of the freedom movement. She was also a fierce social activist and advocate of equality of status and justice for women. Due to her invaluable experiences which she had gained in various fields of national importance, Renuka Ray was elected to the Indian Constituent Assembly from West Bengal. As the member of the Constituent Assembly, Renuka spoke articulately about several relevant issues including rights, equality, justice and fairplay. This research paper, which is purely based on the primary and archival sources, intends to cover Renuka Ray's diligent efforts towards freedom movement, women issues, social causes and nation building with primary focus on her contributions as a member of the Indian Constituent Assembly and the inputs and viewpoints she presented while framing the Indian Constitution.

Keywords : *Indian Constituent Assembly, Underground Movement, Indian Constitution, Separate Electorates, Reservation, Equality, Justice.*

When a sixteen years old young girl donated her valuable bangles for the 'Tilak Swaraj Fund', which was announced by Gandhi to aid the Non-Cooperation Movement, the level of her patriotism at such tender age not only amazed Gandhi but also made him wonder whether for making this hefty donation she had sought the permission of her parents. Eventually he had to write to her father informing him about the same.[1] That resolute and unswerving girl was Renuka Ray. Renuka was born on 4 January 1904 in Calcutta and was the eldest of four children of Satish Chandra Mukerjee and Charulata Mukerjee.[2]

Bond with Gandhi and Participation in Non-Cooperation Movement

Growing up through the years of the anti-partition movement and in a family that upheld the ideals of the Bengal Renaissance, Renuka was bound to be drawn into the freedom struggle. Approximately at the age of sixteen she met Gandhi at the special Calcutta session of the Indian National Congress held in September 1920. In response to Gandhi's call of non-cooperation with the British authority and British institutions, Renuka and her friend (Lalita Ray) who were then in the first year at the Diocesan College for Women, left College. They were the first two girls in Calcutta to leave college to join the Non-Cooperation movement.[3]

In 1921, when Renuka did not want to go to England for her further education as planned by her father, it was Gandhi (who himself had the advantage of education in London) who convinced her by saying that she could use that rare opportunity to serve her own nation. He advised, "I trust, in a free atmosphere without becoming an anglicized girl you will take full advantage of the education and come back well equipped to serve your country with courage and an independent outlook." Gandhi's prediction proved

true as Renuka who joined the prestigious London School of Economics, admitted that her education in Britain contributed immensely in her intellectual growth and allowed her to examine many ideas about how societies should function and be governed.[4] She returned India in August, 1925 and got married to Satyen Ray, an Indian Civil Service officer. After a while, under Gandhi's guidance, Renuka went in for constructive social and educational work in villages.[5]

Endeavors as Women's Rights Activist

Renuka joined ''All India Womens Conference (AIWC) and became its active member from 1930 onwards. She was also elected as its President for the years 1953-54. She was a strong supporter of the Uniform Civil Code and to bring social equality by removing the disabilities that women suffered in the country. [6]

Though a hard core advocate of women emancipation and women rights, Renuka insisted that the women's movement in India was not coloured by any narrow outlook and all it wanted was complete equality for men and women to pursue any path to which their aptitude and inclination led them."[7] She asserted that the movement was to enlarge the sphere of activity of the Indian women to bring her to a proper realization of her duties as a citizen, and to equip her to take part in public life and embrace activities not merely of domestic but of national importance.[8]

Quit India Movement

8 August, 1942, when the Congress took the Quit India resolution, Gandhi, along with many other Congress leaders was immediately arrested but before that Gandhi had asked Renuka to look after the needy families of those who went to jail. She concentrated her efforts in both Delhi and Bengal on collecting funds for the same. Renuka along with Aruna Asaf Ali and others carried out the underground movement. It was at that time that arms and ammunition purchased from some British majors were carried by her to the workers at different places.[9]

Contribution in Indian Constituent Assembly

Due to Renuka's invaluable experiences and knowledge which she had gained in various fields of national importance, she was elected to the Indian Constituent Assembly from West Bengal on 14 July, 1947.[10] Renuka participated whole heartedly in Assembly's deliberations and raised several issues of utmost relevance. She delivered speeches while moving amendments to the draft articles of the Constitution. She was also a member of the Flag Presentation Committee of the Assembly. Her views and ideas which she expressed in Assembly resonated extensively in her private correspondences, speeches, writings and autobiography as well.

It was a herculean, extensive and crucial task to frame the future fate of the country as diverse as India and Renuka Ray was all set to be part of it.[11] Renuka fondly remembered Assembly days in her autobiography, that members were selfless, hardworking, dedicated, well informed, active and were infused with a sense of purpose.[12] However, as the work of drafting the Constitution progressed, the Assembly became a forum for those having contradictory views.[13] However, Renuka was hugely proud that women members contributed to the deliberations of the Constituent Assembly, "We shared equally with the men, perhaps for the first time, the task of formulating ideas in the party meetings and then in the Constituent Assembly itself."[14]

On 18 July, 1947, in an impassioned speech in the Constituent Assembly revolving around the equality of Status and Justice for Women, Renuka Ray commended the abolition of special representation and reservation of seats for women in the new Constitution.[15] She opined that the reservation of seats for women encouraged the divisive tendencies and it was also an insult to the intelligence and capacity of women.With her head held high Renuka spoke, "Ever since the start of the Women's' Movement in this country, women have been fundamentally opposed to special privileges and reservations. Through the centuries of our decadence,

subjection and degradation, the position of women too has gone down until she has gradually lost all her rights both in law and in society. Nonetheless, with the first stirrings of consciousness amongst women, there never arose any narrow suffragist movement that has been so common in so many so-called enlightened nations. The social backwardness of women has been sought to be exploited in the same manner as backwardness of so many sections in this country by those who wanted to deny the country its freedom."

She felt that women would get more and equal chances in the future to come forward and work in the free India, if the consideration was of ability alone.[16] After years of struggle when power was coming to the hands of national leaders who had fought for the country's freedom, she was sure the rights of women would be safe and no special reservation was necessary for the purpose.[17] Renuka opposed Mr Rohini Kumar Chaudhuri(Assam)'s suggestion for a women's constituency. Women, she reiterated, would not tolerate reservation of seats for them.[18]

In the Assembly on August 28, 1947, while addressing the Question of Religious Minorities and Majorities in a Secular State, Renuka spoke vehemently against separate electorates or reservation as it created hostilities in the country. She made a forceful appeal for the abandonment of separatist ideas lurking into the minds of minorities and the separate electorates in any guise or form should go.[19] She said, "It is not a question of minorities and majorities on a religious basis that we should consider in a democratic secular State. We have agreed to the reservation of seats just for the time being for the next ten years to allow those who cannot think of themselves in terms of "Indians" to adjust themselves over this period. We have stood aside helplessly while artificially this problem of religious differences — an echo of medieval times, has been fostered and nurtured and enhanced by the method of political devices such as separate electorates in order to serve the interests of our alien rulers. Today we see as a result our country divided and provinces like my own (Bengal) dismembered. We have learnt indeed a bitter lesson."

She reiterated that though religious differences might have been exploited as a political expedient by the British but there was no room for that in the new India. Renuka rather suggested multiple constituencies with cumulative voting to ensure representation for minorities without creating a separatist tendency. She said that the real problems which countrymen faced were much bigger and they urgently needed to be taken up for the welfare of the country like education, health and hunger. She advocated development through every means in power to uplift the people who were lagging behind.[20]

In the Assembly, Renuka also moved an amendment [21] in support of secular education and against denominational religious instruction in schools maintained by the State as it was against the very nature of the democratic secular state and said that it was necessary that instruction imparted to the citizens of future should emphasise the secular character of the State.[22] She opined, "Religious education of a denomination character was the responsibility of the community and the home to which the child belongs and not of the State. We do not want to bring in an educational system whereby the education given by the State will be in direct contravention to the ideals and the interests of the State itself."[23] She held that the next generation should be educated in such a manner that they were not actuated by motives that divide and disintegrate man from man. The religion of humanity was much greater than religious dissensions on a denominational religious basis.[24] For her stand Renuka was supported by many members of the Assembly.[25]

While discussions on Draft Constitution were going on in the Assembly on 9 November 1948, Renuka took up a number of significant issues.

Insisting upon the flexibility of the Constitution to enhance its practicability she said, "Amendments of the Constitution should be by simple majority for the next ten years so that there may be opportunities for adaptations and modifications in the light of experience."

She said that although equality had already been mentioned in fundamental rights, it was necessary to have an explicit provision that social laws of marriage and inheritance of the different communities shall not also have any disabilities attached to them on grounds of caste or sex. Renuka also appealed to include a provision whereby a definite proportion of the budget is allotted for the two nation-building services of education and public health, if the country was to progress and prosper.[26] Mr L. Krishnaswami Bharathi(Madras) supported her suggestions in the Assembly.

Renuka reiterated her firm faith in Gandhian ideas by supporting the Gandhian formula of village in which the panchayat of the village would be the backbone of the structure of this country's Constitution. She also advised a balance between provincial autonomy and strong centre during the allocation of powers and finances between the both so that provinces do not fall behind in regard to the minimum standards of development.[27]

On 3 December, 1948, articles in Draft Constitution prohibiting traffic in human beings, forced labour and child labour were passed by the Assembly, at this time Renuka spoke strongly for the Prevention of Trafficking of Women , "Acts for the prevention of immoral traffic in women do exist already in this country but their operation is not effective and even if legal flaws are amended, these can only become really effective when men's minds change towards this problem, whereby a section of women are at the mercy of exploiters whereby the very dignity of womanhood is lowered."

On 31 August, 1949, Renuka spoke elaborately on the question of Bicameral State Legislatures, which she found unnecessary and also a very expensive luxury, especially at the time when country needed to go through a good deal of legislation in the economic and social field, which had been long overdue during the years of foreign rule. She spoke, "The only reason advanced for having a Second Chamber is that it can work as revising chamber to prevent hasty or careless legislation. But, when there is a Governor, in the Province and a President at the Centre, who is empowered to send back to the legislature any Bills which may have been enacted carelessly, for revision. Even if we at the present moment do have to agree to have Second Chambers in the provinces, there should be some provision in the Constitution that the Second Chambers can be got rid of as speedily as possible.[28] Renuka remembered in her autobiography how later on she played an instrumental role in the abolition of second chamber of her own state West Bengal's legislature.[29]

On the same day Renuka also supported the amendment moved by Mr Basanta Kumar Das (West Bengal) to include in the Union list provision for co-ordination of educational activities for maintaining an uniform national educational policy and provision for the adequate financial assistance to the States for the same purpose. Renuka wanted that 20% to 35% of the national income be set aside for nation building services.[30] She opined, "It is not possible for our country to progress or produce more unless the efficiency of the worker is increased."[31] However Ambedkar (Chairman of drafting Committee) commented that the provision of financial assistance had been already been provided; hence there was no need to include it in Union list.[32]

While summarising the work of the Constituent Assembly[33], on 19 November 1949, Renuka Ray frankly spoke out that she found the Indian Constitution very voluminous or perhaps the most voluminous in the world. According to her going too much in detail was not required and constitution should have been drawn up on more

general lines to make it more practical and flexible.

Contributions in Independent India

Renuka Ray became a minister in B. C. Roy's cabinet in West Bengal in 1948. She became the member of the U. N. delegation from India along with B.Shiv Rao and others under the leadership of eminent jurist M. C. Setalvad in 1949.[34] From 1952–57 she served in the West Bengal Legislative Assembly as Minister for Relief and Rehabilitation. In 1957 and again in 1962 she was elected to Lok Sabha. She also served on the Planning Commission and on the Governing Body of Visva Bharati University in Shanti Niketan. Along with all this Renuka continued her valuable works towards Social welfare and women upliftment, of which she had gained rich experience under Gandhi's tutelage.[35] For her tireless contributions towards the nation Renuka was awarded Padma Bhushan in 1988.

In the Indian Constituent Assembly and beyond it as well, Renuka had been a staunch exponent of social equality and justice. She envisaged a country where there would be no discrimination on any grounds and advocated united and secular country. Her stand against reservations and separate electorates exhibit her strong viewpoints against the divisive politics. Renuka asked women of the country to unshackle themselves and come forward to engage in the process of nation building. She wanted them to enjoy equal rights and fulfil duties in the service of the country. The nation and the society which is based on equality that we see today is built on the persistent efforts put in by the personalities like Renuka Ray. She will always remain the source of inspiration not only for today but also for the generations to come.

References

1. *Letter from Mahatma Gandhi to Renuka's father, Shri S.C.Mukherjee. Ray, Renuka (1982), My Reminiscences: Social Development during Gandhian Era And After, New Delhi, Allied Publishers Private Limited, pp.269-270.*
2. *Ibid. p.1.*
3. *Ibid. pp.13-19.*
4. *Ibid. pp.31-34.*
5. *Ibid. p.49.*
6. *Renuka Ray Papers, Speeches and Writings by Renuka Ray, File no. 88, Women Movement in India, Draft of the book, Nehru Memorial Museum And Library, New Delhi, p.3.*
7. *Ray, Renuka (1978), Role and Status of women in Indian society (A collection of articles by women authors), Calcutta, Firma KLM Private Limited, p.6.*
8. *Renuka Ray Papers, Speeches and Writings by Renuka Ray, File no.1, Radio speech on Women's movement in India, 27 July, 1935, Nehru Memorial Museum And Library, New Delhi, p.1.*
9. *Ray, Renuka (1982), My Reminiscences: Social Development during Gandhian Era And After, New Delhi, Allied Publishers Private Limited, pp.96-97.*
10. *Selected Speeches of Women Members of the Constituent Assembly, Rajya Sabha Secretariat, New Delhi, April 2012, p. ix.*
11. *Renuka Ray Papers, Speeches and Writings by Renuka Ray, File no. 4, Responsibilities of citizenship in free India, Nehru Memorial Museum and Library, New Delhi. p.3.*
12. *Ray, Renuka (1982), My Reminiscences: Social Development during Gandhian Era And After, New Delhi, Allied Publishers Private Limited, pp.150-151.*
13. *Ibid. pp.139-140.*
14. *Oral History Transcript (OHT) of Renuka Ray, recorded on 6.9.1968, p.32, Nehru Memorial Museum and Library, New Delhi.*
15. *Times Of India, Bombay, July 19, 1947, Microfilm no. 2751, Nehru Memorial Museum and Library, New Delhi.*
16. *While the Assembly was Considering the Report on the Principles of a Model Provincial Constitution, Constituent Assembly Debates (C.A.D.), Vol. IV, L.S.S., 18 July 1947, pp. 668-669.*
17. *The Hindu, Madras, July 20, 1947, Microfilm no.7257, Nehru Memorial Museum and Library, New Delhi.*
18. *Times Of India, Bombay, November 10, 1948, Microfilm no. 2824, Nehru Memorial Museum and Library, New Delhi.*

19. *The Hindu, Madras, August 29, 1947, Microfilm no.7258, Nehru Memorial Museum and Library, New Delhi.*

20. *While discussion on the Report of Minority Rights was going on in the Assembly, Constituent Assembly Debates (C.A.D.), Vol. V, L.S.S., 28 August 1947, pp. 268-269.*

21. *Mr. President, Sir, I move my amendment leaving out the first part, namely—That for Clause 16, the following be substituted:-"No denominational religious instruction shall be provided in schools maintained by the State. No person attending any school or educational institution recognised or aided by the State shall be compelled to attend any such religious instruction."*

22. *Times Of India, Bombay, December 8, 1947, Microfilm no. 2825, Nehru Memorial Museum and Library, New Delhi.*

23. *Discussion on Clause 16 of Supplementary Report on Fundamental Rights in the Assembly, Constituent Assembly Debates (C.A.D.), Vol. V, L.S.S., 30 August 1947, pp. 350-351.*

24. *Consideration of Article 22 of the Draft Constitution in the Assembly, Constituent Assembly Debates (C.A.D.), Vol. VII, L.S.S., 7 December, 1948, pp. 878-879.*

25. *Mehboob Ali Baig Sahib Bahadur (Madras), K.Santhanam (Madras) and Rohini Kumar Chaudhuri (Assam).*

26. *Debate on Motion regarding Draft Constitution in the Assembly, Constituent Assembly Debates (C.A.D.), Vol. VII, L.S.S., 9 November 1948, pp. 356-358.*

27. *Ibid.*

28. *Consideration of the Article 148 of the Draft Constitution in the Assembly, Constituent Assembly Debates (C.A.D.), Vol. VII, L.S.S., 6 January 1949, p. 1312.*

29. *Ray, Renuka (1982), My Reminiscences: Social Development During Gandhian Era And After, New Delhi, Allied Publishers Private Limited, p.148.*

30. *The Hindu, Madras, September 1, 1949, Microfilm no.7271, Nehru Memorial Museum and Library, New Delhi.*

31. *Discussion on the Entries in the Lists of Union and State in the Assembly, Constituent Assembly Debates (C.A.D.), Vol. IX, L.S.S., 31 August, 1949, pp. 794.*

32. *The Hindu, Madras, September 1, 1949, Microfilm no.7271, Nehru Memorial Museum and Library, New Delhi.*

33. *Discussion on Draft Constitution in the Assembly, Constituent Assembly Debates (C.A.D.), Vol. XI, L.S.S., 19 November 1949, pp. 715-718.*

34. *Ray, Renuka (1982), My Reminiscences: Social Development During Gandhian Era And After, New Delhi, Allied Publishers Private Limited, p.182*

35. *Ibid. p.288.*

Vaishnavism in Northern India (First - Third Century AD): A Historical Survey

Arshad
Research Scholar, Aligarh Muslim University, Aligarh (Uttar Pradesh)

shodhshree@gmail.com

Abstract

The aim of this paper is to discuss the Vaishnavism and its development in Northern India during the first to third century AD. Religion is one of the most common ways for people to express their spiritual beliefs. Vaishnavism is a theistic religion in which Vishnu is the supreme deity and the object of worship and devotion. Vishnu was ideal for the theory of divine grace because the characteristic of this deity exhibited liberalism and beneficence. The literary and archaeological evidences provide the sufficient material for the study of Indian society's religious conditions, specifically Vaishnavism during the first to third century AD.

Keywords*: Religion, Vaishnavism, Worship, Deity, Vishnu, Divine, Devotee, Society.*

The historical roots of Vishnu's greatness and sectarian Vaishnavism can be found in the *Rigveda*, and he is regarded as the greatest god by at least one section of the people in the later Vedic period.[1] Vishnu is identified with sacrifice, in the *Satapatha Brahmana*.[2] Krishna, the son of Devaki and Vasudev, is mentioned in the *Chhandogya Upanisad* as a disciple of Risi Ghora of the Angirasa family.[3] Vasudeva Krishna became the leader of the religious movement, was defined and styled Bhagavat, and the Bhagavat sect worshiping Vasudeva appears to have spread in northern India.[4] As Panini mentions Vasudeva's followers, indicates that the religion flourished at least before Panini.[5] It is known from the Megasthenes that Heracles is held in especial honour by the Saurasenoi.[6] Heracles of Megasthenes appears to be regarded as the Greek equivalent of Vasudeva-Krisna. In the *Arthashastra*, Kautilya mentions the legends of Krisna and Kamsa, as well as the construction of temples dedicated to the god Apratihata (Vishnu).[7] Patanjali mentions the festival gatherings in the temples of Keshava (Vasudeva) and Rama (Balarama or Samkarsana), as well as the names Krishna and Janardana, which are synonyms for Vasudeva.[8] He also mentions the Vasudeva Bhaktas, the staging of *Bali-bandha*, which is associated with Vishnu, and slaying of Kamsa by Krishna. It attests to the growing devotion to the Lord, who was referred to by various names.[9]

Further the inscriptional records also reveal the information about this sect. Among them, *the Besnagar pillar inscription* (second century BC) mentions the establishment of the *garudadhvaja* (Garuda column) of the *devadeva* (the greatest god) Vasudeva by his Yavana or Greek devotee Heliodorus, a Bhagavat (worshipper of Bhagavat i.e., Vasudeva-Vishnu), son of Dion, and Taxila resident who came as Greek Ambassador from king Antialkidas to Kashiputra king Bhagabhadra.[10]

In this context, *another inscription from Besnagar* refers to the erection of the Garuda column of an excellent temple (*prasadottama*) of the Bhagavat (Vasudeva) by the son of Gotami (a worshipper of Bhagavat).[11] The figure of Garuda is generally identified as the *vahana* (vehicle) of Vishnu. It is known from the *Mahabharat* that Garuda, in return for boons granted to him by Vishnu, himself offered a boon

to him who made the bird his vehicle. These two inscriptions allude the flourishing condition of this sect in contemporary society.

Besides, the next epigraphic record is Ghosundi (Chitorgarh, Rajasthan) inscription of the first century BC refers to the construction of a 'Puja-Sila-Prakara-Narayana-Vatika' for Bhagavat Samkarsana and Vasudeva within the Narayanavataka.[12] This *Puja Sila Prakara* (a stone enclosure for the place of worship, or, an enclosure for the sacred stone known as *shalagrama*, which is associated with Vishnu in the same way that the Linga is associated with Siva) is constructed by a Bhagavata (a worshipper of Bhagavat) Gajayana, son of Parasari, performer of the Asvamedha sacrifice, in the honour of Samkarsana and Vasudeva who are called *Bhagavat*, *anihata* (unconquered), and *sarveshvara* (supreme lord).[13] Further, *the Nanaghat Cave Inscription,* of the Satavahana queen Naganika enumerates about the adoration for Samkarsana, Vausdeva and the moon and the sun, and other gods.[14] These records indicate that before the Christ birth, the Bhagavatas had linked with the cult gods Vasudeva, Samkarsana, and Narayana with each other.

Apart from this, the *Mora stone slab inscription* of the time of *mahakshatrapa* Rajuvula, belongs to the first century AD, mentions the line beginning with *Bhagavata (vri) (sh) ne (na) Panchaviranam pratima.* This inscription records to the setting up of an image of the blessed and divine Vishnu, that is Krishna-Vasudeva, who belonged to the Vrishni (*vrishninam vasudeo smi*) branch of Yadav race.[15] The *Mathura Inscription of the time of the great Kshatrapa Shodasa*, son of Rajuvula, also mentions about the *Bhagavato Vasudevasya mahasthana* (shrine of the Bhagvat Vasudeva).[16]

Furthermore, the iconic depictions of Vishnu on sculptures and coin motifs also provide information about Vaishnavism during the time period under review. In this context, a four armed image of the Vishnu depicts the deity as four-armed with a chakra in the upper left hand is found on the coins Panchala king Visnumitra (first Christian A.D.).[17] An important seal-matrix belongs to second century AD, Cunningham attributes it to Huvishka, in which four armed Vishnu is depicted with Sankha, Chakra, Gada, and a ring-like object in place of lotus. In this image king Huvishka is depicted in anjali mudra (pose).[18] Vishnu is depicted as four-armed on some coins of Huvishka, with the name Ooshna on the obverse.[19] All of this suggests that Huviskha may have become a Vasudeva devotee at some point in his life.

A significant image of Vishnu (second century AD) preserved in the Mathura museum, with Samkarsana emerging from his shoulder and another deity over his head, is also noteworthy.[20] One sculpture of second-third century A.D, depicts Vishnu sitting on Garuda.[21] An intriguing Gayatri Tila's relief around the same time depicts Vasudeva walking through the waters carrying the child Krishna to Gokula *gram*, a popular *Janmastami* episode.[22] An image of Balaram belongs to second century AD discovered from Girdharpur Tila sheds light on the deity's popularity as a Vaishnava sect-deity.[23] A second-century BC image of Balaram from the Lucknow Museum indicates that the deity was worshiped during the second century BC.[24] The fourteen images of Vishnu mentioned by V.S. Agrawala and attributed to the Kushana period are also notable, as they describe the deity's popularity.[25] In this context, it's also worth noting that, along with the male deity of Vashnavism, the female deity has also gained popularity and is revered in society.

Moreover, a significant sculpture from Mathura depicting Lakshmi holding a lotus flower, Bhadra holding a fruit, and Hariti with a child alongside Kubera should be discussed here amongst other Vaishnavite icons.[26] In this context, a Kushana period slab from Matura with the images of Arddhanarisvara Siva, Visnu, Gaja-Lakshmi and Kubera is noteworthy.[27] This image represents the Kushana kings' leniency. This image also implies that Brahmanism was reasserting itself through these cults, and thus this image could be

seen as the first step toward Lakshmi and Vishnu's union.[28]

Aside from that, the sculpture represents the Trimurti concept of Brahamanism, which is extremely important in this context. An image of Trimurti belongs to second century AD, discovered from Charsadda, ancient Pushkalavati, depicts the Siva (in centre), Vishnu (right), and Brahma (left).[29] However, an interesting specimen is an Ekanamsa[30] triad with Vasudeva and Balarama belonging to the second century AD, discovered from Devangarh, Gaya, Bihar.[31] All of this suggests that Vaishanavism flourished in northern India during the first-third century AD.

References

1. *R.C. Majumdar, The Age of Imperial Unity, Bombay, 1951, p.431.*
2. *The Satapatha Brahamana refers to Narayana, who performed a pancharatra- satra i.e., sacrifice continued for five days, and thereby obtained superiority over all being and 'became all beings' (Ibid).*
3. *Ibid, p. 433.*
4. *Ibid.*
5. *Ashtadhyayi of Panini, Ed. by S.C. Vasu, Allahabad, 1891- 1898, iv, 3, 98.*
6. *J.W. McCrindle, Ancient India as Described by Megasthenes and Arrian, Calcutta, 1926, pp. 206-207.*
7. *Arthashastra of Kautilya, Tr. by R. Shamasastri, 3rd edn, Mysore, 1929, viv. 3, ii, 4.*
8. *B.N. Puri, India in the time of Patanjali, 2nd edn, Bombay, 1968, p. 173.*
9. *Ibid.*
10. *Luder's List, No. 669; Archaeological Survey of India-Annual Report, 1913-14, part ii, pp. 189-90. Hereafter ASIAR.*
11. *ASIAR, 1913-14, pp. 189-90. This inscription is mentioned in ASIAR, and it is discovered from the Besnagar during the exaction carried by ASI. It is mentioned in some books that the Gautamiputra has constructed the prashadottam. Therefore, many readers misunderstand it with as Gautamiputra Satkarni. But in this inscription, verses mentions about a Bhagavata, son of Gotami (worshiper of Bhagvat i.e., Vasudev-Vishu- Krisna). Verses : Gotam (?) putena; 2 Bhagavatena; 4 [Bha] gavato prasadota-; 5 masa- garuda-dhvaj kari; [dva] dasa-vas-abhisit; 7 Bhagavate maharaje.*
12. *Epigraphia Indica, XVI, pp. 26-27, hereafter EI; Luder's List, no. 6.*
13. *Ibid.*
14. *D.C. Sircar, Select Inscriptions Bearing on Indian History and Civilization, I, Calcutta, 1942, pp. 186-189.*
15. *Luder's List, no. 14.*
16. *Ibid.*
17. *R.C. Majumadar, op. cit., p.439.*
18. *Ibid.*
19. *Ibid,*
20. *N. P. Joshi, Mathura Sculptures, Mathura, 1966, p. 82, pl. 32.*
21. *Ibid, pl. no. 63.*
22. *ASIAR., 1925-26, pp. 183-84,*
23. *N. P. Joshi, op. cit., p. 84, pl. 61.*
24. *Lucknow Museum Antiquity no. G 215.*
25. *V.S. Agrawala, Handbook to the Sculptures in the Curzon Museum of Archaeology, Muttra, Allahabad, 1933, pp. 4-5.*
26. *Ibid, pp. x-xi.*
27. *Ibid, p. ix, pl. 41; J.N. Banerjea, Development of Hindu Iconography, Calcutta, 1956. pp. 181.*
28. *S. Jaiswal, The Origin and Development of Vaisnavism, Delhi, 1967, p. 98.*
29. *ASAIR, 1913-14, pp.126-127.*
30. *She (Ekanamsa) was the daughter Of Nand and Yashoda. Vasudev (father of Krishna) replaced her with baby Krishana. Kamsa attempted to kill her, but she suddenly turned into a female deity.*
31. *P. Banerjee, Early Indian Religions, Delhi, 1975, p. 77; See, Journal of the Bihar Research Society, Patna, Vol. vii.*

SHG Movement of RAJEEVIKA : An Critical Analysis

Dr. Seema Pareek
Associate Professor, Seth R.L. Sahria Govt. P.G. College, Kaladera

shodhshree@gmail.com

Abstract

Poverty is biggest concern in the country. India has adopted targated intervention to eridicate poverty since independence.The government of India has conceived employment generation programmes to take out people from poverty. The employment progammes are of two categories namely wage based employment (MGNREGA) and self employment programme (NRLM). Wage based employment programmes creates dependancy on government while self emplyoment programmes make people self reliant and independent hence self employment programmes are permanent solution of poverty. Today National Rural Livelihood Mission-NRLM is the biggest self employment programme which is run through women self help groups only. It is a three tier community driven programme. RAJEEVIKA is nodal agency in Rajasthan to run the women SHG based self employment programme. It cames in force in the year 2011 since then self help group, village organization, cluster level federation have been established. The programm is running by community cadre itself. The paper investigate the impact of self help group programme of RAJEEVIKA on society specially on poor.The most important factor of the programme is fund management and fund rotation by women self help group members. The paper examine the fund management and fund rotation through CBR,CS, ILR. The paper also analyses the performance of various districts of the state in this concern. Finally, paper suggests few remedial points.

Keywords: *RAJEEVIKA, Movement, Critical Analysis, Rajasthan, Poverty, Community.*

India has adopted two types of strategy to generate employment or to eridicate poverty. These two strategies are (1) Wage based Employment Schemes and (2) Self Employment Schemes. Self Employment Schemes provides resources to poors to generate incomes. It provides long run income generation facilities. These types of schemes creates permanent productive resources, so that persons can permanently come out from poverty. India had launched Integrated Rural Development Programm (IRDP) to provide self employment through Self Help Groups, but the programme was not successful as it was assumed due to lack of forward and backward linkages. Now a new approach of community based three tier structure of women self help groups , village organisation and cluster level federation have been statred under the umbrella of National Rural Livelihood Mission (NRLM). Rajathan has started the women self help based self employment programme to eridicate poverty in the state. Rajasthan has come up with Rajastha Grameen Ajivika Vikas Prishad (RGAVP) or RAJEEVIKA from 2010 . It is an autonomous society established in October 2010 by the Government of Rajasthan under the administrative control of Department of Rural Development. Registered under Society Registration Act, 1956 it is mandated to implement all rural livelihoods programmes associated with self help group based institutional architecture in the state. The Society aims at creating financially sustainable and effective institutional platforms of the rural poor, enabling them to increase household income through

sustainable livelihood enhancements and improved access to financial and selected public services and to build their capacities to deal with the rapidly changing external socio-economic and political world. Its approach is to support the development of livelihood opportunities for the rural poor, especially women and marginalized groups, through community institutions. To enhance the economic opportunities and empowerment of rural poor with focus on women and marginalized groups in Rajasthanis the mission of RAJEEVIKA and the main objectives of RAJEEVIKA are (i) Develop skills of rural youth (ii) Financial Inclusion through Project fund & Bank linkage (iii) Promote community institutions as women self-help groups, federations, producer Organizations (iv) Converge with other government programs including various departments for leveraging impact (v) Provide livelihood support This is the approach of RAJEEVIKA to support the development of livelihood opportunities for the rural poor, specially women and marginalized groups.

Objectives of The Study

1. To analyses the institutional building strategy .
2. To examine the loaning strategy and the pattern of self help groups.
3. To estimate the factors affecting the rotation of funds among self help group members.
4. To analyses the social engineering through self help group programme.

Data Collection and Methodology

Time series and secondary data available in RAJEEVIKA website, various literature and reports by RAJEEVIKA has been used in the research paper.

The rotation of funds among self help group members is most crucial aspect which affect on poverty tremendously, the factors affect the rotation of funds are estimated through using OLS regression method.

Results & Conclusions

I. Financial Empowerment

(a)Financial Management

Reduction of poverty is one of the basic objectives of the self help group programme. Financial literacy and financial activities are the parameters to evaluate the good functioning of self help group. For reduction of poverty some condition must be fulfilled. These conditions are given below-

1. Maximum amount of Corpus fund must be lent among the members of self help group. Ideally 90% of the Corpus of self help group must be lent.
2. All the funds raised or borrow from various sources by self help group must be lent to the members. It means 100% of the funds borrow by self help group must be lent.
3. Ideal fund shall be minimized.
4. Rotation of funds among members must be ensured.

Table 1 explains that the cash in hand and cash in bank of self help group must not be more than or equal to Corpus fund.

If $\boxed{0 \leq CS \leq 1}$ and $\boxed{0 \leq ILR \leq 1}$

It means Internal Loaning Ratio (ILR) as near to 0 shows highly good functioning of SHG, but it must not be equal to 0 and not more than 1. The ILR near to 1 shows the lack of financial literacy and lack of trust among members of self help group

Here-

CRP= Community Resource Person

CR = Credit Rotation Ratio

CS= Cash in Bank + Cash in Hand

ILR=Internal Loaning Ratio

EC= Excess Cash, that is CS – SHG Corpus

TL= Total Loan

Total Fund =Bank Loan +VO Loan +SHG Corpus

BCR= Bad Cash Ratio = EC/ TL *100

SHG= Self Help Group

The table 1 shows that Ajmer and Jhunjhunu are

not playing good as there ILR is more than 1, shows all the corpus funds are in bank or in cash. This is against the protocols of SHG. A very pathetic condition is shown by these two districts. Baran, Bharatpur, Bundi, Dholpur, Dungarpur, Kota Sawai Madhopur, Sirohi are districts those shows more than 50% Corpus fund is ideal with self help group.

This shows the lack of rotation of funds, lack of need of funds among the members and the lack of trust and lack of financial literacy among members of self help group. Rests of the districts are doing well.

The ratio of excess cash (CS – SHG Corpus fund) with total loan must be less than zero or must be negative. The ratio may call Bad Cash Ratio (BCR). Positive BCR illustrate a paying of interest on one hand and deposit of that money in bank or self help group getting zero interests from members on other hand, totally a trade of loss. It is exactly opposite the protocol of self help group. Table 1 shows that Ajmer, Jhunjhunu are the district those have positive Bad Cash Ratio. These districts are going towards negative trend and this situation is intolerable as far as SHG movement in concern. Rests of districts are going as per the protocol of SHG movement. Total funds available with SHG must be in rotation it creates extra funds. The Credit Rotation Ratio (CR) should be greater than one. Greater CR means self help group is using available funds with greater efficiency. Funds are flowing to the members for their uses and that provide ample scope for self help group members to come out from poverty.

Through the table 1 we can conclude that Ajmer, Bikaner, Chittorgarh, Dholpur, Dungarpur, Jhunjhunu, Kota, Pali, Sirohi and Udaipur are districts those are not using their funds as per SHG protocols and as per with general financial norms. various reasons like- lack of demand for money among members, malfunction of self help group, lack of financial literacy, lack of training or lack of monitoring may responsible for it.

Other then the districts mentioned above are doing as per with protocols. The Credit Rotation Ratio is 1 for whole Rajasthan which is good in initial phase of SHG movement.

***(b). Income Generation*:**

Rajasthan among all self help groups 72% have invested their funds in direct income generating activities. Only 28% have invested in long term income generating activities. Only few 0.14 % have invested in non income generating activities. This shows that the self help group members are fully aware about investment. This investments scenario depicts that SHG movement can reduce poverty one day. The process of loaning for self help group is absolutely good which is fit for poverty reducing among self help group members.

© Rotation of Funds

The rotation of the funds is only important factor through which SHG movement can create a dent on poverty, subject to the proper utilization of fund by self help group members. The success of self help group depends on the rotation of funds. The members of self help group can come out from poverty only if the self help group can able to rotate the funds available with it.

It is required to estimate the parameters those affect the rotation of funds. To estimate the parameters 13 variables are identified. Those may affect outstanding loan. Hence to estimate the significance of variables the regression line is fitted.

Y= - 27.36 +0.91 X1 +1.22 X2 +0.99 X3 + 1.16 X4 + 1.82 X5 +0.52 X6 - 0.67 X7 +3.36 X8 -0.66 X9 -1.23 X10

(0.003) (5.65) (2.04) (0.004) (1.18) (6.09) (0.001) (0.44) (0.01) (0.58)

– 1.34 X11 -5.17 X12 – 0.89 X13

(0.17) (0.266) (0.003)

R2 =0.99 and **N = 26**

The negative coefficient of intercept means if loan is not available then saving may be used. Out of 13 variables only X1, X4, X7, X9, X11 and X13 are significant means only these variables affect the outstanding loan. Rests of the variables are insignificant they are not affecting the outstanding loan. Variable X1, X4 are positively affecting the outstanding loan. Whereas the X7, X9, X11 and X13 variables negatively affect the outstanding loan. The regression analysis illustrate that the increase in regular savings (X1) and grant received (X4) affect the outstanding loan positively means it increase the rotation of funds among members of SHG. Cash in bank (X7) and cash in hand (X9), interest paid (X11) and other expenditure (X13) affect outstanding loan negatively means these variables should be kept less as much possible.

II. Social empowerment

One of the basic things for formation of a SHG is a selection of families / members of SHG. Homogeneity among members of the SHG is must for success of SHG. The selection process of SHG member is being done through Community Resource Person (CRP). CRP are the members of SHG those are coming out from poverty through SHG. CRP team has one month round in a village for proper selection of a SHG member using the technique of Transit work, PRA, Wealth ranking etc.

The basic assumption according to the social strata in the state of Rajasthan is that most of the poverty is in rural areas are prevail among the SC, ST and other vulnerable classes. The share of SC and ST families in total number of SHG families is 42% and 19% of respectively. Hence the position of SC and ST in SHG members is constituted by 61% of total members. It is really high side. The OBC have a share of 29 % in the SHG members. It means most of the members in SHGs are belong to the poor families or vulnerable section of the society. It can be concluded that the selection process in present programme is good enough as it is as per the requirement of SHG movement. Faulty selection process can collapse the SHG movement. The previous experience of SGSY explained that the wrong selection process can become one of the biggest hurdles for the future intervention in SHG.

The new selection process adopted by RAJEEVIKA, Government of Rajasthan is appropriate for SHG movement.

Suggestions

On the basis of above analysis and findings some suggestions are given below-

1. The selection process for SHG members is appropriate. The homogeneity is ensured among members of SHG. A very good foundation is developed by the new CRP strategy by RAJEEVIKA.
2. Ajmer and Jhunjhunu districts have ILR greater than one and positive BCR which shows the very negative implementation of SHG and lack of trust among members of SHG this situation should be changed. A special focus must be given to these districts.
3. Baran, Bharatpur, Bundi, Dungarpur, Dholpur, Sawai Madhopur, Kota and Sirohi are the districts those ILR is more than 50, which shows the less internal loaning more idle fund with SHG. It shows less financial literacy among members of SHG, lack of trust among members, lack of training, less monitoring, less demand by SHG members. So a proper training of SHG is required. A strong trust must be build up among members and generate the need of money by members through various interventions.
4. Again Ajmer and Jhunjhunu are the districts those BCR is positive that implies that they borrow money from various agencies for loaning but keep them in Bank and cash in hand which create a burden on SHG members, so internal loaning must be increased.

   Baran, Bharatpur, Bundi, Dholpur,

Dungarpur, kota, Sawai Madhopur and Sirohi are the other districts where idle funds are more than 50%. So these districts must be increased the internal loaning by various interventions.

5. Cash Rotation Ratio (CR) is less than 1 in 10 districts. Some strategy have to undertaken for these districts to enhance the CR. Enhancing financial literacy, proper monitoring, enhancing demand of money by SHG members are some of activities to be undertaken.

6. The activities undertaken by SHG members are income generating, which is quite good for SHG movement. The rotation of fund must increase as the members of SHG are quite aware as they are utilizing their funds in income generating activities. So by enhancing CR, SHG may able to reduced poverty in rural areas of the states.

7. Cash in hand, cash in bank, other expenditure, interest paid should be reduced and savings and grant must be enhanced for increasing credit rotation ratio among SHG members.

8. The results out from the study may use in policy making of SHG programme run by government and various NGOs. RAJEEVIKA itself may analyse its programme and may change their SHG protocol, which may improve the livelihood of SHG members. The results are implementable and adaptable for RAJEEVIKA and other government agencies also.

References

1. *Ahlin, C. and N. Jiang (2008), "Can Micro-credit Bring Development?" Journal of Development Economics 86 pp 1-21.*
2. *Deininger, K. and Y. Liu. (2009), "Economic and social impacts of self-help groups in India." World Bank Policy Research Working Paper., Washington, DC: W. Bank.*
3. *Hulme, D. & Mosley, P. (1996),"Finance against poverty", Journal of Microfinance, 109.*
4. *Panda, R. K. (2005), Emerging Issues on Rural Credit. APH Publishing Corporation, New Delhi.*
5. *Progress Report (October 2017), State Project Management Unit-RGAVP Department of Rural Department & Panchayati Raj*
6. *Stuart Rutherford (1999). 'Self-help groups as micro finance providers : how good can they get?' mimeo, , pp. 9*

Websites

1. *http://www.rgavp.org/*
2. *http://rajasthan.gov.in*

Table 1

SHGs Receipts and Payments (Amount In Lacs)

District	Regular Savings (X1)	Bank Loan Outstanding (X2)	VO Loan Outstanding (X3)	Grant Received (X4)	Interest Received (X5)	Other Income (X6)	Cash at Bank (X7)	Cash at VOs Saving A/C (X8)	Cash In Hand (X9)	Book Keepers Payment (X10)	Interest Paid (X11)	Investments (X12)	Other Expenditure (X13)	Internal Loan Outstanding (Y)	SHGs Corpus
AJMER	35.38	211.23	563.38	110.37	124.4	17.88	25.38	4.13	244.36	18.1	34.88	0.94	6.69	913.2	228.35
ALWAR	0.82	383.53	584.41	260.05	281.27	70.58	39.17	0.17	31.9	20.9	80.63	2.05	158.58	1515.34	352.62
BANSWARA	212.22	525.21	1965.18	485.77	387.02	42.27	181.59	7.68	257.3	48.27	98.01	2.75	30.42	3571.14	950.57
BARAN	88.81	268.7	1503.54	456.01	514.42	62.61	284.59	0.27	163.1	32.72	219.91	0.43	83.33	2677.26	785.89
BHARATPUR	8.73	69.08	84.16	52.85	58.78	6.45	29.61	0.02	32.34	5.21	11.16	0.04	12.57	256.86	97.86
BHILWARA	56.69	311.07	1706.97	420.39	536.41	74.24	119.7	9.2	78.13	46.57	179.37	2.93	82.14	3120.03	779.65
BIKANER	80.69	117.21	520.78	256.73	109.94	19.24	119.62	2.46	69.61	10.94	27.5	4.35	17.51	1007.19	410.66
BUNDI	68.32	311.16	985.04	317.75	213.85	58.47	202.33	2.83	117.08	14.57	55.84	2.05	53.6	1842.37	534.39
CHITTORGARH	28.82	224.76	1082.39	300.29	215.34	16.04	166.04	2.35	66.74	20.68	49.27	1.13	12.39	1783.55	478.15
CHURU	97.24	367.13	1650.28	385.7	519.22	95.36	81.64	2.33	129.09	59.02	232.74	3.39	63.68	2994.6	742.08
DAUSA	127.82	304.08	1023.7	280.73	725.63	497.05	155.92	4.5	106.94	48.79	359.89	4.85	359.58	2345.35	862.96
DHOLPUR	491.8	360.64	1549.35	420.59	766	276.81	558.25	25.71	171.56	85.81	270.65	24.24	256.78	3209.6	1341.96
DUNGARPUR	1385.5	859.93	1934.45	833.22	851.12	424.9	1273.84	52.89	377.92	65.16	216.72	4.7	453.02	5242.23	2759.84
JHALAWAR	106.58	737.77	1171.78	421.31	483.37	311.53	283	6.82	115.2	49.38	186.98	2.41	219.78	2915.16	866.65
JHUNJHUNU	7.2	72.27	107.02	53.56	28.31	0.42	76.2	0	5.08	2.06	10.89	0.03	0.84	207.06	75.69
KARAULI	6.34	44.63	301.79	124.36	47.81	10.12	23.82	0.09	42.68	4.25	13.46	0.08	12.81	511.56	158.12
KOTA	88.86	500.05	1208.34	409.29	520.48	203.66	553.37	2.32	158.36	40.39	173.12	8.12	67.17	2566.45	941.61

NAGAUR	1.47	47.58	132.34	39.25	38.79	6.77	13.17	0	8.91	2.76	7.65	0.12	19.27	244.96	56.61
PALI	131.3	224.43	207	166.73	89.96	246	126.22	1.93	71.85	7.22	11.12	1.21	72.55	823.09	543.1
PRATAPGARH	13.25	121.27	888.17	192.61	179.35	32.12	33.23	0.17	79.02	22.62	31.28	0.05	36.87	1502.07	326.57
RAJSAMAND	57.09	353.12	1233.39	288.96	374.87	154.5	120.39	20.13	75.13	23.49	101.84	11.31	164.98	2354.69	585.11
SAWAI MADHOPUR	17.03	196.41	266.82	148.63	48.86	10.77	39.92	1.95	89.8	4.23	3.8	2.52	2.58	681.04	214.68
SIKAR	6.72	76.73	128.07	54.28	31.36	11.43	6.91	0.05	24.47	2.38	5.8	0.03	24.37	294.25	71.25
SIROHI	114.3	71.92	381.23	104.24	87.83	295.78	191.86	0.62	77.35	9.69	21.36	0.11	104.18	624.73	466.93
TONK	66.63	198.83	1105.52	296.98	468.16	21.55	125.61	0.77	56.08	29.23	126	0.7	25.46	2227.71	672.63
UDAIPUR	197.13	839.27	1805.59	551.4	621.34	1578.22	267.8	2.63	200.27	63.73	347.31	5.09	273.88	4464.38	2263.17
Rajasthan	3532.1	8009.2	24654	7542.42			5124.56		3094.63					50809	

Source: RGAVP, MIS Reports (2018), Financial Inclusion R31 Receipt and Payments of SHG

Table 2

S. No.	District	CS	ILR	EC	TL	BCR	Total Fund	CRR
1	AJMER	269.74	1.181257	41.39	774.61	5.343334	1002.96	0.910505
2	ALWAR	71.07	0.201548	-281.55	967.94	-29.0875	1320.56	1.147498
3	BANSWARA	438.89	0.461712	-511.68	2490.39	-20.5462	3440.96	1.037832
4	BARAN	447.69	0.56966	-338.20	1772.24	-19.0832	2558.13	1.046569
5	BHARATPUR	61.95	0.633047	-35.91	153.24	-23.4338	251.1	1.022939
6	BHILWARA	197.83	0.253742	-581.82	2018.04	-28.8309	2797.69	1.115216
7	BIKANER	189.23	0.460795	-221.43	637.99	-34.7074	1048.65	0.960463
8	BUNDI	319.41	0.59771	-214.98	1296.2	-16.5854	1830.59	1.006435
9	CHITTORGARH	232.78	0.486835	-245.37	1307.15	-18.7714	1785.3	0.99902
10	CHURU	210.73	0.283972	-531.35	2017.41	-26.3382	2759.49	1.085201
11	DAUSA	262.86	0.304603	-600.10	1327.78	-45.1957	2190.74	1.070574
12	DHOLPUR	729.81	0.543839	-612.15	1909.99	-32.0499	3251.95	0.986977
13	DUNGARPUR	1651.76	0.598498	-1108.08	2794.38	-39.6539	5554.22	0.943828
14	JHALAWAR	398.20	0.45947	-468.45	1909.55	-24.532	2776.2	1.050054
15	JHUNJHUNU	81.28	1.073854	5.59	179.29	3.117854	254.98	0.812064
16	KARAULI	66.50	0.420567	-91.62	346.42	-26.4477	504.54	1.013914
17	KOTA	711.73	0.755865	-229.88	1708.39	-13.4559	2650	0.968472
18	NAGAUR	22.08	0.390037	-34.53	179.92	-19.1919	236.53	1.03564
19	PALI	198.07	0.364703	-345.03	431.43	-79.9736	974.53	0.844602
20	PRATAPGARH	112.25	0.343724	-214.32	1009.44	-21.2316	1336.01	1.124295
21	RAJSAMAND	195.52	0.334159	-389.59	1586.51	-24.5564	2171.62	1.084301
22	SAWAI MADHOPUR	129.72	0.604248	-84.96	463.23	-18.3408	677.91	1.004617
23	SIKAR	31.38	0.440421	-39.87	204.8	-19.4678	276.05	1.06593
24	SIROHI	269.21	0.576553	-197.72	453.15	-43.6324	920.08	0.678995
25	TONK	181.69	0.270119	-490.94	1304.35	-37.6387	1976.98	1.126825
26	UDAIPUR	468.07	0.206821	-1795.10	2644.86	-67.8713	4908.03	0.909607
	Rajasthan	8219.19	0.46187	-9576.26	32663.31	-29.3181	50458.76	1.006943

Source: Calculated from table 1

Regression Statistics	
Multiple R	0.99979329
R Square	0.999586623
Adjusted R Square	0.999138798
Standard Error	40.10894894
Observations	26

ANOVA

	df	*SS*	*MS*	*F*	*Significance F*
Regression	13	46680780.21	3590829.247	2232.092515	3.28778E-18
Residual	12	19304.73342	1608.727785		
Total	25	46700084.94			

Kisan Credit Card: New Money Lender of Farmers (A Study on Utilisation of KCC in light of Farmer's Debt trap problem in Rajasthan)

shodhshree@gmail.com

Dr. Sunita Sharma
Assistant Professor, Parishkar College of Global Excellence, Jaipur

Abstract

An increasing number of suicide cases of farmers in India is a serious problem in last recent years. Although there are many other reasons for farmers' suicides, one of the main reasons is the indebtedness of farmers. This issue is very hot politically as well as socially. Farmers are in the debt trap of various institutional and non-institutional agencies especially local Sahukars. A large number of Farmers heavily depend on non-institutional sources of credit for their frequent needs to purchase farm inputs such as seeds, fertilizers, pesticides, etc. Non-institutional credit is not only expensive but also counter-productive. The Kisan Credit Card scheme was launched to provide adequate, timely, and cost-effective institutional credit from the banking system to the farmers for their cultivation needs. Farmers can not only purchase inputs but also can withdraw cash from this credit card for their input needs. Kisan Credit Cards are issued to the farmers based on their landholdings and other criteria such as timely payment of past credits etc. Farmers covered under the Kisan Credit Card scheme are issued with a credit card and a passbook or a credit card cum pass book incorporating the name, address, particulars of land holding, borrowing limit, validity period, a passport size photograph of the holder, etc., which may serve both as an identity card and facilitate the recording of transactions on an ongoing basis. In this paper, a study is carried out to show the importance of KCC for farmers to come out in a debt trap. KCC was introduced in 1998, now the question arises that; has KCC succeeded in its purpose? What problems are being faced by farmers to make KCC? Are banks have fulfilled their duty to deliver KCC? What is the future of KCC? This study is an attempt of find out the answers of these questions. The area of study is Rajasthan.

Keywords: *Kisan Credit Card, Farmers, Rajasthan, Debt.*

The debt trap problem of Farmers in India is a serious issue for governments. Indian farmers are dependent on local Sahukars (Money Lenders) for their financial needs. Money Lenders charge heavy interest rates which cause a debt trap. Due to this debt burden, farmers commit suicide.

Suicides of farmers are a burning topic in India. It is assumed that most farmers, who committed suicide, are due to debt trap problems. This problem is much more in Maharastra and Madhyapradesh than that in other states of the Country. The perception is getting strong that the trend of suicide in farmers is due to a Debt trap. This problem also exists in Rajasthan. The Sahukar system is more popular among farmers in Rajasthan. They prefer to go to local sahukars rather than banks to take loans. This is due to the unawareness of farmers. Sahukars trap farmers in debt. Recently media reports came out with the 35 suicide cases of farmers due to poverty[1].

Position of Rajasthan in India

According to National Crime Records Bureau's (NCRB) latest report[2] published in 2020, in our country,

42,480 farmers and daily wagers committed suicide in 2019, which is a 6 % increase from the previous year. NCRB data on accidental deaths and suicides says that 10,281 farmers committed suicide in 2019, down from 10,357 in 2018, whereas the figure for daily wagers went up to 32,559 from 30,132. A report on "suicide in the farming sector" was published by NCRB[2] in 2015. This report focused on the reasons for suicide cases. According to this report; a total of 8,007 farmers/cultivators have committed suicides in 2015. Out of 8,007 farmers/cultivators suicides, a total of 7,566 were male and 441 were female during 2015. The majority of suicides committed by farmers/cultivators were reported in Maharashtra (3,030) followed by 1,358 such suicides in Telangana and 1,197 suicides in Karnataka, accounting for 37.8%, 17.0%, and 14.9% of total such suicides(8,007) respectively during 2015. Chhattisgarh (854 suicides), Madhya Pradesh (581 suicides), and Andhra Pradesh (516 suicides) accounted for 10.7%, 7.3%, and 6.4% of the total farmer/cultivators suicides reported in the country respectively. These 6 States together reported 94.1% of the total farmer/cultivators suicides (7,536 out of 8,007 suicides) in the country during 2015. **The number of suicide cases in Rajasthan was reported only 03 according to this report.** Likewise, the number of suicide cases of agriculture laborers in Rajasthan is 73 in 2015. The top state was Maharastra(1261) followed by Madhyapradesh(709). According to this report, the major reason of committed suicide is bankruptcy or indebtedness (38.7%), farming-related issued (19.5%) and rest were a family problem, illness, marriage related issues, and poverty.

This report shows the gravity of the problem. However, suicide cases are comparatively less in Rajasthan than that in other states of the country, but a major cause of suicide is indebtedness.

Kisan Credit Card: An Introduction

The government of India introduced the concept of the Kisan Credit Card to fulfil the financial needs of farmers and to get rid of them from the trap of Sahukars[3]. The Kisan Credit Card (KCC) scheme was introduced in 1998. Kisan Credit Cards are issued to farmers based on their holdings for uniform adoption by the banks so that farmers may use them to readily purchase agriculture inputs such as seeds, fertilizers, pesticides, etc., and draw cash for their production needs. The scheme was further extended for the investment credit requirement of farmers viz. allied and non-farm activities in the year 2004. The scheme was further revisited in 2012.

Purpose of Kisan Credit Card

The Kisan Credit Card scheme aims at providing adequate and timely credit support from the banking system[3] under a single window with flexible and simplified procedures to the farmers for their cultivation and other needs as indicated below:

1. To meet the short term credit requirements for cultivation of crops;
2. Post-harvest expenses;
3. Produce marketing loan;
4. Consumption requirements of farmer household;
5. Working capital for maintenance of farm assets and activities allied to agriculture;
6. Investment credit requirement for agriculture and allied activities.

Objectives of the Study

To find out the utilization of KCC for farmers to eradicate the sahukars debt trap.

Has its success in its purpose?

To study problems faced by a farmer to make KCC

To study problems of Banks to sanction loans against KCC

Progress of Kisan Credit Card in India

Kisan credit card Scheme was launched in 1998 budget speech of then Central finance minister Mr. Yaswant Sinha. NABARD was assigned the

task to design the KCC scheme. From the inception of KCC in 1998 to 2020, it is getting popular among farmers. Govt is trying to make it an essential tool for farmers to get rid of sahukars. All the 27 Public sector banks initially launched the KCC scheme after the recommendation of RBI's R.V. Gupta committee. Cooperative banks, Regional Rural banks, and commercial banks are providing the service of the KCC scheme. Govt made several changes in Kisan Credit Cards in 2012 including insurance and providing digital smart card facility for KCC holders. According to a study by NABARAD[4], The cumulative number of KCC cards issued since inception till March 2015 had reached 14.64 crores. The overall progress in the issuance of KCC is summarized in Table No 01 in the appendix. The number of total operative KCC Cards in 2020 is 57.26 lakhs.

Overall Progress of KCC in Rajasthan

Rajasthan is among the states which started this scheme from the very beginning. Cooperative banks, Rural Regional Banks, and Commercial banks are providing the KCC scheme facility. According to state wise study of RBI in its 'Report On Trend And Progress Of Banking Sector In India[5], the Total number of Kisan Credit Card issued in Rajasthan by all banks are 60.18 lacs. Banks sanctioned Rs 351.7 billion loans through KCC as of march 2017. Lies wise, number of operative KCC in Rajasthan in 2020 is 57.26 lakh.

TABLE NO 02 shows the progress of KCC loan in Rajasthan.

Hypothesis of study

The hypothesis of the study is as following

1. Farmers preferring KCC rather than sahukars for their agro financial needs.
2. Farmers are utilizing the KCC in agriculture use.
3. Behaviour of bank employees is satisfactory.

Methodology of the Study

Primary and secondary data were used in the study. A survey has been conducted on farmers in various districts of Rajasthan. Each district of the division was selected for sample survey i.e. Jaipur (Jaipur Division), Bharatpur (Bharatpur Division), Bhilwara(Ajmer Division), Swaimadhopur (Kota Division), Badmer (Jodhpur Division), Udaipur (Udaipur Division), and Shriganganagar (Bikaner Division) were selected. At least 20 farmers in a district have been selected for an interview and asked questions about their financial needs and utilization of KCC. Data collected from the survey were processed and analyzed with help of tables and graphs. Secondary data were used to know the progress of the KCC scheme so far in Rajasthan. Secondary data has been taken from sites of the planning commission, Reserve bank of India, NABARD, and Department of Agriculture, Rajasthan.

Following Questions were asked to Farmers

1. Do you take a loan for agriculture needs?
2. What type of loan do you prefer?- A. Kisan Credit Card B. Sahukars
3. Do you take service of mediator for taking KCC Loan
4. Is the KCC scheme is useful for you?
5. What was the behavior of bank employees during the process of KCC cards?

   A. Satisfactory B. Non-Satisfactory.

Analysis of the Study

It is observed during analysis of data that out of 140 farmers only 103 are taking loans for agro financial needs, which are 73.58%. The ratio of sahukars loaners is only 27.16%. Therefore the first hypothesis of the study is proved that Farmers preferring KCC in comparison to Sahukars for their agro financial needs.

The second hypothesis is 'farmers are using KCC scheme' is also proved, because 73.58 % of farmers are using KCC cards.

The third hypothesis that behavior of bank employees is satisfactory is not proved during research. Out of 75 KCC holder farmers, 43 answered that behave of bank employees was not good during the process of KCC cards. The ratio of satisfied farmers is 42.67%, while the ratio of unsatisfied farmers is 57. 33%.

Conclusion of Study

It was revealed during the study that the Kisan Credit Card scheme is proving very useful for farmers. They are coming out from the debt trap of Sahukars. Farmers are satisfied with this scheme, although this scheme has to be more popular yet. More than one-third of farmers are not aware of this scheme. Some districts of Rajasthan are lagging.

The revised scheme of KCC in 2012 is also better for farmers. Issuing the digital smart Card of KCC is much useful for farmers. They are using them as Debit cards for their frequent needs. However the behave of bank employees with farmers is not satisfied.

Other Measures to Reduce the Farmers Suicide Case

The government is operating many schemes in favor of farmers but the execution of this scheme is very poor. For example Pradhan Mantri Fasal Beema Yojna, Minimum support price scheme, and providing of minimum basic income to farmers. But all these schemes still need to improve is their execution format.

Suggestions and Recommendations

1. The process of making KCC is lengthy and very difficult. Digitization of land records must be completed at the earliest possible time. These records should be verified online so that it could save time, money, and hazards for farmers.
2. Farmers hesitate to go to banks. Camps should be held in villages to make KCC. It should also be included in governments revenue camps like "PRASHASAN APKE DWAR"
3. Banks should revise their 'application cum appraisal form' of KCC loan in line with the provisions under revised KCC guidelines, 2012.
4. It is observed during field visits that bank employees' behavior is not professional. They are reluctant in KCC. They avoid farmers. It is suggested that bank employees should be trained to attend to farmers very sensitively. Bankers do not revise the KCC limit easily. The fixation of the KCC limit should be reviewed seriously by the bankers and it should be arrived at by taking into account the cropping pattern and the scale of finance for the latest year.
5. Banks should also keep information on total land with the farmer, irrigated land, land offered for KCC loan, the land offered for a land mortgage, etc., in their CBS.
6. Banks mortgage the whole land against KCC, due to this farmers are not interested in avail a higher amount of loan above Rs one lac. Therefore Banks should mortgage only the required quantity of land, sufficient to cover the bank loan.
7. A premium of Crop insurance is also deducted from the loan amount at the time of loan sanction, but there is a delay in compensation of claims by insurance companies at the time of crop damage. It suggested that bankers maybe a little extra careful while considering the crops being suggested by the farmers for fixation of the KCC limit, particularly in areas that are prone to natural calamities

References

1. *Sigh Pratap,(12 July 2017) Nine farmers suicides in 35 days(Times o india); https://timesofindia.indiatimes.com/india/nine-farmer-suicides-in-35-days-wont-let-rajasthan-*

govt-sit-with-ease-sachin-pilot/articleshow/59565642.cms

2. *National crime records bureau's report on suicide in farming sector 2015 http://ncrb.gov.in/StatPublications/ADSI/ADSI2015/chapter-2A%20suicides%20in%20farming%20sector.pdf*
3. *Support from the banking system, A case study of kisan credit card(2000) www.planningcommission.gov.in/reports/sereport/ser/stdy_kcc.pdf(last click on 21December)*
4. *Mani, G. Study on implementation of KCC scheme(2016) https://www.nabard.org/auth/writereaddata/tender/3103171130OP-64_Study%20on%20Implementation%20of%20KCC%20Scheme_wb.pdf*
5. *trend and progress of banking system in India(https://www.rbi.org.in/scripts/PublicationsView.aspx?id=14648)*

Table No. 1

Agency-wise Kisan Credit Card Issued since inception

Year 2015	Cumulative Cards issued (lakhs)				% share in total no of cards issued by agency			
	Coop	RRBs	Comm Banks	Total	Coop	RRBs	Comm Banks	Total
Cumulative KCCs issued	507.99	238.47	717.52	1463.98	34.70	16.29	49.01	100.0
Operative/live KCCs *(as % of total KCC issued)*	392.27 *(77.2%)*	123.43 *(51.8%)*	225.25 *(26.9%)*	740.94 *(50.6%)*	52.94	16.66	30.40	100.0
Cumulative Smart Cards (as % of Operative KCC)	0.24 *(0.06%)*	13.79 *(11.2%)*	76.15 (33.8%)	90.18 *(12.2%)*	0.26	15.29	84.45	100.0

Source : Study on Implementation of Kisan Credit Card Scheme 2016 by Gyandra Mani(NABARD)

Table No. 2

Progress of KCC in Rajasthan (No of cards issues in 000 and amount in billions)

Year	Cooperative		RRB		Commercial Banks		Total	
	Card issue	amnt	Card issue	amnt	Card issue amnt		Card issue	Amount
2010	2960	8915	499	4735	1762	20647	5220	34298
2011	450	1,920	82	1,986	311	4,270	843	8,176
2012	125	3.8	92	12.3	416	61.6	633	77.7
2013	278	22.8	96	16.7	375	75.6	749	115.0
2017	3,429	97.9	585	109.8	2,004	144.0	6,018	351.7
2020	2,995	7,632.7	687	15,471.8	2045	54,869.5	5,727	77,974

Source : Various Reports Of RBI On Trend And Process Of Banking In India From 2010 To 2020

Table No. 3
Opinion of farmers during Survey

No.	QUESTIONS	Jaipur	Bharatpur	S.madhopur	Bhilwara	Udaipur	Badmer	Shri Ganganagar	Total
1	**Do you borrow loan?**								
	Yes	8	20	12	18	11	16	18	103
	No	12	0	8	2	9	4	2	37
2	**What type of loan?-**								
	A. Kisan Credit Card	4	16	8	13	5	12	17	75
	B. Sahukars	4	4	4	5	6	4	1	28
3	**Is KCC useful?**	4	14	7	12	4	12	18	71
4	**Behavior of bank employees?**								
	A. Satisfactory -	1	8	6	5	2	2	8	32
	B. Non Satisfactory.	3	12	2	7	3	10	10	47

Source : Field Survey

Table No. 4

How many farmers using KCC(those who are taking loan) in %				
No.	**District**	No of farmers taking loan	using KCC	ratio in %
1	**Jaipur**	8	4	50
2	**Bharatpur**	20	16	80
3	**Swaimadhopur**	12	8	66.66
4	**Bhilwara**	18	12	72.22
5	**Udaipur**	11	5	45
6	**Badmer**	16	12	75
7	**Shri Ganganagar**	18	17	94
	Total borrower	103	75	72.81
	Total farmer	140		73.58

Source: Field Survey

Graph No.1 Graphical Representation of Farmers borrowing loan

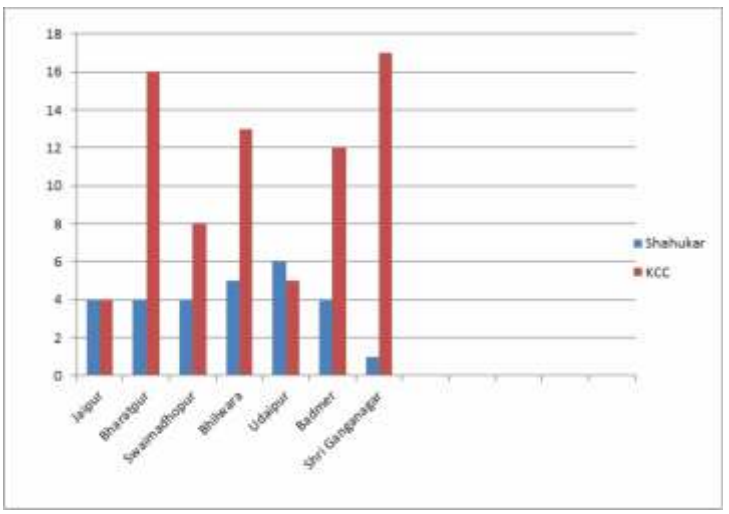

Graph No. 2

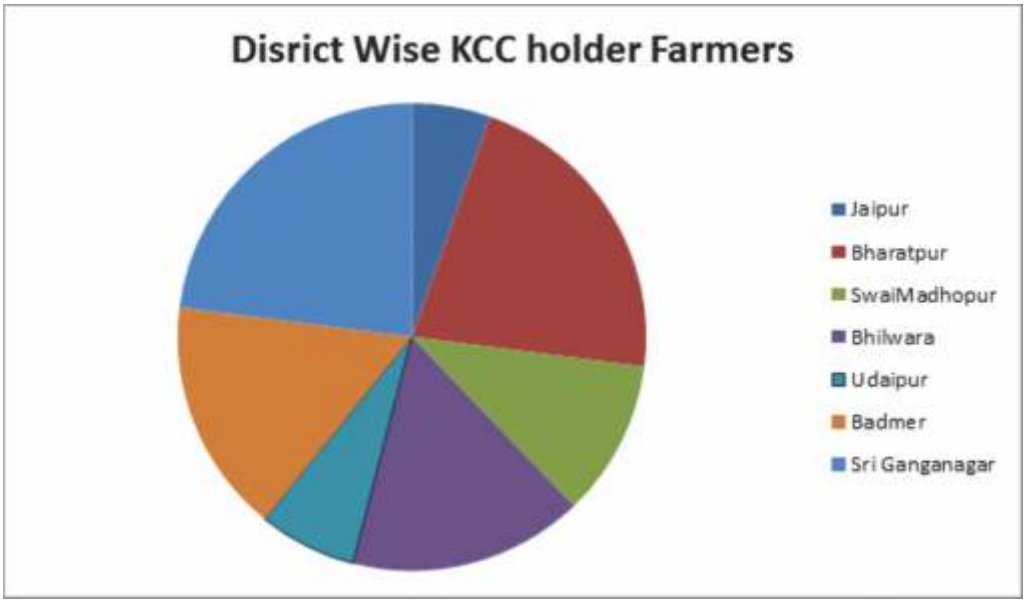

Graph No.3 Behaviour Of bank Employees.

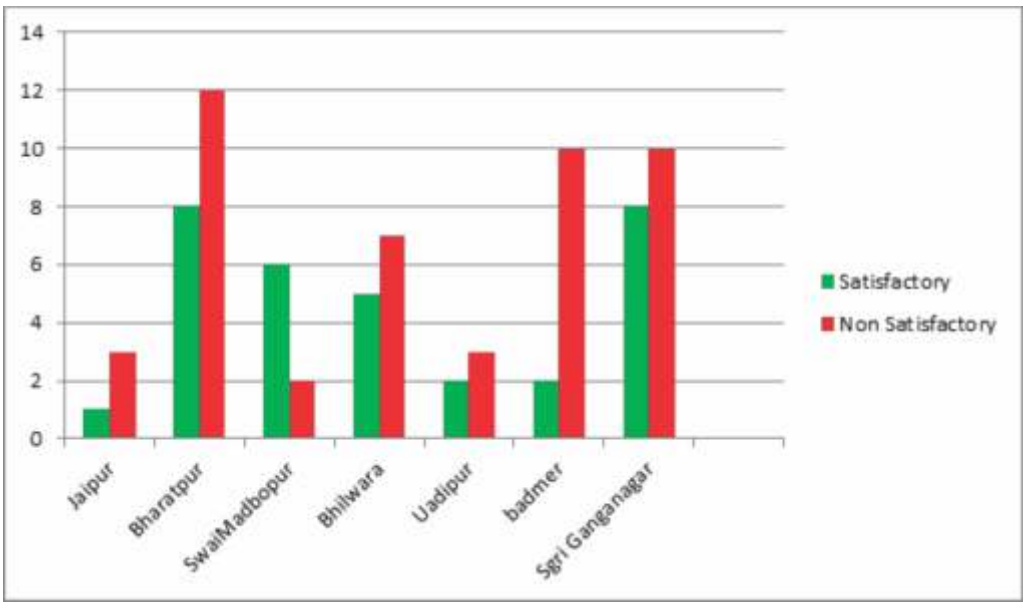

Groundwater Resource Potential of Luni River a Hydrogeological Study

Dr. Asha Rathore
Assistant Professor, Jainarain Vyas University, Jodhpur

shodhshree@gmail.com

Abstract

The economic and demographic development of the Luni Basin area is intimately related to water resources specially ground water resources. Considering the meager amount of surface water resources and their imbalance distribution. It is only through the exploitation of ground water that the vast demands of water can be met with. The main source of recharge of ground water is rainfall. 80% to 90% surface runoff occurs in rainy season which results in infiltration of ground of the total rainfall only a small fraction becomes ground water rest of the water lost through evapotranspiration, run-off and soil moisture.

Keywords: *Aquifer, Groundwater, Run-off, Infiltration, Water Recharge, Salinity of Water.*

Water has been one of the most scarce resources of Western Rajasthan. The availability is governed mainly by amount of rainfall received .The topography, soil, slope, geology are the important factors which determine the degree of obliquity of ground water. The ground water resources are distributed throughout the Luni Basin but available at different depths. Many reserves lack viability to exploitation owing to high degree of saline contents. The river Luni has its source in the Aravalies about 11 kms north-east of Ajmer town and is formed by the confluence of the rivers Sagarmati and Saraswati near Govindgarh.The basin is bounded by the Aravali ranges running north-east to south-west direction cross the State in south by Rann of Kutcch and in west and north by Indus basin covering an area of 60120 sq.kms lying between 24° 36' 35.67" to 26° 46' 07.31" North latitude and 70° 59' 33.03'' to 74° 42' 18.45'' east longitudes .

Methodology : On the basis of hydro geological investigations the quantity and quality of ground water is recharge is studied .This study is done on the formation of the rocks and their ability increase the ground water. For this purpose the different types of hydro geological formations studied .The depth depend on the types of rocks. This study is based on the primary and secondary sources from government department reports and data pertaining to ground water resources. The investigations carried out by the departments have indicated a large exploitable potential of ground water in the Luni basin of Indian Desert.

Result and Discussion : The Luni River Basin is mainly covered by rocks belonging to the Pre-Cambrian rocks (Delhi Super Group) to Aeolian and fluvial deposits of Recent to Sub-Recent age.Vindhyans are represented here by Jodhpur, Bilara and Nagaur group of rocks.

1 .Occurance: Generally, ground water occurs under water table condition. However, in deeper aquifer semi confined to confined conditions are also observed. Similarly increase of wells tapping, crystalline,

semi confined conditions occurs due to inclined joints, depending on the difference in water holding capacity of rock formation.

(a) Pre-Aravalli Granite : Ground water occurs in the zone of weathering in secondary openings of rocks. These rocks have very limited occurrence, covering an area of 179 sqs kms . i.e 0.51 percent of the total area and occurs adjacent to main Aravalli in a scattered manner and do not form an important aquifer. A few dug wells pumping tests are likely to be conducted during field season. The depth of wells in these rocks ranges from 17 to 15 mts . These are not good aquifer and generally dug wells fail to yield sufficient quantity of water.

b) Aravalli Slate Phyllite and Schist : The bulk of the aravalli aquifers occurs accord Sojat which form a central point and from here it extend in all directions covering 11705 sq kms i.e 28.57 percent of the total area of the basin. It also occurs in detached pockets in north and south eastern parts. groundwater in these rocks circulate along bedding planes, joints , fractures and other wear planes, which do not appear to extend beyond 60 m depth in most of the area. It is because these formations are soft in nature and fractures, joints do not extend beyond this depth.The yield 0f wells in these rocks depends on the number, width and spacing of joints below the zone of saturation.

(c) Delhi System (Calcoschist and Gneisses): These aquifers are found in Ajmer and pisagan area and extend in north east to south west directions. They cover 343 sq kms which is one percent of the total area of Luni basin. Circulation of groundwater takes place along foliation places joints, fractures and fissures. Because of presence of fine foliation and cleavage, the water holding capacity of these rocks is high but because of the poor development of joint, yields of wells remains moderate.

(d) Granites (Erinpura, Jalore and Siwana): Granite aquifers cover nearly 7559.38 sq kms i.e 22.68 percent of the total area. Groundwater in granite occurs within the zone of weathering, which may extend up to 30m or less. The greater thickness of weathered mantle, greater yield of dug wells have been observed. l the other important water bearing receptacle along which groundwater circulation takes place are joints and fractures. The important water bearing zone generally lies within 15 m depth below water level. Therefore the yield of wells in these aquifers depends on the number, width and spacing of joints and permeability of mantle below water table.

(e) Rhyolites : Their occurrence is limited. Their cover an area of 694 sq kms which is two percent of the total area of Luni Basin . Groundwater in rhyolites circulates along joints sheeting and other secondary partings. Secondary openings are generally wider on surfaces due to weathering but shows thinning tendency in depths consequently retarding deeper circulation of groundwater in this formation.

(f) Sandstone : Aquifer of sandstone have very limited extent around Boruda and small patch at Gharniya village, it covers an area of 132.69 sqkms which is 0.38 percent of the total area of the basin. Groundwater occurs in joints and other secondary openings. The sandstone is permeable and contributes water to wells.

(g) Limestone: These forms are important aquifer of the luni basin although very limited in its extent. They occur in an area of 633.56 sq kms i.e 1.82 percent of the total area of the Luni Basin . The aquifer extents from North of Sojat through Bilara up to Borunda. Groundwater in this aquifer occurs in fractures, joints and solution channels. However the net permeability in this aquifer is low.

(h) Older Alluvium : It is the most extensively cultivated and highly drafted aquifer and covers 31.55% of the total area which 10999.37 sq kms of the Luni Basin. The groundwater circulates through pores in the zone of saturation.

Wherever clayey formation predominates, permeability becomes poor and consequently the yield of wells decreases.

(I) Younger Alluvium and Wind Blown Sand : It does not form an extensive aquifer system in the basin, but it is of great importance as water bearing horizon. It covers 6454.44 sq kms which is 18.5% of the total area of the basin. Circulation of groundwater takes place through pore spaces. It is more permeable than older alluvium because it contains mostly coarse and gravels. As its occurrence is confined along the ephemeral river, it receives recharge and well stepping. This formation generally helps hydraulic connection with the river bed and hence the yield of river beds normally constantly high than other aquifers. Windblown sand occurs on the surface and generally forms sand dunes aligned parallel to prevailing wind direction. They are quite permeable and absorb much of the rainfall quickly and contribute to groundwater.

TABLE 1

Acquifer in Potential Zone	Description of The Unit / Occurrence
Younger Alluvium	It is largely constituted of Aeolian and Fluvial sand, silt, clay, gravel and pebbles in varying proportions
Older Alluvium	This litho unit comprises of mixture of heterogeneous fine to medium grained sand, silt and kankar.
Limestone	In general, it is fine to medium grained, grey, red yellowish, pink or buff in color.
Tertiary Sandstone. Nagaur & Jodhpur Sandstone	Buff to reddish brown in color, fine to medium grained hard and compact sandstone. Medium to coarse grained, consolidated to semi consolidated sandstone
Aravalli Slate , Phyllite and Schist	These include meta sediments and represented by carbonaceous phyllite
Schist	Medium to fine grained compact rock. The litho units are soft, friable and have closely spaced cleavage
Rhyolite	Rhyolite is porphyritic and has phenocryst of quartz and feldspar.
Pre Aravalli Granite Granite, Granite Jalore , Erinpura and Siwana	Light grey to pink colour, medium to coarse grained, and characteristically have porphyritic texture. Grey to pink in color, medium to course grained and non porphyritic.
Delhi System (Calcoschist and Gneisses)	Comprises of porphyritic and non porphyritic gneissic complex.
Non Potential Zone (Hills)	Hills and reserve forests

Source RGWD, 2015

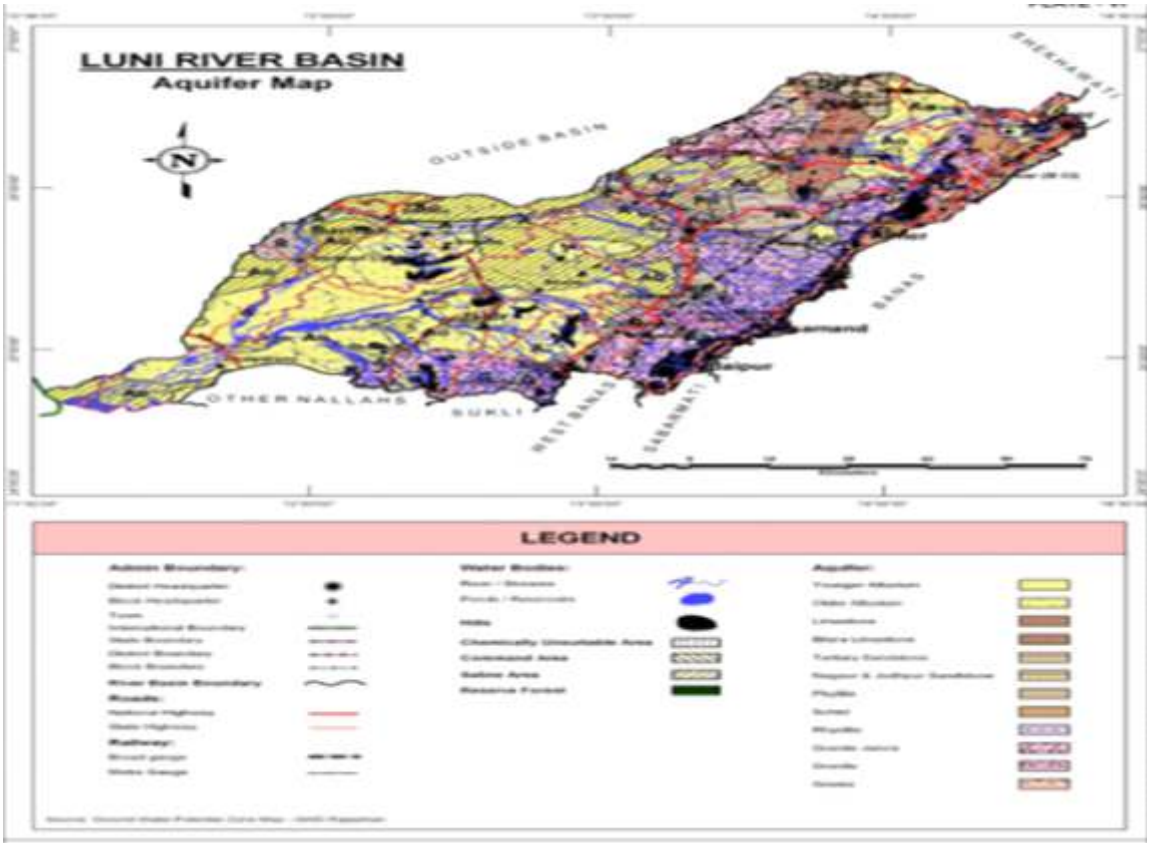

2. Chemical quality of ground water in Luni Basin: The ground water in Luni Basin has a typical chemical characteristic, indicative of climatic influence, comparatively of fresh type near watershed area near Ajmer but gradually getting saline as it moves westwards. It acquires a highly mineralized character near Balotra.

The electrical conductivity of ground water indicates that saline water with more than 8000 EC values occur in parts of Sojat, Luni, Pali, Rohat, Ahore, Jalore, Balotra, Bhinmal and Sanchore blocks covering mostly northern, north-western and western part of basin. Thus posing an acute problem of drinking water supply. However, ground water in Raniwara, Jaswantpura, Abu, Sirohi, Bali, Raipur, Jaitaran, Bilara and Beawar blocks is fresh to tolerable quality. Chemical data further indicate that the chemical type of water is changing from bicarbonate type to mixed and finally to chloride type and getting gradually mineralized with the change in type.

Saline waters have high values of both chloride and sulphate salts of sodium. Some have shown high value of nitrate also .High values of fluoride are observed in many wells of Jalore, Ahore, Kharchi and Sirohi area. Most of the wells represent weathered zone as a water bearing formation. Water

representing the formation is mostly sodium bicarbonate type, softened waters, having moderate to high fluoride values. Defluorication of these fluoride rich waters is desired in the area for utilizing them for drinking purposes. The effects of fluoride are well noticed on the population of the area.

In most of the area where only saline waters are available, local farmers are utilizing it by keeping the land fallow for a year or two depending on the salt build-up on the soils. However, based on the systematic scientific approach and improved irrigation practices it has been found that saline waters up to 8000 (micro/simns/cm at 25) EC value can be successfully utilized on sandy soils by growing salt tolerant crops. Kharchia is well known highly resistant variety of wheat crop which can withstand salinity up to 12000 EC.

The sodium bicarbonate type is a tolerable quality but creates problems of alkanility when used for irrigation. Their effects can be countered by applying gypsum on the soils. Gypsum further helps in maintaining good tilt in the soils. It is inferred from the above that water, whether saline or alkaline, can be used for irrigation and drinking with proper understanding of involved aspects.

Conclusion

The inevitable occlusion which is led by this discussion is that expert opinion about the quality and quantity of water potential point to a limited possibility of its large scale exploitation .There is, however, ample evidence in favor of the fact that the supply of water in most of the wells is precarious and susceptible to failure. But it is safer not to take established regional refecration seismic surveys in order to have a more exact evaluation of the surface and ground water resources of Luni Basin region.

References

1. *Chatterjee P.C. & Singh Surendra . Geomorphologic studies for exploration of groundwater in Rajasthan desert.*
2. *Chatterjee Rana. Groundwater management – Rajasthan perspective.*
3. *Department of Irrigation, Jodhpur.*
4. *Groundwater Department, Jodhpur.*
5. *Ojha D.D. & Sharma S.K. Mitigation of water quantity and water quality challenges in groundwater of Rajasthan.*
6. *Narayan P, Khan M.A & Singh G .Potential for water conservation and harvesting against drought in Rajasthan, India.*
7. *Tripathy B.M. Exploration for unconvential aquifers - A feasibility study in Western Rajasthan based on information from drilled wells of ONGC.*
8. *Rathore Asha 1993: Spatial Patterns and Problems of Water Supply in Western Rajasthan, PhD Thesis*
9. *Hydro geological Atlas of Rajasthan*

Study of Models of Urbanisation Relevant to The Growth of Cities in Rajasthan

Dr. Jaya Bhandari
Assistant Professor, Jainarain Vyas University, Jodhpur

shodhshree@gmail.com

Abstract

"Urbanisation is not an isolated culture trait but is a function of the total economy, its rapid growth indicates that fundamental changes are occurring at a rate sufficient to transform these pre-industrial societies within a few decades." Urbanisation has a positive relationship with industrialisation and negative relation with agricultural density. High agricultural density indicates the lack of modernisation in agriculture which ultimately results into low percentage of urban population. Census definitions round the world draw a clear line of demarcation between rural and urban place. In gone days, urban settlements stood out distinct and clear, often surrounded by walls, beyond which it was all countryside. But today the criteria used to distinguish the 'urban' from the rural' vary widely from country to country and sometimes with in the same country from time to time. The definition adopted are indeed diverse based on one or more such actors do administration status, population size and density, occupational patterns and land use and other characteristics associated with towns and cities. More commonly however urban settlement are distinguished from rural ones based on their number of inhabitants. The threshold defining urban localities varies from place to place and overtime. Urbanisation refers to a rise in the proportion of total population that is concentrated in urban settlement. "Urbanisation', we can say is a transition from dispersed pattern of human settlement to one concentrated around cities and towns. It is finite process experienced by all the nations in the transition from an agrarian to an industrial society. In other words, it is a process of human settlement that arises from the polarisation of economic development in urban areas. Urbanisation is a process of population concentration. It proceeds in two ways; the multiplication of the points of concentration and the increase in the size of individual concentration India has multiple criteria combining occupational and other characteristics with the size of the population.

Keywords: *Urbanisation, Industrialisation, Agricultural Density, Population, Occupational Patterns, Land Use, Polarisation, Economic Development.*

A model is more important than a mere temporal study as, it enables us to state the cause-and-effect relationship between the variable. These variables can be of three types.

- Policy variables which can be controlled and directed
- Non-policy exogenous variables
- Endogenous variables

The presence of endogenous variable as a causative variable necessitates building up of simultaneous

equation model. Mehta and Mehta (1991) have developed the demographic economic interaction model and they have found that the system turns out to be recursive and hence OLS provides good estimates. A linear structural model relating urbanisation to various indicators of agricultural, industrial and infrastructural variables it therefore, proposed and specified. We are just discussing the models in the pure theoretical framework.

(A) Degree of Urbanisation Models

Degree of urbanisation is expressed as the percentage of total population of a country, a region, or a state, which lives in urban centres. Degree of urbanisation represents a cumulative phenomenon. it is the sum of the past growth "Hence, differences in it must be explicable at least partially, by the geo-physical, climatic and human habitation conditions, which affect the rural-urban distribution of the population"

Historically, urbanisation has been associated with economic development. Urbanisation is natural consequence of economic change that take place, as a country develops; certain activities are better performed in, indeed require, settlements with agglomerations of people with high densities." (Mohan, Rakesh; 1985; 619). Net out migration from rural areas is urban areas is higher in developed

regions. Places with higher level of economic development, therefore, show higher level of urbanisation since, they have large pull effect and smaller push effects.

Economic development is the result of progress in the various sectors of economy infrastructure, agriculture, industry and social and economic services. Hence, the urbanisation depends upon indicators of development. These indicators are discussed below:

1. Geo-Physical Conditions And Urbanisation

In examining the factors promoting urbanisation, the geo-physical factors i.e., the availability of water and climatic conditions play an important role. Physical factors including climatic, draught and famine force people to seek alternative living environment:

(i) Normal Rainfall: In special conditions of Rajasthan, rainfall being scanty and uncertain, people try to concentrate around sources of easy and assured water supply. In such a case, normal rainfall may have negative impact on urbanisation. This is especially true of the arid and semi-arid districts of Rajasthan. It is thus expected that the districts in desert and semi-desert areas will show higher degree of urbanisation.

(ii) Coefficient of Variability in Rainfall: The districts where rainfall is uncertain and show much variability, the people from such places will migrate to places, where the variability is less. These may be Oasis or Urban areas with water supply schemes. Hence, these areas will grow faster than other areas. Both these variables are of special importance in the state of Rajasthan.

(iii) Number of Bad Years in The Decade: From the districts which have consistently experienced less than normal rainfall and consequent drought conditions, people will migrate to places where drinking water supply is assured and some kind of employment or shelter can be

found, some of these temporary migrants may ultimately decide to settle there. This will affect the extent of urbanisation. There are three possible situations; In case of the failure of rainfall, crops fail, and migration is from:

(a) rural areas of one district to rural areas of another district.

(b) rural areas to urban areas of the same district.

(c) rural areas to urban areas of the other district.

When people migrate from rural areas to seek work in agriculture and maintain their livestock migrations from rural areas of the district, experienced draught conditions to rural areas of other districts. In this case, the urban population will not be affected. People migrating from rural areas to find jobs in non-agricultural sector will migrate to nearest urban areas, which are usually in the same district. In this case, the level of urbanisation of the district will increase. When people migrate from the district experiencing draught conditions to other districts, the urban population of these districts will also increase.

(iv) Average Size of Holding:

In normal conditions, large average size of agricultural holdings would indicate abundance of land and therefore, weaker push effect on rural population. However, in special conditions of Rajasthan in arid and semi-arid regions, large size of holding indicate harshness of nature. Hence average size of holding can be taken as a proxy for adverse geo-physical and climatic conditions. Thus, the holding (Pull) power of agriculture on rural population is rather weak. A positive relationship is thus expected in as of Rajasthan.

2. Infrastructural Facilities and Urbanisation:

The infrastructure facilities play a critical role in pulling migrants from rural areas: "Public services play an important role as intermediate inputs and thus, an indirect role private production activity." it assumed that the provision of infrastructural facilities in biased in favour of urban industries and households thus, conforming to Micheal Lipton and Nathan Kevfitz's urban bias theory Following are the indicators that seem to cause urbanisation.

(i) DENSITY OF ROADS (Per 1000 Square Kilometer):

"Migration accelerates with growth in the means of transport and communication"& the variable density of roads reflects development in transport and communication. It is, thus, expected to have positive impact on the level of urbanisation

(ii) Density of Railways (Per 1000 Square Kilometre)

"The Railways have played a vital role in the industrialisation and Urbanisation of the country. Railway's revolutions of the entire trade and commerce, make possible the speedy movement of heavy effluence, providing the necessary background for the establishment of heavy industries."

(iii) Number of Commercial Banks (Per 1000 Square Kilometre)

Proximity to banking facilities and its concentration in some districts contributes to the drainage of saving generated from the countryside and other districts and to their districts.

(iv) Per Capita Plan Expenditure:

Government expenditure generally is biased in favour of urban areas. This bias in favour of city areas have created a disparity between country and city, with respect to consumption, wage and productivity levels. Thus, the districts where per capita plan expenditure is greater, greater will be the proximity to government offices. These districts will have greater pull effects. People from rural areas within the district and from other districts will migrate to such districts and, therefore, level of urbanisation will be higher there.

(v) Institutional Agricultural Infrastructure:

Two indicators of institutional infrastructure have been taken (a) Number of agricultural non-credit societies per lakh of population and (b) Number of agricultural credit societies per lakh of population.

The presence of agricultural non-credit societies shows agricultural development which means that push factor is less effective and hence, low urbanisation. The relationship may also be the other way round because the non-credit societies relate to marketing processing, service societies etc, which has linkages with urban centres. Similar is the case with the number of agricultural credit societies.

3. Agricultural Development and Urbanisation:

Agricultural development is closely associated with the rise in agricultural incomes, the two are rather synonyms. With the rise in income each family employed in agriculture would like to diversify in jobs and this send its people in other jobs, which accelerates urbanisation. "The most promising avenue of rural development for stemming out migration seems to be one of increasing the returns to formers." However, Engel demand effects are noticeable even at relatively low levels of income. As per capita income rises, the increases in the proportionate demand for the non-food goods accelerates. Consequently, the demand for labour for non-agricultural activities increases and this heightened

demand for labour stimulate urbanisation"

The following indicators in reference to agricultural development have been taken:

(I) Irrigation:

"Irrigation is the crucial inputs in agricultural production, more so, in the present technological transformation of traditional agriculture." Two indicators of this aspect of agricultural development have been taken (a) gross area irrigated per cultivator and (b) Irrigation intensity, as defined by the proportion of gross area irrigated to net irrigated area. The two may be positively or negatively related to level of urbanisation depending on whether agricultural development is in its initial stage or advanced stage.

(ii) Consumption of Fertilisers Per Ten Hectares of Cropped Area.

"Fertiliser Is another critical input in the seed fertiliser - irrigation trio of inputs. The importance of fertilisers in increasing agricultural production and income of rural masses, has now been universally recognised." It is expected that agricultural development will affect urbanisation.

(iii) Per Capita Consumption of Electricity In Agriculture:

"The extent of rise of electric power in agriculture is also one of the indices of intensification of agriculture as, electric power is mainly used in lifting of water for irrigation in agricultural sector, in addition to its uses in threshing and winnowing of produce and chaffing of fodder." This is the basic infrastructural facility conducive for faster rate of agricultural development.

(iv) Commercialisation of Agriculture:

This is measured by percentage of cropped area under commercial crops. High percentage indicates high agricultural development Also, commercialisation of agriculture means emergence of capitalism in agriculture. More surpluses will be generated, and the agriculturists will, therefore, try to diversify as in case of Punjab, Proletarianization of rural labour force may lead to migration from rural to urban areas. Industrial development will take place and new urban centres will develop. The process is, however, weak in Rajasthan at present.

(v) Agricultural Density

The structural causes of urbanisation in the third world are embedded in rural structures as well as in urban attractions. "In underdeveloped nations adverse

rural conditions often stem from rapid population

increase. Rural populations can respond to rapid population increase in three ways: emigration (movement to urban areas); frontier development (cultivation of additional land) and/or agricultural evolution (further subdivision of presently cultivated land). According to

many observers, emigration is a common response. The ability to make a living in most rural areas in the third world, is lied to the availability of arable land. Where agricultural density is high Families are large, farmers cannot afford to subdivide the land for their Children Additional land must be brought under plow, but such land is not always available under such circumstances, some of the population will be displaced and will measure of agricultural density used by fire bough is number of agriculturally employed males per square kilometre of arable land

(vi) Productivity of Land in Agriculture:

The rise in land productivity (measured by agricultural output per hectare of cropped area) may have positive or negative effect on urbanisation on one hand. It creates employment opportunities for agricultural labourers, preventing them from out migrating from rural areas. "Perhaps most important is the impact of advances

in agricultural productivity on employment prospects for agricultural labour." Effects on migration are likely to vary somewhat, according to whether the advances are labour saving or labour using and with elasticities of demand for the product in question on the other hand, rise in effect an urbanisation through increase agricultural incomes.

(vii) Productivity or Labour in Agriculture

"A recent review cites evidence that improvements of labour productivity, in the production of basic food stuffs are likely to accelerate rural out migration because of deterioration produced in the terms of trade of these products." With the steady rise in agricultural incomes, leading to the growth of industries and consequent urbanisation.

References

1. *Davis, Kingsley and Golden, Hilda Hertz: Urbanisation and the Development of Pre-industrial Area, in cities and Society, P.126*
2. *Dhar, V.K 1987: "Urbanisation its regional Dimensions" Yojana Vol 31, No. 11, June 16-31 P.14.*
3. *Rogers, Anderi; 1982 "Sources of urban population growth and urbanisation 1950-2000. A Demographic Accounting" Economic Development and cultural Change Vol 30, 3, April.*
4. *Ledent, Jacques; 1982: "Rural urban migration, urbanisation and economic development" and cultural change, Vol. 30, No. 3, April P. 509.*
5. *Bose, Ashish 1978: "India's urbanisation 1901-2000". New Delhi: Tata McGraw Hill. P.1-30.*

6. *Adopted from unpublished Ph. D thesis, submitted to MLS Univ., Udaipur*
7. *Bawa, K.S, and G.S. Kainth 1985: "Why this rush towards cities", Yojana, Vol. 29, No. 13, Jul 16-31, P. 15*
8. *Preston, Samuel H. "Urban Growth in Developing Countries: A Demographic Reappraisal," Population and Development Review, Vol. 5, No.2, June.P-197.*
9. *Mohan, Rakesh 1985: "Urbanisation in India's future," Population and Development Review, Vol. II, No. 4 Dec. P.619.*
10. *Mulik, Atmaram D 1989: "Dynamics of urbanisation: A Geographical Perspective," Himalaya Publication House. P. 11.*
11. *Todaro, Michael 1976: "Internal Migration in Developing Countries Review of theory, evidence, methodology and research priorities, ILO Geneva. P.11.*
12. *Mehta, B.C: 1978: Regional Population Growth: A case study of Rajasthan," Research Book: Jaipur. P.78.*
13. *Becker, Mills and Williamson: 1986 "Modelling Indian Migration and City Growth 1960-200". Economic Development & Cultural Change, Vol 35, No. 1, Oct. P3,*
14. *Oberoi A.S, and H. K. Manmohan Singh: 1983 "Causes and Consequences of Internal Migration (A study in Indian Punjab)", Oxford University Press P 25*
15. *Saxena Sudha 1970: "Trends of Urbanisation in Uttar Pradesh," Satish Book Enterprise. P.56,*
16. *Brutzkus, Eliezer' 1975: Centralised versus Decentralised Pattern of urbanisation in Developing countries; An Attempt to Elucidate a Guideline Principle* Economic Development and cultural change Vol.23, No.4, July P. 637.*
17. *Lipton, Micheal 1977: Lipton Micheal "Urban Bias Revisited" Journal of Development studies, Vol. 20 No 3, P.145.*
18. *Preston, Samuel 1979: "Urban Growth in Developing countries: A demographic Reappraisal" Population and Development Review, Vol. 5, P. 211-212.*
19. *Mohan, Rakesh 1985; "Urbanisation in India's Future," Population and Development Review, Vol. II, No. 4 Dec. P.620*
20. *Agarwal N.L. 1986: "Problem and Prospects of Agricultural Development in Rajasthan" Rajasthan Economic Journal. 10. No.2 July. P. 47.*
21. *Agarwal N.L; 1986: "Problem and Prospects of Agricultural Development in Rajasthan" Rajasthan Economic Journal, 10. No.2 July. P, 49*
22. *Agarwal N. L, 1986: "Problem and Prospects of Agricultural Development in Rajasthan" Rajasthan Economic Journal, 10. No.2 July. P. 48-49*
23. *Preston, H.S. 1979: "Urban Growth in Developing countries: A Demographic Reappraisal" Population and Development Review, Vol 5, No. 2, June, P.211*
24. *Stark, Odeb 1976: " Rural to urban migration and some Economic Issues: A Review utilising finding of surveys and Empirical studies covering the 1965-75 period," ILO world employment working paper, WEP2-21/WP38 May.*
25. *Gaude Jacques 1976: "Causes and Repercussions of Rural Migration in Developing Countries: A Critical Analysis", ILO, World Employment Programme Working Paper WEP/10- 6/WP 10: Oct.*
26. *Sahai, Kusum; 1986: "Urbanisation in Madhya Pradesh Problems and Issues," Indian Journal of Regional Science, Vol. XVII, No.1. P.45*

A Study of Sports Psychology of Players

Jugnu Khan
Research Scholar, B.N. University, Udaipur

Dr. G. S. Chouhan
Assistant Professor, B.N. University, Udaipur

shodhshree@gmail.com

Abstract

The pressures and tensions resulting from fast life have placed additional demand on our physical fitness. Adjust or perish is the law of nature. Therefore, in order to adjust ourselves to the changing demands of the times, we must improve our physical fitness levels. Growing cases of high blood pressure, heart failures, depression and cancer etc. are indicators which prove that we lack in our physical capacities to face such ailments. Growing pollution, malnutrition and population explosion have put additional pressures on our physical fitness. The need to lay more emphasis on physical fitness levels in the modern life style of survival achieving wellness or good health is the biggest challenge among the entire population of the country. On the basis of research studies, news paper publications and survey research it was concluded that majority of the population are not active enough and that leads to one of the major causes of spreading non-communicable diseases. In India presently 30 crore people are suffering from diabetes and 20 crore people are suffering from heart problems. It was estimated that almost 57.2 million people will be affected by diabetes by the year 2025. The most significant components of wellness are balance diet, positive attitude, proper rest and regular exercises. But once again on the basis of research study it was concluded that it's very difficult to get nutritious food and balance diet, hardly possible to have stable mind with positive thoughts and to give complete rest to the body in this cyber age is a great task. In fact all these three factors are definitely uncontrolled and these are human limitations. Only the component regular physical exercise seems to be under the control of human beings and within the reach of every category of the society that too with least expense or even no expense. It was analyzed that regular physical exercise not only prevents from non-communicable diseases like obesity , diabetes, high blood pressure, stroke , depression, heart diseases, respiratory problems etc.; but also helps to maintain a good health and plays a vital role for the economical growth of the nation.

Keywords *: Sports, Psychology, Players, Motivation, Scientific.*

Psychology is the scientific study of human or other animal mental functions and behaviors. In this field, a professional practitioner or researcher is called a psychologist. Psychologists are classified as social or behavioral scientists. Psychological research can be considered either basic or applied. Psychologists attempt to understand the role of mental functions in individual and social behavior, while also exploring underlying physiological and neurological processes.

Basic research in psychology includes perception, cognition, attention, emotion, motivation, brain functioning, personality, behavior, and interpersonal relationships. Some, especially depth psychologists, also consider the unconscious mind. Psychologists employ empirical methods to determine causal and correlational relationships between psychosocial variables. In addition, or in

opposition, to employing empirical and deductive methods, clinical psychologists sometimes rely upon symbolic interpretation and other inductive techniques.

While psychological knowledge is typically applied to the assessment and treatment of mental health problems, it is also applied to understanding and solving problems in many different spheres of human activity. The vast majority of psychologists are involved in clinical, counseling, and school positions, some are employed in the industrial and organizational setting, and other areas[1] such as human development and aging, sports, health, the media, legal, and forensics. Psychology incorporates research from the social sciences, natural sciences, and humanities.

No training in the sports field is complete without reference to the psychological study and psychological training of athletes. All other factors-biological and sociological being equal, psychological conditioning of an athlete decidedly determines his success or failure of competition.[1]

Physical Education is a psycho social field. It has both psychological and social dimensions; it has both psychological education and technical aspects. In this modern era of competition, the psychological preparation of person is an much important as teaching the different skills of a game on the scientific lines.[2]

Sports psychology is primarily interested in the analysis of behavior of sportsmen. Sportsmen are those who go into play field and play some game with the aim of higher competition in that particular game Sports psychology in many ways is a fortunate scientific field of enquiry. Researchers are afforded ample opportunity to observe describe and explain the various psychological factors that influence diverse aspects of sport and physical activity. Athletes and coaches have often described the crucial "Psychological factor" that results in a momentum shift during a game, or explained in important loss on the road as a function of the influential force of game location. While these "arm chair" opportunities are often afforded to us the fact that sport psychology is viewed as a science mean that the process of observation, description and explanation must be conducted in a systematic, repeatable and valid manner. Science allows us to go beyond speculation or opinion that is based upon subjective experience. Through scientific methods we can test our hunches about new psychological factor influences sports performance or new sport participation may influence the athlete's psychological development.

Today performance in Sports not only demands systematic training to develop physical, physiological variable and technical aspect of Sports but also demands training and consideration of Psychological characteristics for success in this field.[3]

All Sport is psychological as well as physical because it is led by mental images and thought patterns, your head, as psyche or physical conditioning. It will, however allow you to draw the most from the conditioning you have. If you have trained more and better, your present capacity will be higher than if you have trained less or less well. However, regardless of what your psyche in order to get the most from what you have. You have to rely on your head, your thoughts images, and mental patterns act as the control mechanism. Negative thought is particularly effective for destroying skilled performance.[4]

Selection of Psychological Profiles

In this study following psychological profiles for investigation which will not only relevant but also closely related to the purpose of this study. Therefore based on literacy evidence, correspondence with the expert and scholars own understanding the Psychological variables (Aggression, Physical Self Concept, Social Self Concept, Temperamental Self Concept, Educational Self Concept, Moral Self Concept, Intellectual Self Concept, Sports Achievement Motivation, Attitude and Competition Anxiety) for this study.

Assessment of following questionnaires:-

a. Aggression level was meausred by the "Sports aggression inventory" standardized by A. Kumar and P. Shukla.

b. Achievement motivation level was measured by using "Sports achievement motivation test" standardized by Dr. M.L. Kamlesh.

c. Attitudes towards physical education questionnaire prepared by charles W. Edgington. Sports Competition Anxiety.

d. Competition anxiety test prepared by Roma Pal and Govind Tiwari's.

e. Self concept test prepared by Raj Kumar Saraswat.

The data was analyzed by calculating mean and standard deviation as a descriptive statistics. 't' test was employed to find out significant differences exist between psychological profiles of players of Rajasthan State. To compare the psychological profiles of National and Intra University level players of different sports categories, one way Analysis of Variance (F-ratio) was applied. In case of significant results, the Post-hoc (LSD test) was employed to find out the difference of paired group mean and the level of significance was set at 0.05 level of confidence.

There will not be any significant difference between outdoor and indoor games players of Rajasthan State on selected psychological profile, is partially accepted and a partially rejected. There will be no significant among outdoor and indoor games players of Rajasthan State on selected psychological profile, is partially accepted and few are partially rejected.

Conclusions

1. The psychological variables likes Physical Self Concept, Educational Self Concept, Intellectual Self Concept and Sports Achievement Motivation of games found statistically significant. Where as psychological variables likes Aggression, Social Self Concept, Temperamental Self Concept, Moral Self Concept, Attitude and Competition Anxiety of games was found statistically insignificant.

2. The psychological variables likes Aggression, Social Self Concept, Temperamental Self Concept, Educational Self Concept and Intellectual Self Concept of was found statistically significant where as no significant different were found in other psychological variables.

3. The psychological variables like Educational Self Concept, Intellectual Self Concept and Sports Achievement Motivation found statistically significant. Where as psychological variables like Aggression, Physical Self Concept, Social Self Concept, Temperamental Self Concept, Moral Self Concept, Attitude and Competition Anxiety of was found statistically insignificant.

4. The psychological variables likes Sports Achievement Motivation of was found statistically significant, Where as psychological variables likes Aggression, Physical Self Concept, Social Self Concept, Temperamental Self Concept, Educational Self Concept, Moral Self Concept, Intellectual Self Concept, Attitude and Competition Anxiety was found statistically insignificant.

5. There were no significant difference found in psychological variables likes Aggression, Social Self Concept, Temperamental Self Concept, Moral Self Concept, Sports Achievement Motivation, Attitude and Competition Anxiety.

Recommendation

In the light of the conclusion drawn the following recommendations were made:-

(i) A similar study may be conducted with different Psychological profiles.

(ii) The study may help coaches and physical education teachers in developing systematic and scientific training programmes.

(iii) Further investigations including other psychological profiles may contribute some new findings.

(iv) As results were discussed with experts it is recommended that care should be taken while conducting similar study especially for sampling process and prescribing test programme.

References

1. *M.L. Kamlesh, Psychology of Physical Education and Sports (New Delhi: Metropolitan Books company pvt. Ltd., 1983), p. 17.*
2. *John. M. Milva and Robert S. Weinberg Psychological Foundations of Sport, (Champaign Illions: Human Kinetics, Publishers Inc. 1984) PP 1-2.*
3. *Brayant J. Cratty, Psychology and Physical Activity (Engle wood cliffs, N.J. : Prentice Hall Inco. 1968), P. 15.*
4. *Terry Orlick, Psyching for Sports (Illinois: Leisure Press, 1986), P. 90.*

A Comparison of Self Concept, Mental-toughness and Mood Status Players

Purohit Sheetal Satish
Research Scholar, B.N. University, Udaipur

Dr. Preeti Kachhava
Assistant Professor, B.N. University, Udaipur

shodhshree@gmail.com

Abstract

The purpose of the study was to compare, Self Concept Aggression, Mental Toughness and Mood Status between Male and Female Volleyball players. One hundred forty four intervarsity players were selected as subject. Seventy two male and seventy two female volleyball players were selected for the study. The age level of the subjects ranged from 19 – 27 years. The self-concept scores of the subject were obtained by using Self-Concept Questionnaire (SCQ) by Dr. Raj Kumar Saraswat. The Mental toughness scores were obtained by using Questionnaire of Allen Goldberg. For Mood status the 24 items comprises the fallowing 6 subscales: Anger, Confusion, Depression, Fatigue, Tension, and vigour. Each subscale contains 4 items. When responses from the four sub items in each subscale are summed, a subscale range score in the range 0-16 is obtained.

Keywords*: Self Concept, Mental-Toughness and Mood Status.*

By nature human beings are competitive and ambitious for the excellence in all athletic performances. Not only every man but every nation wants to show their supremacy by challenging other Individual, state, group or nation. This challenge stimulates, inspires and motivates the entire nation to strive for faster, higher, and further. It compels to exaggerate, strength, endurance and skills in the present competitive sports world.

Sports involve extremely complex behavioral issues. As a consequence of intense competition sportsman's behavior may undergo important changes. Physical education scientists and coaches have not to be expert only in the matter of skill learning but also to be engineers who understand the mechanism of human behavior on the playfield, under extremely diverse situations. The modern sports training lays a greater emphasis on preparing the athletes psychologically than physically and thus lot of emphasis is being given to the psychological research dealing with psychological characteristics of the top level athletes, mental rehearsals of training task etc. Not only that, new field of psychology which has come up very fast and is still progressing in leaps and bounds is "Sports psychology". It has helped coaches to coach more effectively and athletes to learn more efficiently.[1]

No training in the sports field is complete without reference to the psychological study and psychological training of athletes. All other factors-biological and sociological being equal, psychological conditioning of an athlete decidedly determines his success or failure of competition.[2]

Physical Education is a psycho social field. It has both psychological and social dimensions; it has both psychological education and technical aspects. In this modern era of competition, the psychological preparation of person is an much important as teaching the different skills of a game on the scientific lines.[3]

Singh[4] has suggested that most of the coaches agree that the physical characteristic, skills and training of the players are extremely important but they also indicate the good mental preparation for competition,

which is necessary component of success. In western countries like Russia, G.D.R., Bulgaria, Czech and Islovakia much stress was given on the mental preparation of their international teams as well as on the psychological conditioning of their sportsman. A coach had the job of helping the athlete to find out his specific talents and factors for their fullest potential. This included developing not only the physical attributes but also his attitudinal motivation and psychological spirits.

Burnout is a state of emotional and physical exhaustion caused by excessive and prolonged stress. It can occur when one feel overwhelmed and unable to meet constant demands. As the stress continues one begin to lose the interest or motivation that led him to take on a certain role in the first place. Burnout reduces once productivity and saps human energy, leaving one feeling increasingly hopeless, powerless, cynical, and resentful. The unhappiness burnout causes can eventually threaten once job, relationships, and health.

As burnout doesn't happen overnight – and it's difficult to fight once the individual is in the middle of it – it's important to recognize the early signs of burnout and head it off. Burnout usually has its roots in stress, so the earlier one recognize the symptoms of stress and address them, the better chance to have of avoiding burnout. Burnout may be the result of unrelenting stress, but it isn't the same as too much stress. Stress, by and large, involves too much: too many pressures that demand too much of an individual physical and psychologically. Stressed people can still imagine, though, that if they can just get everything under control, they may feel better.

Burnout, on the other hand, is about not enough. Being burned out means feeling empty, devoid of motivation, and beyond caring. People experiencing burnout often don't see any hope of positive change in their situations. If excessive stress is like drowning in responsibilities, burnout is being all dried up. Burnout is most common in the workplace.

In the sport psychology literature, burnout is defined as a psychological, emotional, and physical withdrawal from activities. It may be that an individual withdraws from an activity for a length of time because there is no other perceived way to escape the situation and related stress. Stresses identified as being related to burnout are fear of failure, frustration, high expectations, anxiety, and pressure to perform. Characteristics associated with burnout include a physical and emotional exhaustion, negative affect, a lack of perceived accomplishment, a loss of concern or interest in an activity, and depersonalization. In one specific study investigating anxiety and burnout, examined the relationship between trait anxiety and coaching burnout among high school and college coaches. Results revealed that trait anxiety was the strongest predictor of burnout, and that actual time spent in coaching and leisure activities, sport type, competition level, and personal status were not related to burnout. Overall, female coaches reported greater levels of burnout than male coaches.

Self-concept prefers how a person views about his own/self. It consists of a number of psychological constructs which seems to be having more or less similar meaning. Personality traits like self-concept, self-assurance, self-assertiveness, self-esteem, self regard, self-consistency, selfenhancement, and self-respect are some of the manifestation of self-concept. In the case of players level of self-concept. According to Schendel (1983) athletes have high sense of personal worth and high self concepts which sense of personal worth and high self concepts which indicated that there is a relationship between positive self-concept and high achievement and negative self concept and under achievement. A low self concept gives rises to emotional problems. A clear knowledge of self concept gives rise to emotional problems. A clear knowledge of self-concept will lead a person to change or develop a more expectable and comfortable roles.[5]

Self-concept has physical, psychological, and social aspects and can be influenced by individual's attitudes, habits, beliefs and ideas.

The effect of self-concept serves as a powerful source of motivation also. Self-concept is learned by and individuals experiences. In fact individuals perceive about the feelings of others about him and his self image is affected. This idea has been including self-concept in the list of variables for this study.[6]

The discussion on mental toughness has been part of sport performance since the first two individuals decided to compete against each other. In the past 15 to 20 years however, interest in this issue has intensified. More and more athletes at all levels of ability are realizing that mental toughness is critical to their physical performance. Mental toughness means commitment - going to practice on a regular basis, prepared to work hard. It means you go for training runs on days when jogging is the last thing you want to do. Mental toughness is being part of the short corner defensive team with the attitude that, no matter what, the ball will not even reach the net. Mental toughness is the ability to remain completely focused and composed when you are part of the penalty stroke competition to decide a winner. Mental toughness is an attitude. You take it with you into every situation.

Method

The following criterion measures chosen to test the hypothesis were:

1. The self-concept scores of the subject were obtained by using Self-Concept Questionnaire (SCQ) by Dr. Raj Kumar Saraswat.
2. The Mental toughness scores were obtained by using Questionnaire of Allen Goldberg.
3. And Mood status scores were obtained by using BRUMS Questionnaire developed by Peter C. Terry and colleagues.

Findings

1. The hypothesis that there will be no significant difference between male and female volleyball players in relation to Self concept, Mental Toughness and Mood status was accepted only in case of aggression. However, the hypothesis was not accepted in case of Self concept, Mental toughness and Mood status.
2. Further, significant difference was found in case of Self concept, Mental toughness and mood between male and female volleyball players.

Recommendations

In light of conclusions drawn, the following recommendations were made:

1. Studies can be conducted on national and international level female volleyball players.
2. Similar study may be repeated by employing in large sample of students who are in other sports.
3. Similar study may be conducted by selecting other psychological variables.
4. A similar study of different age groups may be undertaken on national level players.
5. Research should be taken up to study physiological responses specifically to investigate specific hormonal and enzymatic responses of male and female because of different metal load or mood status.
6. Research may be taken up to investigate the physiological and biochemical responses of male and female volleyball players keeping in view different psychological variables.

References

1. *John. H.Llewellyn and Judy. A. Blucker, Psychology of Coaching Theory and Applications (Delhi: Surjeet Publications 1982), p.1.*
2. *M.L. Kamlesh, Psychology of Physical Education and Sports (New Delhi: Metropolitan Books company pvt. Ltd., 1983), p. 17.*
3. *John. M. Milva and Robert S. Weinberg Psychological Foundations of Sport, (Champaign Illions: Human Kinetics, Publishers Inc. 1984) PP 1-2.*
4. *Agyajit Singh, "Psychological Preparation for Competition SNIPES Journal (April, 1981):*
5. *Schendel (1983) "Psychological Differences between Athletes and non-athletes Participants in Athlete at three Education Levels, Research*
6. *Symond P.M. (1981). The Ego and Self, New York, appellation Century Crofts*

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Referred Journal)

ISSN 2277-5587 RNI No. RAJHIN / 2011 / 40531

Published by Dr. S. N. Tailor Foundation

Head Office : "SATYAM" Munot Nagar, Beawar - 305901

Branch Office : 54A, Jawahar Nagar Colony, Tonk Road, Jaipur - 302018

E-mail : shodhshree@gmail.com • Web : www.shodhshree.com

Individual Subscription Form

Name .....

Designation .....

Name of Organization .....

.....

Address .....

.....

District .....

State

.....

Pin .....

Tel. No. (R) .....

Mobile .....

e-mail .....

Date (Signature)

Frequency	:	Shodh Shree is Published four time in a year (Quarterly) i.e. January, April, July & October.
Mode of Payment	:	Subscription fee can be deposit through online Banking.
Bank Details	:	**DR S N TAILOR FOUNDATION** (A TRIBUTE OF LATE SHRI PARAS HEMENDRA G TAILOR) Union Bank of India, Beawar -305901 UB A/C No. 0326321010000001 **IFS Code :** UBIN0932639 • **MICR Code :** 305026014 **Account Type :** Current • **Subscription Fees :** 2000 Rs.

Membership No. ..... Date .....

(For Office Use only)

DECLARATION FORM FOR CONTRIBUTORS

I.....

hereby declared that the paper entitled'.....

.....'is unpublished original paper which is not sent any where for publication.

This paper is prepared by me/jointly with.....

.....which is exclusively for your journal entitle 'Shodh Shree'.

I/We will not demand any honorarium for the same expect one copy of the Journal in which this paper will appear. Please send copy of the Journal at the address of author whose name is appeared at first,

Copy right of matter is with Shodh Shree. I/We will not reproduce it in any other journal of book except prior permission of the Chief Editor.

Signature .....

Name .....

Designation .....

Official Address .....

.....

Residential Address .....

.....

.....

Phone No. ..... Pin No. .....

e-mail Address .....

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Referred Journal)

ISSN 2277-5587 RNI No. RAJHIN / 2011 / 40531

Published by Dr. S. N. Tailor Foundation

Head Office : "SATYAM" Munot Nagar, Beawar - 305901

Branch Office : 54A, Jawahar Nagar Colony, Tonk Road, Jaipur - 302018

E-mail : shodhshree@gmail.com • Web : www.shodhshree.com

Institutional Membership Form

The Editor
Shodhshree
Jaipur

Dear Sir
I want to become a member of this Journal for -

☐ 1 year	☐ 2 years	☐ 3 years
(Rs. 1200/-)	(Rs. 2000/-)	(Rs. 2800 /-)

I am sending here with Rs..... through online banking/cash for membership of your Journal.

Name of Institution .....

.....

Address.....

..... Pin Code.....

Phone/Mobile No. .....

E-mail ID .....

Date: Signature

For Office Use Only

Membership No. _____ Date _____

Frequency : Shodhshree is Published four time in a year(Quarterly)
i.e. January, April, July, October.

Mode of Payment : Subscription fees can be deposit through online Banking.

Bank Details : Cheque / DD must be in Favor of DR S N TAILOR FOUNDATION
(A TRIBUTE OF LATE SHRI PARAS HEMENDRA G TAILOR)
Union Bank of India, Beawar - 305901
UB A/C No. 0326321010000001 • Account Type : Current
IFS Code : UBIN0932639 • MICR Code : 305026014

Guidelines for the Contributors

1. All research paper must be typed in Microsoft Word and use KRUTI DEV 010 font for Hindi or Times New Roman Font for English can submit by C.D. or through e-mail.

2 All manuscripts must be accompanied by the brief abstract, Abstract including Keywords must not exceed more then 150 words.

3. A separate list of references should be given at the end of the paper and not at each page. Footnotes may be given on the same page if any technical term needs some explanation.

4. Table, Model, Graph or Chart should be on separate pages and numbered serially with appropriate heading.

5. Maximum word limit of research paper up to 3000 words.

6. Special care must be taken to avoid spelling errors and grammatical mistakes in the paper, otherwise it will not be accepted for publication.

7. The author(s) should certify on a separate page that the manuscript is original and it is not copyrighted.

8. The copyright is Reserved for 'Shodhshree' for All Research papers and Book Reviews, published in this journal.

9. Publication of research paper would be decided by our editorial board or subject specialist.

Book Review : For Book Review to be included in this journal only reference books and research publications are considered. One copy of each such publication must be submitted to the Editor.

Note : Shodh Shree have copyright on papers published in the journal therefore, prior permission is necessary for reproduction of paper, anywhere by author or other person. However, papers published in the journal may be freely quoted in further study. All disputes are subject to jaipur jurisdiction.

Research Paper may be sent to our e-mail: shodhshree@gmail.com
For any assistance, Please Contact Dr. Ravindra Tailor - 09413224134

एन. आर. बी. फाउंडेशन एवं भव्या इन्टरनेशनल द्वारा शोध श्री के सम्पादक डॉ. रविन्द्र टेलर को इण्डियन बेस्टीज अवार्ड – 2021 से नवाजा गया।

प्रिन्टेड मैटर
If undelivered please return to :

शोध श्री (त्रैमासिक)
54-ए, जवाहर नगर कॉलोनी
टोंक रोड, जयपुर-302018

स्वात्त्वाधिकारी, मुद्रक, प्रकाशक, प्रधान सम्पादक – वीरेन्द्र शर्मा के लिए मुद्रित व 54–ए, जवाहर नगर कॉलोनी, टोंक रोड़, जयपुर–302018 मो. 9460124401 से प्रकाशित।